

तवि सूरदास कृत

नल्ल दमन

प्रधान संपादक

डा० विश्वनाथ प्रसाद



संपादक

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

श्री दौलतराम जुयाल

क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा

नल्ल दमन

प्रधान संपादक

डा० विश्वनाथ



संपादक

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

श्री दौलतराम जुवाल

क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा

प्रकाशक

संचालक,

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

प्रथम संस्करण, १९६१ ई०
मूल्य ७)

मुद्रकः

हरिकृष्ण कपूर
आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,
आगरा ।

नलदमन

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ
१. प्राक्कथन	१—२
२. प्रतियों के चित्र	३—६
३. ग्रंथ की प्रतियाँ	१—६६
४. नल दमन	१—१६३
५. शब्दानुक्रमणिका	१—५

प्राकथन

संस्कृत के नैपथ महाकाव्य में कोमलदेश के राजा नल श्रीर निपथदेश के राजा की कन्या दमयन्ती की कथा जिस विस्तार और लालित्य के साथ वर्णित है उसका जोड़ नहीं। यों नल-दमयन्ती का आख्यान भारत में अनेक रूपों में इतना अधिक प्रचलित है कि साधारण से साधारण जन भी नल की कथा को कहने-सुनने में रस लेता है।* नैपथ की कथा-माधुरी से आकर्षित होकर ही फँजी ने उसका फारसी में अनुवाद किया था। फँजी का नल-दमयन्ती-चरित अपने समय में बड़े चाव से पढ़ा गुना जाता था। काल-प्रवाह से आज उसकी चर्चा भी नाम शेष रह गई है। फँजी की धारा पर आगे चलकर लखनऊ के मूरदास ने नल-दमन नामक काव्य की रचना पूरबी भाषा में की।

अपने देश में न जाने कब से यह परिपाटी चली आ रही है कि जहाँ नेत्रों की ज्योति गई कि 'मूरदाम' की उपाधि मिली। और फिर जितने भी मूरदास मिलें, यदि उनके नाम से कोई रचना मिलती है तो बिना किसी सोच-विचार के वह तुरंत प्रसिद्ध अष्टछापी मूरदास के साथ जोड़ दी जाती है। यही कारण है कि इस समय मूरसागर के रचयिता भक्त गिरामणि मूरदास की जीवनी का सही रूप खोज निकालना दुर्लभ हो गया है।

यही घटना इस ग्रंथ के लेखक मूरदास के साथ भी घटी। इनका ग्रंथ तो लोगों के सामने आया नहीं। ग्रंथ की नाममात्र की चर्चा से लोगो ने यही समझा कि उन्हीं विख्यात मूरदास ने नल-दमन नामक ग्रंथ की रचना की है। इसी आकर्षण के वश गोलोकवासी भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने कविवचनसुधा नामक पत्र में इस ग्रंथ का खोज निकालनेवाले को एक हजार रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा कर दी थी। परन्तु किसी भी प्रकार उन समय इस ग्रंथ का पता नहीं चल सका। किवदन्ती के आधार पर स्वर्गीय श्री राधाकृष्णदास जी ने अपने मूरदास के जीवनचरित में लिख दिया कि "मूरदास जी ने नल-दमयन्ती नाम का एक काव्य ग्रंथ भी बनाया था, पर वह अप्राप्य है।" यह किवदन्ती कोरे भ्रम पर ही अवनलंबित थी, जो कमी या बेशी अभी तक जला आ रहा है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है डा० प्रेमनारायण टंडन का बोध-प्रबन्ध 'सूर की भाषा' (हिंदी साहित्य मंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ, सं० १९५७ ई०), पृष्ठ ६१३। इस भ्रम का निराकरण प्रथम-प्रथम तब हुआ जब कि सं० १९७५ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४३, भाग १९ अंक २ में प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बंबई के संग्रहाध्यक्ष डा० मोतीचन्द्र ने मूरदास के नलदमन की नस्तालीक अक्षरों में लिखी प्रति का विवरण प्रकाशित किया।

* ब्रज प्रदेश में ढोला नाम से जिस लंबे कथा-गीत का प्रचलन है, उसमें वस्तुतः नल की कथा ही गाई जाती है।

† "तिस कारण यह प्रेम कहानी, पूरब दी भाषा विच आनी।"

इस ग्रंथ की रचना लखनऊ के सूरदास ने सन् १०६८ हि० = १६५७ ई० में की थी । ग्रंथ में उन्होंने अपना श्रीर गाहेवख्त का पूरा परिचय दिया है तथा सूफियों की मसनवी पद्धति का पूरा निर्वाह करते हुए इश्क हकीकी का बड़ा वारीकी के साथ कथन किया है । काव्य-सौंदर्य तो जैसे उनकी कलम से चू-चू पड़ता है, जिसकी वानगी रसज्ञ पाठक स्वयं स्थान-स्थान पर पायेंगे । मैं अपनी ओर से उसके आस्वादन में व्यवधान उपस्थित करना उचित नहीं समझता ।

ग्रंथ की प्रतियों और काव्यगत विशेषताओं की चर्चा सुविज्ञ सम्पादकों ने अपने कथन में विशद रूप से किया है । मैं समझता हूँ कि उनकी इस भूमिका से पाठकों को रचना का पूरा मर्म समझने में किञ्चित् भी कठिनाई नहीं होगी । उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियों के लिखित रूप को स्पष्ट करने के लिए दोनों प्रतियों के आदि और अन्त के पत्रों के फोटो इसमें प्रकाशित किये जा रहे हैं, जिससे उनका वास्तविक रूप सामने आ सकेगा ।

ग्रंथ का परिचय तो सम्पादकों ने दिया ही है । मेरा कर्तव्य उन लोगों का साधुवाद करना है, जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सामग्री देकर हमें इस ग्रंथ के प्रकाशन का अवसर दिया है । उनमें सर्व-प्रथम हम डा० मोतीकन्द के प्रति अपनी ओर से तथा समस्त हिंदी जगत् की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं, जिन्होंने न सिर्फ अपनी शोधित प्रति और बंबई संग्रहालय की प्रति की प्रतिलिपि प्रदान की है, वरन् मूल के दो पृष्ठों को प्रकाशित करने की अनुमति भी दी है । इसके अतिरिक्त मुनि कान्तिसागर जी ने अपने द्वारा संगृहीत बहुमूल्य हस्तलिखित प्रति को विद्यापीठ को देकर जिस उदारता का परिचय दिया है, उसके लिए हम उनके बहुत ही आभारी हैं । यह अब तक की प्राप्त सूचना के अनुसार नागरी अक्षरों में लिखी हुई एकमात्र प्रति है ।

विद्वद्वर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस समस्त सामग्री का उपयोग करके श्री दौलतराम जुयाल के साहाय्य से इस ग्रंथ की सम्पादित किया है, जिससे एक चिरकालिक अभाव की पूर्ति हुई है । इसके लिए वे भूरि-भूरि साधुवाद के पात्र हैं ।

आगरा मंडल इस समय अष्टछापी सूरदास की जयन्ती का आयोजन कर रहा है । आयोजकों के अनुसार उनका जन्मस्थान यहीं आगरे के आस पास का साही गाँव है । अतएव इस अवसर पर विद्यापीठ इन लखनवी सूरदास की यह रचना प्रकाशित करके उक्त आयोजन में अपना सक्रिय योगदान दे रहा है । इस ग्रंथ के प्रकाशन से सूरदास के नाम पर भटकने वाले शोध-कर्त्ताओं को सही मार्ग-दर्शन होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

॥६५॥ स्वस्ति श्रीसर्वत्राय नमः ॥ अथ नलद
 मनसूदासकृतमारभ्यते ॥ सुमयं आदिश्र
 नादजुकोई ॥ आदिश्रुतिपुनिपके सोई ॥
 जाहिनवसर्नरूपनरेषा ॥ अथ गतिगति
 असेषवहुसेषा ॥ २ ॥ सिथलनचपलवका
 नछोटा ॥ तरुणानवृढालघानमोटा ॥ वहु
 तनथोडासचानफुटा ॥ मिलानबिचुरप्र
 राननदटा ॥ ४ ॥ ज्योकुच्छु त्योंकानां ववतां
 ३ ॥ नां वजुंधरे धरे तिहि नां ॥ ५ ॥ नाउंधर
 तिपिनसरगुणहोई ॥ जो निर्गुणतिदिनं
 ३ ॥ नाउंधर ॥ ६ ॥ नाउंधर जो कहै सुनाउं
 ॥ ईदूकहितपरराषतनाउं ॥ ७ ॥ वोहजु
 रूपवाकोअनकह्या ॥ वचननंचलेतहां
 थकिरह्या ॥ ८ ॥ जहां वचनकहिगवनन
 होई ॥ तहांकोराविधवसेकोई ॥ ९ ॥ दोह
 रा ॥ आपनवनानवनेविनाआपनवनां व
 नाव ॥ ज्योंसकवजात्योंहीवनाकहितनव
 नेवनाव ॥ १० ॥ जअपिज्योंत्योंकैजुजाई ॥ पेघ
 टज्योघटरह्यासमाई ॥ जहांनवोहिसोओर
 नकोई ॥ ओरओरमेंपकेसोई ॥ आपुनछेद

خارجی امور میں ترقی و ترقی کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

اور دنیا میں مقبولیت اور جلال کے لئے ایک نئے اور عمدہ نظام کی تلاش اور ترقی

ग्रन्थ की प्रतियाँ

प्रस्तुत संपादन ग्रन्थ की दो प्रतियों के आधार पर हुआ है । प्रथम प्रति सभा (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) की है जिसका संकेत 'स०' है और दूसरी प्रति जयपुर के श्री मुनि कांतिसागर जी की है जिसका संकेत 'का०' है । 'स०' प्रति बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम की फारसी प्रति की नागरी अक्षरों में की गई नकल है और यह टंकित है । उक्त म्यूजियम के डायरेक्टर डा० श्री मोतीचंदजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में 'कवि सूरदास कृत नलदमन काव्य' शीर्षक से नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ४३-सं० १९६५, नवीन संस्करण, भाग १९—अंक २) में लेख छपाया । उक्त लेख में फारसी प्रति के संबंध में उन्होंने इस प्रकार लिखा है :—

'इधर जब से मैं बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम का डायरेक्टर नियुक्त हुआ, मुझे वहाँ की संगृहीत फारसी पुस्तकों की विस्तृत सूची बनाने का अवसर मिला । इन पुस्तकों में 'नलदमन' नामक एक चित्रित पुस्तक भी थी जिसे पहले की सूची में सूचीकार ने फँजी कृत 'नलदमन' की पदवी दे रखी थी । पहले तो मैंने समझा कि शायद फँजी कृत नलदमयंती-चरित्र का यह फारसी अनुवाद हो, क्योंकि अकबर के दरवारी कवि फँजी का बनाया 'नलदमन' प्रख्यात है । पर म्यूजियम के नलदमन काव्य के एक दो पन्ने उलटते ही मुझे पता लग गया कि यह नलदमन नाम का प्रेमाख्यानक काव्य अवधी में सूरदास नामक कवि का लिखा हुआ है । इस सूरदास का संबंध सूरसागर के रचियता सूरदास से कुछ भी नहीं, जैसा आगे पता लगेगा । जान पड़ता है, सूरदास के नाम-साम्य के कारण नलदमन की रचना सूरसागर के सूरदास के जिस्मे कर दी गई ।

'—प्रस्तुत पुस्तक फारसी लिपि में लिखी हुई है । इस पुस्तक में १६३ डबल पृष्ठ हैं । जिन पर चित्र नहीं बने हैं उन पृष्ठों पर १५ सतरे हैं । पूरे पृष्ठ की नाप ६ $\frac{3}{4}$ " × ५ $\frac{3}{4}$ " तथा लिखित भाग की नाप ७ $\frac{1}{2}$ " × ४" है । कात्तिल ने पृष्ठ-संख्याएँ नहीं दी हैं, बाद में किसी ने पेंसिल से भर दी हैं । बहुधा चित्र पूरे पेज के नहीं हैं । वे पृष्ठों के बीच में या निचले भाग में, एक दूसरे कागज पर, लिखकर चपका दिए गए हैं ।

'—पुस्तक फारसी के सुन्दर नस्तालीक अक्षरों में लिखी हुई है । पृष्ठ के बीचों बीच हाशिया छूटा हुआ है जिसके दोनों ओर पाठ अंकित हैं । पाठ की हद सुन्दर लाल, काले, नीले तथा सुनहरे खतों से बाँध दी गई है । दोहे सुनहरे अक्षरों में, बीच में पड़ी पट्टियों में, लिखे हुए हैं । पुस्तक औरंगावादी कमखाव की जिल्द में बँधी हुई है ।

‘पुस्तक के अंत में इस प्रति के लेखक का नाम बाबुल्ला बल्द मुहम्मद जहीद दिया हुआ है। इस प्रति को नकल हिजरी सन् १११० यानी बादशाह औरंगजेब के राज्यकाल के ३३वें वर्ष में समाप्त हुई। यह प्रति मियाँ दिलेर खाँ नामक किसी सरदार के लिए तैयार की गई थी। ये दिलेर खाँ कौन थे, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। ये औरंगजेब के प्रसिद्ध सिपहसालार दिलेर खाँ नहीं हो सकते, क्योंकि इनकी मृत्यु सन् १६८२ यानी इस किताब के लिखे जाने के सोलह वर्ष पहले हो चुकी थी। चित्रों की शैली से यह पुस्तक हैदराबाद की लिखी मालूम होती है और शायद मियाँ दिलेर खाँ वहाँ के कोई उमरा या रईस रहे होंगे।

‘पुस्तक का आरंभिक पृष्ठ सुन्दर उनवान और सोने के गुंवारे से अलंकृत है। तीन तरफ हाशियों में बादरूम की बेलें हरे, नीले, लाल तथा गुलाबी रंगों से बनी हैं, आरंभ विसमिल्लाह रहमानुर्रहीम से होता है। वाद में ईश-प्रार्थना शुरू होती है—’।

सभा की टंकित प्रति फुल्स्केप आकार के आधुनिक सफेद कागज पर है। आकार है— $13\frac{1}{4}'' \times 5\frac{1}{2}''$ । ऊपर से इस पर सादी जिल्द बंधी है। इसमें आरंभ का अंश ‘विसमिल्लाह रहमानुर्रहीम’ है। पुष्पिका टंकित नहीं हुई है। मूल प्रति के अलंकृत होने की सूचना अवश्य दी गई है। इसमें समस्त १६१ पत्रे हैं। प्रथम पत्र में २३ पंक्तियाँ हैं और अंत के पत्रे में ४ पंक्तियाँ। शेष पत्रों में किसी में २७ पंक्तियाँ हैं और किसी में २६। इसमें दोहे की संख्या ३८३ है तथा प्रत्येक दोहे के साथ चौपाइयों की ६ अर्द्धालियाँ हैं। प्रति कब टंकित हुई, इसका उल्लेख नहीं किया गया है, पर ‘अठारहवें खोज विवरण’ (का० ना० प्र० स०) के अन्वय पर यह सन् १६४१ के लगभग टंकित हुई जान पड़ती है। उक्त खोज विवरण (पृष्ठ २) में इसका उल्लेख है।

‘कां०’ प्रति नागरी अक्षरों में है और वह पुराने देसी कागज पर लिखी हुई है। इसमें समस्त १२४ पत्रे अंकित हैं; परन्तु गिनने पर १२३ निकलते हैं। यह सजिल्द है जिस पर लाल कपड़ा लगा है। जिल्द अब अलग हो गई है। ऐसा विदित होता है कि इसकी दो बार जिल्दबंदी हुई। दूसरी बार जिल्द से अलग हुए पत्रों को ठीक किया गया। पत्रों का आकार $5\frac{1}{2}'' \times 6\frac{1}{2}''$ है। लिखित अंश का आकार $6\frac{1}{2}'' \times 8\frac{1}{2}''$ है। लिखित अंश उसके दोनों ओर (दाहिने और बाएँ) हाशिया छोड़ कर खींची गई लालस्याही की दो-दो रेखाओं से मर्यादित है। प्रत्येक पत्र के पृष्ठ के नीचे दाहिनी ओर हाशिए पर पत्र संख्याएँ अंकित हैं। प्रति पृष्ठ में २१ पंक्तियाँ हैं। इसमें समस्त ३६७ दोहे हैं और ‘स०’ प्रति की भाँति प्रत्येक दोहे के साथ चौपाइयों की ६ अर्द्धालियाँ हैं। दोहे और चौपाइयों को संख्यांकित करने का श्रम हो रहा था, पर वह प्रथम दोहे तक ही सीमित रहा। आगे उसका निर्वाह न हो सका। प्रति संवत् १८१५ की लिखी हुई है। आरंभ का अंश इस प्रकार है :—

॥६०॥ स्वस्ति श्री सर्वज्ञाय नमः ॥ अथ नल दमन सूरदास कृत मारभ्यते ॥

सुमरुं आदि अनाद जु कोई। आदि अंति पुनि एकै सोई ॥१॥

जाहि न वर्ण न रूप न रेखा। अवगति गति अभेष बहु भेषा ॥२॥

पुष्पिका निम्नलिखित रूप में है:—

‘संवत् १८१५ तत्र वर्षे माहा मांगल्य मासे । चैत्र मासे शुक्ल पक्षे तिथौ १२ गुरु दिन लि० मिश्र चैतरामः लिपाय त्यों पूज्यः आत्मा ऋषि जी शुभ मस्तुः मंगलं ददातुः पुःस्तक लिपि विद्यानां जोग पसेते ॥’

यह प्रति भी किसी फारसी प्रति की नकल है अथवा उसकी नकलों की परंपरा में है । अनेक शब्द फारसी लिपि के कारण शुद्ध रूप में नहीं हैं । कहीं कहीं तो कुछ के कुछ हो गए हैं जिनके शुद्ध रूप का पता लगाना ही कठिन हो जाता है । कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—

१—मिथिल न चपल बड़ा न छोटा । तरुण न बूढ़ा लघा न मोटा ॥

—दोहा ॥१॥

इसमें ‘चपल’ को ‘चंचल’ होना चाहिए । इससे चौपाई की मात्राएँ पूरी १६ हो जाती हैं । कहना नहीं होगा कि फारसी प्रति में ‘चंचल’ के ‘नून’ अक्षर को ठीक ठीक पढ़ने में श्रम न हो सका और आगे ‘चे’ अक्षर को ‘पे’ पढ़ लिया गया । इससे अर्थ तो ठीक बैठा, पर मात्राएँ गड़बड़ हो गईं ।

२—बहुत न थोड़ा सचा न फूटा । मिला न विछुरा जुरा न टूटा ॥४॥

—वही

इसमें ‘सचा’ शब्द कोई अर्थ नहीं रखता । होना चाहिए, ‘सजा’ लिखने वाले ने ‘जीम’ को ‘चे’ पढ़ लिया और लिख दिया ‘सचा’ । इसी प्रकार ‘विछुरा’ को ‘विछुरा’ कर दिया; क्योंकि ‘पेश’ चिह्न का पता न लगा ।

३—राता विरछ करे त्रिन पाता । टुंठनि पात करे वहु राता ॥

—दोहा ॥६॥

यहाँ उत्तर पद होना चाहिए—ठूँठ निपात करे बहु राता ॥

४—जो रसना सत होतिहि कथा । जिहि तो गुरु मत होतिहि लखा ॥

भुम्म अकास कागर सम होई । सरवर श्री मिस सागर सोई ॥

लेपन शत तरवर तिन डारा । ती सु लिपिन जाइ विस्तारा ॥

—दोहा ॥११॥

रेखांकित पद फारसी लिपि के कारण अशुद्ध पढ़ लिए गए । ये चौपाइयाँ शुद्ध रूप में इस प्रकार हैं:—

जो रसना सब होहि कथैया । जहं नीं कर सब होहि लिखैया ॥

भुइं अकास कागर सब होई । सरवर श्री सागर मसि सोई ॥

लेखनि सब तरवर तिन डारा । तऊ सो लिखि न जाइ विस्तारा ॥

विषय स्पष्ट करने के लिये इतने ही उदाहरण बहुत हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रति इस प्रकार की अशुद्धियों से भरी पड़ी है जिससे उसके फारसी प्रति की नकल होने का पूरा प्रमाण मिलता है ।

प्रतियों में भेद

प्रस्तुत प्रतियों में भेद है । 'कां०' प्रति उस प्रति की परंपरा में है जिसका प्रचार रचयिता द्वारा रचना समाप्त होते ही हो गया । 'स०' प्रति उस प्रति की परंपरा में है जिसमें रचयिता अपने जीवनपर्यन्त संशोधन परिवर्द्धन करता रहा । इसलिये यह संगोधित-परिवर्द्धित रूप में है यद्यपि फारसी प्रति की नकल होने के कारण इसके पाठों की भी वही दशा है जो 'कां०' प्रति के पाठों की है । प्रस्तुत संपादन में इसके परिवर्द्धित अंश यथास्थान पाद टिप्पणियों में दे दिए गए हैं । वे प्रक्षिप्त नहीं हैं ।

प्रतियाँ एक दूसरी की पूरक

दोनों प्रतियाँ एक दूसरी की बहुत कुछ पूरक के रूप में हैं । यदि इनमें से एक ही प्रति के आधार पर संपादन किया जाता तो वह निश्चित रूप से असफल सिद्ध होता । इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्रस्तुत संपादन सब तरह से शुद्ध है और उसमें भूलें नहीं हैं । अभिप्राय यह है कि एक प्रति में जो पाठ अशुद्ध निकला वह साधारणतया दूसरी प्रति में या तो शुद्ध पाठ के रूप में प्राप्त हुआ अथवा उसका पाठ मूल के अधिक निकट पाया गया जिससे सुसंगत पाठ निश्चित करने में सहायता मिली । यहाँ थोड़े से उदाहरण 'कां०', 'स०' और 'सं०' (प्रस्तुत संपादन) के क्रम से दिए जाते हैं जो दोहों के अनुसार हैं:—

दो० ॥२॥

ओ पुन छेद भेद कछु नाहीं । सिमट समाय रह्या सब मांहीं ॥ (कां०)

ऊ बिन छंद हंद कछु नाहीं । समत समाय रहा सब मांहीं ॥ (स०)

ओ पुनि छेद भेद कछु नाहीं । सिमिट समाइ रहा सब मांहीं ॥ (सं०)

दोहा ॥३॥

तिहि चेतन बिन कछु न होई । पै करतूत न लागै कोई ॥ (कां०)

तिन्हु चिन्तै बिन कुछौ न होई । पै करतूत न लागै कोई ॥ (स०)

तिहि चेतन बिन कछु न होई । पै करतूत न लागै कोई ॥ (सं०)

दो० ॥८॥

कनक अंग हुइ रह्या अनेका । कारण टूट एक को एका ॥ (कां०)

एक कनक होइ रहा अनेका । कारै टूट एक को एका ॥ (स०)

एक कनक होइ रहा अनेका । कारण टूट एक को एका ॥ (सं०)

दो०॥१७ (स०)॥ १६ (कां०)

जे संगत लोकन के मांगा । तिन्ह वन फिर भ्रातिनि नगि मांगा ॥ (कां०)
 ज संगत टुकन के मांगा । तिन्ह वन फिरहि रतनग मांगा ॥ (स०)
 जे संगत लोकन के मांगा । तिन्ह वन भरहि रतन नग मांगा ॥ (सं०)

दो० ॥वही॥

जे संगत वन दर दर डोलै । सो दर पग हरे विन डोलै ॥ (कां०)
 जा संगत वन घर घर डोलै । सो दर पग न घरै विन डोलै ॥ (सं०)
 जा संगत वन दर दर डोलै । सो दर पग न घरै विन डोलै ॥ (सं०)

दो० ॥२१ (स०)॥ २० (कां०)

क घीव सहेव गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुते जेवर टूटी ॥ (कां०)
कहा श्री मोह गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हित जेवर टूटी ॥ (स०)
 कौ घीव सहेव गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुत जेवरि टूटी ॥ (सं०)

उक्त दोहा इस प्रकार है

माया सोहि मिलाप सों, घीव भयो दधि जीव ।
सति गुरु फेरि मथान मन, काढि दिपायो घीव ॥२०॥ (कां)
 माया सही मिलाप स्यों, घिव जो भयो दधि जीव ।
संकर फेरि मथान मन, काहु देखा यह घीव ॥ (स०)
 माया सही मिलाप स्यों, घिउ जु भयेउ दधि जीव ।
सतगुरु फेरि मथानि मन, काढि दिखायो घीव ॥ (सं०)

ग्रंथ की जात प्रतियाँ

संप्रति ग्रंथ की चार प्रतियाँ ज्ञात हैं । इनमें से एक तो बंबई प्रिन्स-ग्राफ-वेल्लस म्यूजियम की फारसी प्रति है और दो (दूसरी-तीसरी) उसी की नागरी अक्षरों में की गई प्रतियाँ हैं जिनमें से एक काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित 'स०' प्रति (दंक्षित) है तथा दूसरी उक्त म्यूजियम के क्यूरेटर डा० श्री मोतीचंद जी की प्रति है । चौथी 'कां०' प्रति श्री मुनि कांतिसागर जी की प्राचीन हस्तलिखित देवनागरी प्रति है । डा० श्री मोतीचंद जी की प्रति का भी थोड़ा बहुत उपयोग किया गया है ।

आभार प्रदर्शन

जैसा कि आरंभ में लिखा जा चुका है, नलदमन के संबंध में सर्व प्रथम विश्वसनीय सूचना देने का श्रेय श्री० डा० मोतीचंद जी को है । उन्होंने ग्रंथ के विषय में एक लेख भी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में छपाया । उस लेख से प्रस्तुत संपादन में सहायता न लेना

अस्वाभाविक बात होती। अतएव उस के कुछ अंश का इस स्तंभ में उद्धरण सहित उपयोग किया गया है। उनकी निजी नकल की हुई प्रति से भी थोड़ी बहुत सहायता ली गई है। इसके लिये हम उनके विशेष अनुगृहीत हैं। श्रीमुनि कान्तिसागर जी की तो महती कृपा हुई कि उन्होंने नलदमन की अपनी प्रति अपेक्षित समय तक के लिये प्रदान कर दी। वास्तव में इस प्रति के मिल जाने से ही प्रस्तुत संपादन संभव हुआ है। इसके लिये हम उनके अत्यंत कृतज्ञ हैं। इस प्रति को सर्वप्रथम श्री वासुदेव शरण जी ने जयपुर में श्री मुनि कान्ति सागर जी के पास देखा था और तभी यह इच्छा प्रकट की थी कि इसके आवार पर 'नलदमन' का सम्पादन हो जाना चाहिए। श्री मुनिजी ने उदारतावश इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपनी प्रति न केवल सम्पादन कार्य के लिये ही सुलभ कर दी, बल्कि अग्रवाल जी के अनुरोध को स्वीकार करते हुए उस प्रति को आगरा हिन्दी विद्यापीठ के संग्रहालय के लिये प्रदान कर दिया। अब सम्पादन कार्य के समाप्त हो जाने पर यह प्रति हिन्दी विद्यापीठ आगरा से श्री मुनि कान्ति सागर जी को ओर से धन्यवाद पूर्वक सुरक्षित कर दी जाएगी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ससम्मान उल्लेख करते हुए उसके प्रधान मंत्री डा० श्री राजबली जी पांडेय और पुस्तकाध्यक्ष श्री विजयेंद्र जी शास्त्री के अति आभारी हैं जिन्होंने सभा में सुरक्षित ग्रंथ की प्रति देकर इस कार्य में हमारी बड़ी सहायता की।

कवि परिचय

पहले यह जन-श्रुति थी कि महाकवि सूरदास (सूर सागर के रचयिता) ने 'नल दमयंती' नाम से भी काव्य रचना की। श्री राधाकृष्णदास ने उक्त जनश्रुति का उल्लेख महाकवि सूरदास की जीवनी में किया और भारतेन्दु बाबू श्री हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' में काव्य को खोज निकालने के निमित्त एक हजार रुपए पारितोषिक की घोषणा की। परन्तु काव्य का पता न चला। जन श्रुति का कुछ न कुछ आधार होता अवश्य है; इस बात को ध्यान में रखते हुए अब यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'नलदमन' काव्य ने ही उक्त जनश्रुति को जन्म दिया। इसके रचयिता सूरदास को भ्रम से महाकवि सूरदास समझ लिया गया। वास्तव में ये सूरदास महाकवि सूरदास से नितांत भिन्न सूफी विचारधारा से प्रभावित कवि हैं। अब तक केवल दो हिन्दू कवि ऐसे विदित हुए हैं, जिन्होंने सूफी विचारों से प्रभावित होकर प्रेमाख्यानक काव्य रचे। इनमें से एक है, दुखहरन जिन्होंने सं० १७२६ में 'पुहुपावति' की रचना की और दूसरे हैं प्रस्तुत कवि सूरदास। प्रस्तुत कवि सूरदास ने अपना जो वृत्त दिया है उसके अनुसार इनके पिता का नाम गोवर्द्धनदास (गोरधनदास) था। ये कंबो गोत्रीय और माछिल (मूछल?) जाति के थे। इनके पुरखे कलानौर (गुरुदासपुर, पंजाब) में रहते थे, जहाँ से इनके पिता पूरव की ओर चले गए और बहुत समय तक उधर ही रहे। इनका जन्म लखनऊ में हुआ जिसको इन्होंने वैकुंठ के समान सुंदर बताया है। कलानौर ये कभी नहीं गए। यद्यपि ये परदेश में ही रहते थे तो भी कलानौर का नित्य प्रति स्मरण करते थे। संभवतः स्मरण माहात्म्य के अनुसार इन्हें विश्वास था कि भगवान् कभी न कभी इनकी कलानौर

१—देखिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित खोज विवरण (सन् १९४१-४३ में संख्या, १०५)। पुस्तक की एक जीर्ण प्रति सभा में है।

देखने की अभिलाषा पूरी करेंगे । यह आशा इनकी आगे पूरी हुई कि नहीं, यह जानने का कोई सूत्र इस समय उपलब्ध नहीं :—

सूरदास निज नाऊँ बताऊँ । गोरधनदास पिताकर नाऊँ ॥
 कंबू गोत साठिले तासू । कलानूर पुरखन कर वासू ॥
 तात हमार तहाँ सों आवा । पूरव दिसा कोऊ दिन छावा ॥
 नगर लखनऊ बड़ा सो थानू । दक्षिर ठौर बैकुंठ समानू ॥
 मेरो जनम यहै ठां भयऊ । कलानूर कबहूँ नहिं गयऊ ॥१॥
 जद्यपि हों अबहूँ परदेसा । पै नित प्रति मुमिरों सो देसा ॥
 जैसे पंथी बसै सराई । महुँ विदेस रहों तिन्ह नाईं ॥
 आदि ठौर विसरा मै नाहीं । सोई सदा रहै मन माहीं ॥
 मुमिरन करौ नाम हर स्वासा । महु जो विधि पुरवै सो आसा ॥

दी०

बिन निज दया दयाल के, देस न पहुँचा जाय ।
 जब लग सोई बाँह गहि, लेइ न देइ पहुँचाय ॥२४॥

पंथ और गुरु परंपरा

इन्होंने अर्चित पंथ का उल्लेख किया है, जिसके ये अनुयायी थे :—

गुरु अर्चित को पंथ जग, बहु जल तरनी नाव ॥

‘ पहुँचन हार जो पारको, सो राखे तहँ पाँव ॥

गुरु परंपरा इस प्रकार है :—

अर्चित प्रभु > रंगविहारी > स्यामदयाल > सूरदास

रंगविहारी का बड़ा ही विलक्षण विवरण दिया है । उन्हें अर्चित प्रभु सिद्ध पुरुष के रूप में मिले थे । अतएव पंथ के वास्तविक प्रवर्तक वही (रंगविहारी) थे । वे लाहौर के रहने वाले थे । जाति के कदकड़ थे । वे चार भाईं थे जिनमें वही सबसे बड़े थे । शिशुपन से ही वे मेधावान पुरुष थ और साधु सिद्धों की सेवा में अधिक मन लगाते थे । परदुःख दुःखी और बड़े दयावंत थे । प्रति दिन सूर्योदय होते ही नदी में स्नान करते और कुछ समय तक अखाड़े में बालकों की कुश्ती (सरों) देखकर मन वहलाते थे । नित्य प्रति बालकों को दिउल* खाने को देते थे । बालक दिउल पाकर बहुत प्रसन्न रहते और अधिकाधिक कौतुक दिखाकर उन्हें भी सदा प्रसन्न रखते । एक दिन जब

* यह देवल शब्द मूलतः ‘खूल’ है । अबधी में जिसका अर्थ होता है चने की भिगोई हुई दाल । शब्दसागर में ‘दिउली’ का अर्थ दाल दिया गया है ।

वे बालकों का खेल देख रहे थे तो उन्हें एक सिद्ध पुरुष आते दिखाई दिए । सिद्ध पुरुष का अद्भुत भेष था । न सूफी ही थे और न सेवड़ा ही । सन्यासी भी नहीं कहे जा सकते थे । ब्रह्मचारियों की जैसी गति भी नहीं पाई जाती थी । जंगम और जोगियों में से भी वे कोई नहीं थे । षड् दर्शनी अथवा वियोगी जैसों का भेष भी नहीं था । साथे पर तिलक और हाथ में जपमाला थी तथा गले में सींगी एवं कोंधे पर मृगछाला पड़ी थी । पलकें नहीं लगती थीं, शरीर पर लविलयों नहीं बैठती थीं, अंग की परिछाई भी नहीं पड़ती थी और धरती से ऊपर (अधर में) ही पाँव रहते थे । उन्होंने देखते ही सिद्ध पुरुष को जान लिया । सिद्ध पुरुष के प्रति उनके हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई और गोद से दिउल (भीगे हुए चने) निकाल कर सिद्ध पुरुष को दिए । सिद्ध पुरुष ने हँसकर दिउल ले लिए कुछ अपने मुँह में रखे और जो बचे उन्हें उनके मुँह में डाल दिया । सिद्ध पुरुष का हाथ उनके मुँह में पड़ते ही उनकी बुद्धि के कपाट खुल गए । जैसे ही सिद्ध पुरुष आगे बढ़े वैसे ही वे भी पीछे-पीछे चल दिए । नाम पूछने पर सिद्ध पुरुष ने अपना नाम अर्चित बताया और उनका नाम 'वहोरा' (घरेलू नाम) के बजाय रंगविहारी रखा । तत्पश्चात् सिद्ध पुरुष जहाँ के तहाँ लुप्त हो गए । अस्तु, रंगविहारी को सिद्ध पुरुष का गुरु के रूप में इतना ही साक्षात्कार प्राप्त हुआ । परन्तु आत्मज्ञान की उन्हें उसी समय उपलब्धि होगई और पीछे सिद्ध महात्मा के रूप में भी प्रसिद्ध हुए:—

अब गुरुदेव केर गुन गाऊँ । रंगविहारी जिनकर नाऊँ ।

×

×

×

×

आदि नगर लहोर जिहि नाऊँ । जनम भूमि उन्ह कै तिहि ठाऊँ ॥
छत्री कक्कर जात कहाए । भैया चारहि भले दिखाए ॥
पहलै कहियत नाँव वहोरा । कसन वहोरै नाँव वहोरा ॥
थोरी वैस बहुत मति धरै । सिद्ध साधु कै सेवा करै ॥
दयावंत दुखी पर दुखी । देख न सकै आत्मा भूखी ॥
धरमी घरम पंथ पग धारै । कथा बारता सुनै विचारै ॥
रहै पवित्र भजन सों कामू । सुमिरन करै सदा हरि नामू ॥

साध सिद्ध संगत करै, साधुन सों व्योहार ।

सुन न सकाहि समुझा चहै, आतम रूप विचार ॥

नित प्रति प्रात उठै जस भानू । जाइ सलित जल कर असनानू ॥
बालक तहाँ सरौ पुनि खेलै । लिपटाहि भिराहि दंड मिलि पेलै ॥
तिन्ह कौतुक छिन मन विहरावाहि । नित प्रति तिन्ह देवल जिवाँवाहि ॥
देवल पाइ बालक सुख पावै । अधिकौ कौतुक करि दिखरावै ॥
इक दिन देखत हुते तमासा । सिद्ध एक आवा उन पासा ॥
अद्भुत भेष धरै अवगती । सूफी औ न सेवड़ा जती ॥
सन्यासी पुनि कहा न जाई । ब्रह्मचरज गति जाइ न पाई ॥
जंगम कहा न जाइ न जोगी । खंड दरसन सों भेख वियोगी ॥

मार्थ तिलक हाथ जपमाला । सीगी गरै कांध मृगछाला ॥
मन कै सूरति पिड सों लागी । अम भिटि गा संका सब भागी ॥

पलक न लागै आंखिन, माखें निकट न जाइ ।

श्री न अंग परिछाँहिजै, अघर भुईं सों पाइ ॥

इन वह पुरख दिगिट महँ आना । देखत सिद्ध पुरख पहिचाना ॥
सिद्ध पुरख इन्ह तन पुनि पेखा । भई परस्पर देखी देखा ॥
तव इन दिउल गोद सों काढ़े । लै ताके सनमुख भए ठाढ़े ॥
हँस कै पुरख हाथ गह लीन्हे । लै रंवक अपने मुख दीन्हे ॥
कर जो रहे इनके मुख डारे । उरत बुद्धि किवार उधारे ॥
कँ चेला चल भय गुरु आगे । ये गुरु के पीछे उठि लागे ॥
बूझौ वचन जो अज्ञा पाऊं । कही कही तुम आपन नाऊं ॥
कहा अचित नाम सुन सोरा । रंग विहारी राखौ तोरा ॥
कह सो वचन पुनि दिस्टि न आवा । पुरख जहाँ कर तहाँ समावा ॥

उनहीं घरी कृपा भई, दया करी गुरु देव ।

आतम रूप लखा प्रगट, रहा न अंतर भेव ॥

×

×

×

जागति कला भई जगजानी । रंगविहारी सिद्ध बखानी ॥
सिद्ध वचन जो कहे सो होई । अविचल वचन न विचल कोई ॥

×

×

×

अब जद्यपि ते आप समाने । सिमट जोति मिलि प्रगटि हिराने ॥
पँ गुरु जप तिन्ह कौ जो वानी । बीज मंत्र ठहराइ बखानी ॥
सो सुन संत पंथ में आवैं । जो आवैं सो अमर पद पावैं ॥
पंथ प्रतापवंत उजियारा । जिन्हनै गहा सो रहा न वारा ॥

गुरु अचित को पंथ जग, बहु जल तरनी नाव ।

पहुँचनहार जो पार को, सो राखै तहँ पाव ॥

स्यामदयाल जाति के भटनागर कायस्थ थे । उन्हें शैशवावस्था में ही, जब वे गोद में थे, रंगविहारी का गुरु मंत्र प्राप्त हुआ । साथ ही साथ उन्हें भक्त होने का आशीर्वाद भी मिला—

तिन्ह के सिख कायथ भटनागर । स्यामदयाल ग्यान गुन सागर ॥
गोद हते जब बाल अयाने । तवही सों दिच्छा महँ आने ॥
माथे हाथ घरा गुरु देवा । कै अति कृपा लगाई सेवा ॥
आयसु भा एहि सिक्ख हमारा । होइ है भगत जगत उजियारा ॥
ते अब महापुरख विग्यानी । मुख ऊचरै ग्यान निधि वानी ॥
जिन्ह को नाम लिएँ दुख जाही । दरसन किएँ तजि पाप पराहीं ॥
पाप नसै संदेह न कोई । निश्चै ग्यान परापत होई ॥

जो काहू कर सबद सुनावै । ताहि तेहि छिन अलख लखावै ॥
 मोहि लिन्है यह पंथ लगावा । कृपा कीन्ह गुरू जाप सिखावा ॥
 भूलै भटकै बाँह गहि, मारग दियो लगाइ ॥
 लोहा कंचन कै लियो, पारस पग परसाइ ॥

यह निश्चित पता नहीं चलता कि स्यामदयाल कहां के रहने वाले थे । फिर भी अनुमान से जान पड़ता है कि वे पूरव के ही—लखनऊ या उसके आस पास कहीं के निवासी थे । सूरदास लखनऊ में ही रहते थे, पंजाब की ओर जाने का उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया, इसलिये बहुत कुछ संभावना इसी बात की है कि उन्हें लखनऊ में ही स्यामदयाल से गुरु मंत्र प्राप्त हुआ ।

सूरदास ने 'नलदमन' की रचना शाहजहाँ बादशाह के राज्यकाल (सं० १६८५-१७१५ वि) की समाप्ति के एक वर्ष पूर्व संवत् १७१४ वि० (सन् १०६७ हिजरी) में आरंभ की—

एक सहस सतसठ सन अहा । संवत सतरह सँ चौदहा ॥
 कै अरंभ तव कथा बखानी । कीन्हीं प्रगट प्रेम निधि बानी ॥

बादशाह की प्रशंसा

शाहजहाँ की इन्होंने बड़ी प्रशंसा की है । उसके तेज, यश, बल-विक्रम, वैभव, प्रभाव, दानशीलता, करुणा, दया, न्याय प्रियता, राजनीति और युद्ध संचालन आदि का ओजपूर्ण भाषा में बड़ा ही भव्य वर्णन है । कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

साह जहाँ सुलतान चकत्ता । भानु समान राज इक छत्ता ॥
 दिल्ली उवा सुरज उजियारा । चहों और जस किरन पसारा ॥
 राजन के मुख रहा न पानी । मनी बेलि रवि तेज भुरानी ॥
 हुते जो गढ़ मेरु ज्यों बाढ़े । कार नवाइ नीर कै काढ़े ॥
 किये अमान सब अभिमानी । मान छोड़ अब करहि किसानी ॥
 सीस नवाइ रहा सो बाँचा । जो उकसा सो काल मुख खँचा ॥
 रहा न कतहुँ जुद्ध कर मानू । अस दिढ़ होइ बैठा सुलतानू ॥
 छत्री छत्रधार जो कहाए । ते जुहार कों वार न पाए ॥
 खंड खंड कै राजा राऊ । ठाढ़े रहत जोर कर पाऊ ॥

जे राजा तरवार वर, कटक देत है तार ।

तोर तोर तरवार तिन्ह, फार गढ़ाए कार ।

साज काज जब करै चढ़ाई । सहि मंडल हय मय होइ जाई ॥
 चलहि गयंद ठाठ चहुँ ओरा । मेघन अनी कीन्ह मनु जोरा ॥
 अन गिन सैन न वार न पारू । सहि पहं सहि न जाइ सो भारू ॥
 काँपै धरनि मेरु घस जाई । कमठहि आनि बनी कठिनाई ॥
 वासुकि डुलै होई कलमली । परै पताल लोक खलबली ॥

परवत चूर चूर होइ जाहीं । असल मसल होइ वूर उड़ाहीं ॥
 इंद्र लोक पहुँचें सो धूरी । अंधकार उपजै तिहि पूरी ॥
 सुरज प्रकास न देइ दिखाई । वासर अछत रैन होइ जाई ॥
 वन खंड टूट खेह मिल जाहीं । सरवर सागर सलित सुवाहीं ॥

अगले उज्जल जल पिये, पिछले रवदर छानि ।

ता पिछले कूआ खनै, तब पावै ते पानि ॥

न्याच नीत जो पुरानन गाई । सो पृथ्वीपति कै दिखराई ॥
 गरु सिव एक घाट पियाए । राव रंक सर कै दिखराए ॥

× × × × ×

दाता कहियत एक सोई । ता सरवर कहें श्रीर न कोई ॥
 एक बार तिहि सों जिन माँगा । पुनि भर जनम न काहू खाँगा ॥
 जे मंगत टूकन कै माँगा । तिन्ह धन-फिरै रतन नग माँगा ॥
 जा मंगत धन दर दर डोलै । सो दर पग न धरै बिन डोलै ।

× × / × × ×

साहजहाँ दगतार डर, धरै पतार डुराइ ।

दधि मुकता तौ ना बर्च, देइ कढ़ाइ लुटाइ ॥

भाषा विवाद

‘सं०’ प्रति (का० ना० प्रा० सं० में सुरक्षित) से विदित होता है कि ‘नलदमन’ की भाषा के संबंध में कुछ विवाद चल पड़ा था। यह विवाद पंजाबी और अवधी को लेकर उठा था। सूरदास पंजाबी थे, अतः प्रांतवासियों का उनके प्रति विशेष रोष रहा होगा। हो सकता है, यह भाषा विवाद गंभीर रूप में प्रांतीयता को लेकर न रहा हो, परंतु इसमें तीव्रता थी, अवश्य। इसलिये सूरदास को कहना पड़ा—

‘इश्क फिराक’ (प्रेम विरह) के कारण पूरबी भाषा (भन्विया) में मेरी आँख कुछ रो पड़ी है। परंतु इसे पूरबी बतकहा (बतहा) मात्र न जानों। भले ही इसका देश पूरब है, पर इसमें व्यक्त किया गया मत (मतहा) पंजाबी ही है। मूझे अपनी भाषा का भय अवश्य है और मैं उसे नुकता-नुकता करके पहचानता हूँ। भाषा के बीच-बीच में घने जेर आ सकते हैं, पर मेरी आँखें ‘इश्क हकीकी’ में रंगी हुई हैं (इसलिये दूसरी भाषा के जेर रखने की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई)। इस प्रकार अपनी भाषा और जवान में (यह कृति) बनी तो भली है, पर उसे स्वीकार करने में दिना संकेत (पूरब की भाषा में है) किया जाता है। जब उसमें निहित अत्यन्त ध्वनि को पूछते हैं तो उसका मर्म (मरहम) ही खो देते हैं। इस प्रकार जैसे जैसे उससे भी नहीं बचा जाता। (वे) पंजाबी छोड़कर और भाषा नहीं जानते। रत्नों का पारखी ही रत्नों को जान सकता है। उधर सब कोई भाषा (पूरबी भाषा, अवधी) के मर्मज (महरम) हैं। (उनमें से) जो कोई पढ़ेगा। वही मतलब समझेगा। इसलिये यह प्रम कहानी पूरब की भाषा में लिखी गई है।

वाग बगीचा वही अच्छा होता है जिसमें सबका साझा हो। इसी तरह वाणी भी वही बोलनी अच्छी है जिसे सब कोई समझ सके—

या रोवा यह कछु मैं अंखिया । अश्क फिराक पूरबी भखिया ॥
 मत जानहुं यह पूरव बतहा । पूरव देस पंजाबी मतहा ॥
 हौ अपने भाषा भग जानो । नुकता नुकता सब पहिचानो ॥
 आवसि भाषा बच शर घनेरी । अश्क हकीकत आँखें मेरी ॥
 अस अपनी भाखा व जवानी । वनी भली पै कोध सकरानी ॥
 खोवे भरमह कल जो पूछै । जस कस तासों जाय न बचै ॥
 बज पंजाबी होर न जानी । रतन पारखी रतन सजानी ॥
 उत भाषा महरम सब कोई । पढ़ें जो मतलब समझे सोई ॥
 तिस कारन यह प्रेम कहानी । पूरव दी भाखा बिच आनी ॥

वाग बगीचा सो भला, जो सबही सांझा होइ ।
 बानी तस भाखे भली, जिन्ह समझे सब कोई ॥

सूरदास को संभवतः स्वप्न में भी इसका भान नहीं था कि उनकी कृति को लेकर भाषा विवाद भी उठेगा। उनकी आँखें तो 'इश्क हकीकी' में रंगी थीं। समदर्शी पुरुष थे। उन्हें अपना 'इश्क हकीकी' व्यक्त करना था जिसके लिये किसी उपयुक्त भाषा चुनने का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। जन्म से ही अवधी प्रांत में रहने के कारण अवधी उनकी अपनी भाषा थी। इसलिये अवधी में रचना करना उनके लिये स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त अवधी के सब मर्मज्ञ थे। 'उत भाषा महरम सब कोई' से यह स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से उनका दृष्टिकोण पक्षपात रहित और संतोषित था। फिर भी, अवधी में लिखने के लिये उनकी सूफी विचारधारा ने भी उन्हें प्रेरित किया, ऐसा माना जा सकता है। उनके समय तक रवे गए सभी सूफी काव्य अवधी में थे। अवधी में सूफी काव्य रचनाओं की विशिष्ट परंपरा ही चल निकली थी। अतएव सूरदास उन परंपरा से विद्यिन्न नहीं हो सकते थे। फलतः उन्होंने अपना प्रेमाख्यानक काव्य अवधी में रचा।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, भाषा संबंधी इन विवाद का उल्लेख केवल 'स०' प्रति में है। वह भी उसके अंत में। यह प्रति प्रस्तुत संपादन में संशोधित परिवर्द्धित रूप में मानी गई है। इससे विदित होता है कि भाषा विवाद का सामना सूरदास को पीछे करना पड़ा, जब उनकी इस कृति का प्रचार हो गया। उन्हें संशोधन परिवर्द्धन करते समय इस विवाद के निराकरण करने की लूझी। अतएव उपयुक्त वक्तव्य दिया और हाथ ही साथ यह दिखाने के लिये कि उनके हृदय में पंजाबी के प्रति पूर्ण सम्मान है, उक्त वक्तव्य में पंजाबी की पुट भी देदी—

तिस कारन यह प्रेम कहानी । पूरव दी भाखा बिच आनी ।

काव्य-कथा

जैसा पीछे लिखा जा चुका है 'नलदमन' सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है। इसकी रचना अवधी भाषा में अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों के अनुकरण पर हुई है। इसमें भी, बिना सर्गों या अध्यायों के उपयोग किए, कथा का वर्णन है। ग्रंथारंभ में परमात्मा की स्तुति की गई है, फिर सप्तसामयिक शासक, शाहजहाँ बादशाह की प्रशंसा है और तत्पश्चात् गुरु और कवि परिचय वर्णित है। शासक और गुरु का सविस्तर उल्लेख 'कवि परिचय' श्लोक में हो चुका है। कथा का आधार महाभारत बनाने हुए काव्य रचने का कारण इस प्रकार प्रकट किया है :—

एक दिवन मोरे मन आई । भारत पहुँ लाग चित लाई ॥
तेहि के परव पढ़त जव आवा । नल की कथा खोंच हिय लावा ॥
 मुना जो नर नारी कर पेम् । विसरा देह गेह कृत नेम् ॥
 सुनि मन टार पात फल आवा । विरह वृक्ष इन्हन जनु लावा ॥
 विकल भयो तन छूट कचाई । विखधर उसै लहर जनु आई ॥
 मन मोरँ तन कँ मुव खोई । नौद जाइ श्रन्तँ पर सोई ॥
 तूखा सिरान न मार्ग नीरा । भूख अघाइ बैठ होइ तीरा ॥
 पात्रक पुंज भयो तन मोरा । पेम पीन घर घर भकभोरा ॥
 जिन्ह कँ पेम कथा सँ जारा । बन ते जिन्ह भेला सो भारा ॥

कथा अगिन होइ हिय परी, वरँ रुई ज्यों देह ।
 जो जल नैन न डारते, भई हुती जरि खेह ॥२५॥

रचना का कारण :—

प्रेम बँन मन सँ पुनि आई । दबी अगिनि यह छोंहुँ जगाई ॥
पेम उलास पीन सो वाहँ । बार विरह वाती घृत डारँ ॥
 प्रगट कहुँ ज्वाला जग जानँ । जो प्रेमी सुनि के सुख मानँ ॥
 पेम बीज लै पीध लगाऊँ । रकन सींचि फुलवारि बनाऊँ ॥
 श्रमवन वरन पुहुप उपजाऊँ । अलि पेमी जन तिन्हहि रिभाऊँ ॥
 एहि विधि पेम त्वान हिय खोलूँ । अविध श्रमोल बोल नग तोलूँ ॥
 विरह वेद वानी मुख श्रानू । ज्ञानि प्रेम सों पेम बखानू ॥
 औ उर भाठी मद पेम चुआऊँ । नल कँ कथा सुनल कँ लाऊँ ॥
 ऐसी पेम मयी मधु ढारौँ । जासौँ दिया पेम मग वारौँ ॥

जा तन लागि जान परि सोई । अन जानत को दुख न होई ॥
जिन्ह कै बात चाव उपजावै । जो सन कहै सो उन कहि होई जावै ॥

पेम पीउनहार जे, चाखत खिन छकि जाहि ।
एक पियाला फिरि पिवै, दूभर देहि उंधाहि ॥२६॥

बीज रूप में कथा का वर्णन यों है :—

नल दामन का पेम बखाना । भया मिलाप सोयंबर ठाना ॥
कलजुग नल सों जुवा खेलावा । धन हराइ वनवास देवावा ॥
श्री वन में विछुरे नर नारी । पुनि मिलाप ह्वै भए एक ठारी ॥
जुवा खेल जीता पुनि राजू । आड जुरा सब वहै समाजू ॥
भारत में जो कथा बखानी । आदि अंत बानी महं आनी ॥
वात वात में जुगति बनाई । कथा पुरान मय कं दिखराई ॥

सूफ़ी मर्म (प्रकटार्थ के साथ-साथ गुप्तार्थ) के प्रति भी संकेत किया है :—

बहुत ठौर निज अरथ दुरावा । सब काहू पै जाइ न पावा ॥

बहुत लोग दोहित चढ़े, दधि पर आवै जाहि ।
मुकता पावै मरजिया, घसि खोजै ता माहि ॥२७॥

कथा इस प्रकार है :—

राजा नल उज्जैन में राज्य करता था । वह छत्रपति राजा था । अनेक राने राव सिर नवाकर उसकी आज्ञा का पालन करते थे । उसका तेज सूर्य के समान था । सत्य और शांति उसमें विराजमान रहती थी । राजकाज करते समय सत्य और धर्म का पूरा विचार रखता था । धर्म की रक्षा तो प्राणपण से करता था । वह बड़ा बुद्धिमान, पंडित, धर्मात्मा, सर्वगुण संपन्न, खड्गशूर और तेज एवं दया का सरोवर था । वह रूप में भी अप्रतिम था । संसार में कोई उसके रूप की होड़ करने वाला नहीं था । उसके स्वभाव और वाणी से प्रेम छलकता था । सदैव प्रेम मार्ग का अनुसरण करता था । किसी को प्रेम में दुखी देख स्वयं भी बड़ा दुखी होता था । लोग उसके प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहार से मुग्ध हो जाते थे । राग रंग की ओर वह अधिक रुचि रखता था । रात दिन गुणियों की चरचा करता था । एक गुणी जाता तो दूसरा आता था । उसकी सभा विद्वानों, कवियों, संगीतज्ञों, वाग्मियों और अन्य अनेक गुणियों से भरी रहती थी । उसमें सदा अक्षर और अर्थ पर विचार विमर्श चला करता था । एक दिन राजा जब सभा में बैठा हुआ था और गुणी लोग अपने-अपने गुणों का प्रदर्शन कर रहे थे तो अकस्मात् प्रेम की चर्चा चल निकली जिसके फलस्वरूप रूप पर विवाद छिड़ पड़ा । प्रश्न हुआ, 'सोलह कला पूर्ण उज्ज्वल रूप किस स्त्री में होता है और वह कहाँ पाई जाती है ?' सबने एक स्वर से उत्तर दिया कि ऐसा रूप पद्मिनी स्त्रियों में ही संभव है और पद्मिनी स्त्रियाँ सिंधल द्वीप में होती हैं । वैसे राजा और रंक में कोई भेद नहीं इसलिये घर-घर की स्त्रियों को भी पद्मिनी सदृश ही समझना

वाहिए; उनका रूप भी अनुपम है। सभा में एक भाटिन भी कहीं से आकर बैठी थी। वह गायन में निपुण (चतुर) और अपूर्व थी। वह भी उठकर विनयपूर्वक बोली, "महाराज ! यह सत्य है कि सिंधल द्वीप में ही पद्मिनी स्त्रियाँ होती हैं। परन्तु भगवान् की लीला अपरंपार है; वह चाहे तो ताल तलैया में भी मोती उत्पन्न कर सकता है। जंबूद्वीप में भी पद्मिनी स्त्री विद्यमान है। यह बात मैं सुनी हुई नहीं, देखी हुई कहती हूँ। पहले मैंने भी सुना ही था और उस पर विश्वास नहीं किया था। परन्तु जब आँखों से देखा तब विश्वास हुआ। दक्षिण दिशा में वह कन्या के रूप में है। संयोग से उसके योग्य अभी तक कोई वर नहीं मिला। वहाँ कुँडनपुर नाम का अनुपम नगर है। मैं समस्त जंबूद्वीप में फिर चुकी हूँ और उसके देश देश और नगर नगर से अच्छी तरह परिचित हूँ; परन्तु उस जैसा नगर मैंने कहीं नहीं पाया। बँकुंठ के विषय में जैसा सुना जाता है, वह नगर सचमुच वैसा ही रमणीक है। वहाँ के राजा का नाम भीमसेन है। वह छत्रपति राजा है और उसके समान उस मंडल में और कोई राजा नहीं। उसी राजा की पुत्री पद्मिनी है। एक सिद्ध पुरुष के वरदान से उसका जन्म हुआ। उसमें एक विशेष बात यह है कि पद्मिनी से वह एक कला बढ़कर है। उसकी हाथ की उंगलियों में अमृत है। उन्हें धोकर मृतक के मुख में देने से वह तत्काल जी उठता है। विधाता ने मानो उसे ही अमृत में स्नान कर बनाया हो और फिर उसके समान दूसरी स्त्री न बना सका हो। उसकी मुख की ज्योति के विषय में तो कुछ कहते ही नहीं बनता। शरद पूर्णिमा की चंद्रकांति में भी कहीं उच्च ज्योतिषुंज के समान वह ज्योति है। महाराज सचमुच वह पद्मिनी आश्चर्यजनक है; वैसे अभी कहीं मेरे सुनने में नहीं आई है। उसकी सुवास तीनों लोकों में भर गई है और सारा संसार भौंरा बनकर उसकी आशा से मंटरा रहा है। उसकी शोभा ने सबको लुभा लिया है। न जाने, वह किस भाग्यशाली के हाथ लगती है।" यह सुनते ही राजा की उत्कंठा बढ़ी और उसने भाटिन से कुँडनपुर नगर, भीमसेन राजा और राजपुत्री के जन्म आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन करने के लिये कहा। भाटिन ने तदनुसार पहले नगर के वृक्ष, फुलवारी, पक्षी, ताल, सरोवर, कुआँ, बावड़ी, मन्दिर, भवन, अट्टालिका, स्त्री, पुरुष, नगर से दूर भेद्य्या, हाट, बाजार, चौक, व्यापार, व्यवसाय, ठग, पाखंडी, वेदपाठी ब्राह्मण, ज्योतिषी, स्वाँग-नृत्य, नाद, बँद्य, जड़ी-बूटी, साँप, सपेरा, चित्रकार, जन्त्र-मन्त्र, चेटक और विविध जातियों का विस्तृत वर्णन किया। तत्पश्चात् राज दुर्ग, हाथी, घोड़े, राजद्वार, राजसभा और राजा भीमसेन तथा उनकी पटरानी राजमती का उल्लेख करते हुए अन्त में राजपुत्री का सर्विस्तर मनोमुखकारी वर्णन कर राजा को सुनाया। राजपुत्री के जन्म के विषय में बताया कि "राजा भीमसेन के कोई संतान नहीं थी जिसके लिये वे सदैव चिंतित रहते थे। एक दिन दमन ऋषि उनके राज्य में आकर तपस्या करने लगे। राजा ने सुना तो उनके दर्शन के निमित्त गए। ऋषि ने प्रसन्न होकर रानी को खिलाने के लिये राजा को चार पके फल दिए और कहा कि उनके प्रभाव से उनकी इच्छा की पूर्ति होगी। निदान समय आने पर उनकी रानी, राजमती के गर्भ से चार संतानें—त्रयशः तीन पुत्र और एक पुत्री—उत्पन्न हुए। वे सब बड़े भाग्यशाली, बुद्धिमान, साधु, सुशील और धर्मज्ञ हैं। पुत्री स्त्रियों में श्रेष्ठ पद्मिनी के समान है और उसका नाम दमंती (दमयन्ती) है। राजा यह सुनते ही प्रेम के वश में होगया। वह उदास

रहने लगा। न दिन को राजराज से मेल लगता और न रात को नींद आती। रागरंग से भी चित्त उत्रड़ गया। उसे जल्दी भी कन नहीं पड़ने लगी, हर समय व्याकुल रहने लगा। अपने मन का भेद भी किसी को नहीं बताता। उसकी भूख प्यास दोनों जाती रही। वह प्रेम विरह में पलने लगा। देह दिन प्रतिदिन दुर्बल होने लगी जिससे वह पीना पड़ गया। भाई-बन्धु इनकी यह दशा देख बहुत दुःखी हुए। वे उसके रोग पूरने लगे; परन्तु वह कुछ नहीं बताता। उसने सब भ्रान्त हुए। फिर भी उपचार आयुष्म हुआ और पाप शांति के निमित्त पुराण पढ़े जाने लगे। वैद्य और शोभा भी बुलाए गए। उनसे अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार रोग पढ़ाने लगे हुए राजा को व्याकुलता जान करके के निमित्त उपचार करने के लिये कहा गया। पहले वैद्य ही रोग परीक्षा के लिये गया। उसने राजा की नाड़ी देखी तो उसने रोग का निदान सुद्ध नहीं मया। दूसरी बार नाड़ी पकड़ने बढ़ा तो राजा चोट हो गया। उसने वैद्य से सफट कह दिया कि वह प्रेम का रोगी है, अन्य रोग उसे कुछ नहीं। वैद्य झीठ गया और उसने सबको राजा का यथायं रोग बना दिया तथा उस सम्बन्ध में शीघ्र से शीघ्र उपाय करने के लिये कहा। यह जानकर राज्य प्रधान, प्रहृतमेन तुरन्त राजा के पास आया और राजा की धर्म बंधाते हुए उनके प्रेम के विषय में पूछा। राजा ने भी अपने प्रेम का सर्व सच सचन दिया और कहा कि यदि शीघ्र ही प्रिय मिलन न हुआ तो उसका जीवित राजा अत्यन्त कष्टित ही जाएगा। मंत्रो ने विनय की, 'महाराज ! वियोग दुःख में धर्म पारण करना प्रथम कर्त्तव्य है। प्रेम में स्वयं भगवान् सहायक होते हैं। सच्चा प्रेम एक ही ओर नहीं रहता परन्तु वहाँ भी पहुँचता है, जिसमें प्रेम होता है। जब प्रेम चम्पित व्यवस्था तक पहुँच जाता है तो हममें सन्देह नहीं कि वह परीक्षा की पड़ी होती है। ऐसा कौन है, जो प्रेमी को दुःखमें देग उसकी सुधि न ले।' इस प्रकार मन्त्री ने राजा की धर्म बंधाने का प्रयत्न किया; परन्तु राजा को शांति नहीं हुई। उसे वियोग दुःखने वेग से मताने लगा। धर्म की बातें उसे पीड़ा देने लगीं। अन्त में उसका प्रेम प्रलाप और उन्माद की अवस्था तक पहुँच गया। कूटुम्बीजन, इष्ट मित्र और सगे सम्बन्धी सब आए और समझाने लगे। उन्होंने उसके प्रिय की इच्छा जानने के विषय में प्रयत्न करने का भी वचन दिया, पर राजा पर उनके समझाने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। सब हार मान कर चुप हो गए। उल्टे ही राजा प्रलाप की दशा में उन्हें समझाने लगा।

इधर राजा नल की यह दशा हुई और उधर उसकी वियोगाग्नि की लपट दमयंती तक जा पहुँची। वह भी रात्रि को तड़फ तड़फ उठने लगी। उसके हृदय की नल दुःख देने लगा जिससे उसकी निद्रा जाती रही और उसे चित्त ने आ घेरा। रातें उससे काटे न कटतीं। तारे गिनते गिनते प्रातः होने लगा। एक रात उसने नल का चित्र बना डाला, जिसे सखियों के सो जाने पर एक टक देखती और प्रेमाश्रु बहाती। रात दिन प्रिय के ध्यान में मग्न रहती। उसकी भूख प्यास जाती रही। रक्त कमल जैसा उसका मुख पीला पड़ गया। वह अत्यंत दुर्बल हो गई और उठने बैठने में ही उसे पसीना छूटने लगा। सखियों को अभी तक उसका यह भेद विदित नहीं हुआ। वह प्रकृत में उनसे हँसने खेलने की बातें करती, परन्तु मन ही मन रोती रहती। अंत

मैं एक दिन दमयंती की धाय उसके पास आई और उसने उसको ग्रथुपात करते देख लिया। वह बहुत चकित हुई। उसने एकांत में दमयंती से दुर्बल होने और रोने का कारण पूछा; परंतु दमयंती ने इधर उधर की बातें मिलाकर धाय को विदा किया। धाय चतुर और अनुभवी थी। उसने दमयंती की वजा का वर्णन रानी से जाकर कर दिया। रानी यह सुनकर बहुत उद्विग्न हुई। वह तुरंत दमयंती के पास आई और उससे दुर्बल होने का कारण पूछा। साय ही साय यह भी पूछा कि कहीं वह स्वप्न में डरी तो नहीं। दमयंती ने माता को उत्तर दिया कि उसे न तो कोई कष्ट ही हुआ और न उसे किसी रोग का ही पता चलता है। स्वप्न में उरने की भी कोई बात नहीं, क्योंकि वह आत्मा पर विश्वास करती है और हर समय आत्माराज में लीन रहती है। फिर भी, संदेह निवारणार्थ उपचार किया जा सकता है। रानी ने तत्काल वैद्य, ओम्हा और तंत्र मंत्र के जानकार बुलाए। सबने अपना अपना उपचार किया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। दमयंती दिन प्रति दिन वियोग में घुनने लगी। परंतु उसकी सखियाँ अब सावधानी से उसकी देख रेख करने लगीं और फलश्वरूप एक रात उनमें से एक ने उभे नल का चित्र लिये रोती देख लिया। बात उघड़ गई। दमयंती ने भी उससे अपना गुप्त भेद प्रकट कर दिया। उस सखी ने दमयंती की दयनीय दशा देख रानी को सूचित किया। रानी पहले तो अत्यंत लज्जित और क्षुब्ध हुई; परंतु फिर वैयं धारण कर दमयंती के पास गई। उसने दमयंती को बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा, 'पुत्री! तुम्हारे पिता छत्र-पति राजा हैं। चारों ओर उनका नाम है। यदि तुम्हारे प्रेम की बात कहीं बाहर फैल गई तो वह अपयज्ञ का कारण होगा। उससे अपनी प्रतिष्ठा घटेगी और जग व्यवहार विगड़ेगा। भले ही तुम्हारा प्रेम राजा नल से ही गया है, फिर भी तुम्हें वैयं धारण करना चाहिए। समय आने पर सब ठीक हो जाएगा। मैं राजा से कहकर तुम्हारा स्वयंवर रचाऊँगी। उसमें राजा नल भी आएँगे जिसे तुम इच्छानुसार पति के रूप में वरण कर सकोगी। इस प्रकार तुम्हें मनोनुकूल पति मिल जाएगा और कोई बुरा भी न मानेगा, परंतु दमयंती को वैयं नहीं वैया। उसने माता से अपनी अज्ञात स्थिति का पूरा वर्णन कर दिया। दमयंती का उत्तर पाकर रानी बहुत चिंतित हुई। वह सीधे राजा के पास गई और उन्हें दमयंती का सारा समाचार सुनाया तथा शीघ्र से शीघ्र उसका स्वयंवर करने का परामर्श दिया। राजा ने स्वजन, इष्ट मित्र, सगे संबंधी और मंत्रियों की संमति लेकर दमयंती के स्वयंवर की तैयारी करने की आज्ञा दे दी। देव देश के राजाओं के पास स्वयंवर में आने का निमंत्रण भेजा गया। राजा नल को जब निमंत्रण मिला तो वे प्रसन्न चित्त हो बड़े सज्जन के साथ कुंडनपुर की ओर चले। परंतु आधे मार्ग से ही उनके मन में नये तर्क वितर्क उठने लगे। उन्हें अब इस आशंका ने घेरा कि वास्तव में दमयंती उन्हें पति के रूप में वरण करेगी या नहीं। इससे उनका चित्त फिर अज्ञात होने लगा और वे इसी अज्ञात स्थिति में कुंडनपुर पहुँचे। कुंडनपुर की गोभा देखकर उन्हें भाटिन का कथन सत्य प्रतीत हुआ। उन्होंने स्वच्छ और अगाध जलपूर्ण सरोवर किनारे डेरा डाला। दमयंती ने जब नल के आगमन का समाचार सुना तो बहुत सन्न हुई। उसका सुरभाया हुआ मुख कमल के समान खिल उठा और वह राजमहल छत पर चढ़कर नल के डरे की ओर देखने लगी। दूर से नल को देखकर अपने मन

में 'वह खेरा प्रियतम है' ऐसा कहने लगी। उसके हृदय में नल के पास उड़कर जाने की प्रवृत्ति इच्छा हुई। वह ज़रूरी की तरह फिरने लगी और विजली के समान तड़फकर गिरने की अभिलाषा करने लगी।

इसी समय देवर्षि नारद पृथ्वी के कीतुकों को देखते हुए कैलास की ओर जा रहे थे। मार्ग में इंद्र मिल गए। इंद्र के पूछने पर नारद ने भूमंडल का समाचार कह सुनाया और दमयंती के रूप सौंदर्य और उसके स्वयंवर का भी वर्णन किया। उन्होंने इंद्र को बताया कि स्वर्ग के रामस्त देवता स्वयंवर देखने के लिये कुंडनपुर गए हुए हैं। इंद्र ने देखा कि सचनुच स्वर्ग में एक भी देवता नहीं दिखाई देता तो यम, कुबेर और वरुण को लेकर वे भी कुंडनपुर के लिये चल पड़े। रांध्या समय चारों देवता राजा नल के डेरे की ओर निकले। राजा नल ने अभिवादन कर उनका सत्कार किया। देवता वहाँ बैठकर सुसताने लगे। थोड़ी देर पश्चात् इंद्र ने राजा नल से दमयंती के पास जाकर उसे संदेश देने के लिये कहा कि "वह देवताओं में से किसी को अपना पति चुने"। राजा नल ने संदेश सुना तो भीचक रह गए। उनकी इच्छाओं पर मानों तुषार पात हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर विनय की कि "वह भी मन में दमयंती की मिलन-आशा धरे हुए है और यदि वह संदेश लेकर जाएगा तो उसे पहले ही निराश होना पड़ेगा"। फिर दमयंती के दर्शन की अपनी अभिलाषा पूरी होते जान वे संदेश लेजाने के लिये तैयार हुए केवल मार्ग की कठिनाई बाधक बताई। इंद्र ने उन्हें एक मंत्र देकर कहा, "यदि तुम चाहो तो अब इस मंत्र की सहायता से दमयंती के पास निर्विघ्नता पूर्वक जा सकते हो"। राजा नल संदेश लेकर चल पड़े और मंत्र की सहायता से राजप्रासाद में प्रवेगकर दमयंती के पास जा पहुँचे। उन्हें देखते ही दमयंती और उसकी सखियाँ बहुत लज्जित हुईं। परंतु दमयंती ने शीघ्र ही अपने को संभाला। वह अपरिचित पुरुष को देखकर विचारने लगी कि यह कौन है और कठिन पहरे के रहते यहाँ क्यों और कैसे चला आया। क्या यह मनुष्य है या सूर्य तेज वाला कोई देवता। उसने फिर राजा नल की ओर एकटक होकर देखा तो उन्हें पहचान लिया। वह दौड़ पड़ी और वेसुध होकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। राजा नल ने सिर पकड़कर दमयंती को उठाया। इस प्रथम मिलन में दोनों को अपार आनंद हुआ। हर्ष के आँसू निकल पड़े और उनका वियोग-दुःख जाता रहा। पश्चात् राजा नल ने दमयंती को इंद्र का संदेश सुनाया। दमयंती संदेश सुनकर आगववूला हो गई। उसने इंद्र की बड़ी भर्त्सना की। साथ ही साथ राजा नल पर विगड़कर बोली, 'हे प्राणनाथ ! मैं तुम्हारे प्रेम के लिये सारे संसार से उदासीन बनी हूँ। तुम्हें तन, मन, धन अर्पण कर चुकी हूँ। परंतु तुम लोगों का संदेश लेकर मेरे पास आए हो। मैं केवल तुमको छोड़ अन्य किसी को पति नहीं बना सकती। यदि तुम्हें इंद्र का संकोच हो तो मैं कल स्वयंवर में तुम्हें स्वयं ढूँढ लूँगी। उस अवसर पर इंद्र और अन्य राजाओं के सामने तुम्हें वरमाला पहनाऊँगी। इससे तुम्हें कोई दोषी नहीं कहेगा और श्वला होने के कारण इंद्र मुझे भी शाप नहीं देगा।' नल को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसका रहा सहा संदेह जाता रहा। वह डेरे पर आया और इंद्र से दमयंती का सब समाचार ज्यों का त्यों वर्णन कर दिया। इंद्र ने कुछ नहीं कहा और वह चुपचाप वहाँ से चल दिया। दूसरे दिन स्वयंवर जुड़ा।

इंद्र वरुण आदि चारों देवताओं ने, यह जानकर कि दमयंती नल पर आसक्त है और उसी को जयमाला पहनाएगी तो सभा में नल के पास उसी का रूप धारण कर बैठ गए। दमयंती जब नल को वरमाला पहनाने गई तो उसे कई नल बैठे दिखाई दिए। वह बड़ी द्विविधा में पड़ी और सोचने लगी कि किस प्रकार राजा नल की पहचान करे। उसे यह भी चिंता हुई कि यदि सभा को उसकी द्विविधा का पता चल गया तो वह उठ जाएगी और उसको नल का मिलना फिर दुर्लभ हो जाएगा। वह बहुत व्याकुल हुई। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो भगवान् के वरण में गई। उसने तन्मय होकर भगवान् की स्तुति की जिसके फल स्वरूप आकाशवाणी हुई कि 'धर्म पूर्वक तीन तरह से परीक्षा लेने पर नल की पहचान होजाएगी। जो नल का रूप धरे हुए है, उनके एक तो परछाई नहीं पड़ती, दूसरे आँखों की पलकों नहीं लगती और तीसरे उनके पाँव धरती से ऊपर अधर में रहते हैं।' दमयंती ने देखा कि केवल एक पुरुष ऐसा है जिसमें आकाशवाणी के अनुसार लक्षण नहीं घटते। उसने नल को पहचान लिया और उसे वरमाला पहना दी। इस प्रकार दोनों की मनोकामनाएँ पूर्ण हुईं और उनके आनंद का ठिकाना न रहा। इंद्रादिक चारों देवताओं को पहले तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि दमयंती ने नल को कैसे पहचाना, पर फिर नल दमयंती के मिलन हो जाने से बड़े प्रसन्न हुए। वे राजा नल के पास गए और मधुर वचनों से उन्हें संतुष्ट किया तथा वरदान दिया। इंद्र ने शालिहोत्र विद्या प्रदान की, यम ने सौ वर्ष की आयु दी और कहा कि अग्नि सदा आत्माकारी बनकर रहेगी। वरुण ने इच्छा करते ही जल प्रस्तुत हो जाने का वर दिया। इस प्रकार वरदान देकर देवता विदा हुए। तत्पश्चात् नल दमयंती का विवाह हुआ। राजा नल कुछ दिन कुंडनपुर में रह फिर दमयंती को लेकर उज्जैन चले आए और उसके साथ सुख पूर्वक रहने लगे।

इंद्रादि देवता जब अपने-अपने स्थानों को जा रहे थे तो उन्हें मार्ग में द्वापर के साथ कलियुग मिला। बातचीत होने पर कलियुग को पता चला कि दमयंती ने नल को जयमाला देकर अपना पति चुन लिया। वह भी उसे पाने की इच्छा से स्वयंवर में जा रहा था इसलिये उसे बड़ा क्रोध आया और तत्काल नल को शाप देना चाहा। इंद्र ने कलियुग को फटकारा और चेतावनी दी कि बंसा करने से उसे महापाप लगेगा जिसके फलस्वरूप उसे नरक भोगना पड़ेगा। यह कह वे देवताओं सहित चले गए। कलियुग ने नल को शाप तो नहीं दिया, पर द्वापर के सामने प्रतिज्ञा की कि वह नल से वर ठानेगा और उसे घोर कष्ट देगा। उसे वह धन, धर्म, धाम और राजपाट से रहित करेगा तथा वन वन घुमा अंत में दमयंती से उसको अलग कर देगा। वह तीर की तरह नल के पास गया और उसे धर्म भ्रष्ट करने की बात में रहने लगा। बारह वर्ष बाद उसे नल को धर्म भ्रष्ट करने का अवसर मिला। एक दिन संध्या काल में संध्या कर्म से निवृत्त होते ही नल को नोंद आगई और वह बिना पाँव धोए सो गया। कलियुग ने इतने में ही उसके शरीर में प्रवेश कर उसकी मति को फेर दिया। पश्चात् वह नल के भाई पुष्कर के पास गया और उसे नल के साथ जुवा खेलने के लिये उकसाया। उसने पुष्कर को अपनी सहायता का वचन दिया। फलतः नल और पुष्कर का जुवा हुआ। नल दाँव पर दाँव हारने लगा। दमयंती ने नल को जुवा खेलने

के लिये बहुत वर्जित किया, पर वह नहीं माना। उनके दो बालक (पुत्र और पुत्री) थे। दमयंती ने जुए का रंग देख उन बालकों को नैहर भेज दिया। अंत में जुवा समाप्त हुआ और नल धन-संपत्ति सहित राजपाट हार गया। पुष्कर ने राज पाजाने पर नल दमयंती को राज्य से बाहर कर दिया और उन्हें आश्रय न देने के लिये राज्य भर में घोषणा कर दी। नल दमयंती वन वन घूमने लगे। पुष्कर के उर से किसी ने भी उन्हें आश्रय नहीं दिया। उन्हें भूख प्यास सताने लगी। वन में दावाग्नि लगी रहने के कारण खाद्य कण भी दुःप्राप्य था। तीन दिन पश्चात् एक स्थान पर सोने का पक्षी दिखाई दिया जिसे पकड़ने के लिये नल ने धोती फेंकी। परंतु वह पक्षी कलियुग था, धोती लेकर उड़ गया। आकाश से उसने अपनी करतूत का वर्णन किया। नल धोती के चले जाने से बहुत दुखी हुआ। उसे नई आपदा ने घेरा। दमयंती के कण्ठ ने तो उसे बहुत विचलित किया। उसने दमयंती को नैहर जाने के लिये समझाया; परंतु दमयंती ने उसे विपत्ति में छोड़कर जाना स्वीकार नहीं किया। फलतः दोनों भूख प्यास सहते हुए फिरने लगे। मार्ग में कहीं फल फूल और सागपात मिल जाने पर थोड़ी बहुत क्षुधा शांत कर लेते। इस प्रकार घूमते फिरते एक नदी के तट पहुँचे। वहाँ भरपेट पानी पीकर प्यास शांत की और थोड़ी देर विश्राम किया। जब उठे तो भोजन के रूप में अनायास दो मछलियाँ पड़ी मिल गईं। नल ने उन मछलियों को उठा लिया और उन्हें दमयंती को देकर स्वयं नहाने चला गया। दमयंती ने मछलियों को छीलना आरंभ किया तो उसकी उँगलियों के अमृत ने मछलियाँ जीवित हो गईं और हाथ से फिसल कर नदी में चली गईं। दमयंती ठगी सी रह गई। नहाकर वापस आने पर मछलियों को न देख नल ने समझा कि शायद क्षुधा से पीड़ित होकर दमयंती ने उन्हें खा लिया। अतः उसे संतोष हुआ और उसकी भूख भी जाती रही। परंतु जब वास्तविक बात विदित हुई तो भाग्य को कोसने लगा। वे फिर भूखे पेट आगे बढ़े। रात्रि को एक गाँव में जाकर टिके। दमयंती के सो जाने पर नल जागता रहा। उसे महान् चिंता सताने लगी। दमयंती के कण्ठों ने उसे बहुत विकल किया। विपत्तियों से शीघ्र छुटकारा पाने की भी कोई आशा नहीं दिखाई दी। उसके सामने दमयंती का कण्ठ विकट समस्या के रूप में उपस्थित हुआ। वह चाहता था कि दमयंती कुछ दिन नैहर जाकर रहे, पर बहुत समझाने बुझाने पर भी दमयंती ने जाना अस्वीकार किया। उसे यह भी आशा नहीं रही कि साथ रहते दमयंती कभी उसे छोड़ेगी। अतएव बहुत सोचने विचारने के पश्चात् उसने दमयंती को वहीं सोती छोड़कर चले जाने का निश्चय किया जिसके पश्चात् दमयंती उसे न पाकर स्वतः पितृगृह चली जाएगी और उसका वन वन भटकने का कण्ठ मिट जाएगा। इस निश्चयानुसार वह धीरे से उठा और दमयंती को छोड़ कर चला गया। चलते समय ओढ़ने पहनने के लिये दमयंती की साड़ी और चादर आधी आधी फाड़कर ले गया। प्रातःकाल जब दमयंती जागी तो नल को न देखकर बहुत चकित हुई। वह उसे इधर उधर ढूँढने लगी पर वह कहीं नहीं दिखाई दिया। बहुत देर हो जाने पर भी जब नल नहीं आया तब उसका ध्यान साड़ी और चादर की ओर गया। उन्हें फटे देख उसे विश्वास हुआ कि वह उसे छोड़कर चला गया। उसका दुःख उमड़ चला वह विलाप करती हुई रोने लगी। वह नल की खोज में वन की ओर

चल पड़ी। उसे तन वदन की कुछ लुध नहीं रही; नल नल पुकारती हुई वन वन फिरने लगी। फिरते फिरते वह एक अजगर के सामने जा निकली जिसने लपक कर उसे लील लिया। एक ग्वाले ने, जो दूर से देख रहा था, तत्काल दौड़कर तलवार से अजगर का पेट चीर दमयंती को बाहर निकाल दिया। परंतु दमयंती के रूप को देख ग्वाला उस पर आसक्त हो गया और पकड़ने के लिये उसकी ओर बढ़ा। दमयंती ने ग्वाले की ठिठाई देख उसे श्राप दिया जिससे उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। वहाँ से भागती और विलाप करती हुई दमयंती आगे बढ़ी। चलते चलते वह ऐसे घोर वियावान वन में पहुँची जहाँ सिंह, हाथी, चीते, रीछ और अनेक हिंसक पशुपक्षियों का निवास था। एक सिंह अपनी गर्जना से सारे वन को दहला रहा था। दमयंती सीधे उसके सामने गई। उसे जीवन का मोह नहीं रहा। नल के विना उसे संसार निस्सार प्रतीत हुआ और भोजन की इच्छा के बजाय उसे मृत्यु की इच्छा हुई। परंतु उस विरहिणी की वियोगाग्नि के सामने वह सिंह सियार की तरह भाग गया। यह देख दमयंती को फिर विरह सताने लगा। वह अत्यंत व्याकुल हुई। उसके लिये न तो मृत्यु ही श्रांति और न विरह ही उसे चैन देता। वह फिर नल का नाम ले लेकर आगे बढ़ी। रास्ते में पथिकों से नल के विषय में पूछती, पर कोई कुछ न बताता। अंत में एक नदी के तीरे पहुँची जहाँ उसने अनेक मुनियों को देखा। मुनियों ने दमयंती को अपने पास बुलाया और उसका परिचय पूछा। दमयंती ने उन्हें अपनी विपत्ति की सारी कहानी कह सुनाई। उन्होंने दमयंती को सांतवना देते हुए कहा, “यह विपत्ति काल प्रेरित है, इसलिये इससे छुटकारा पाना वश की बात नहीं है। परंतु अब यह बहुत थोड़े दिनों के लिये है। पश्चात् तुझे तेरा पति मिल जाएगा और तू उसके हृदय की रानी होगी। धन, संपत्ति और राजसमाज भी पहले जैसा हो जाएगा। इसलिये निश्चित रह, चिंता न कर। तेरी सब चिंताएँ शीघ्र दूर हो जाएँगी।” मुनियों की बात सुनकर दमयंती पहले तो विस्मित हुई, पर पीछे यह समझकर कि मुनि जन सत्य बोलते हैं, उसे कुछ धीरज बंधा। वह वहाँ से कलपती विलपती आगे बढ़ी। रास्ते में बनजारों का झुंड मिला। बजारों के नायक ने परिचय पाकर उसे चंदेरी चलने के लिये कहा। उसने दमयंती को समझाया, कि वन के बजाय बस्ती में पथिक रात दिन आते जाते रहते हैं। उनके द्वारा दूर दूर की खबर हवा की तरह उधड़ती है, इसलिये पूछताछ करते रहने पर उनसे कभी न कभी नल की खबर मिल जाएगी। दमयंती नायक से सहमत होकर उसके साथ चल दी। परंतु कुछ दिन पश्चात् घने वन में निवास करते हुए अर्ध रात्रि के समय बनजारों के झुंड को जंगली हाथियों ने रौंद डाला। वे सबके सब मारे गए। केवल दमयंती और दो चार भिखारी ब्राह्मण बच रहे। दमयंती बनजारों की दशा देख अत्यंत दुखी हुई और स्वयं की मृत्यु का कारण समझ बिलख बिलख कर रोने लगी। ब्राह्मणों ने उसे समझा बुझाकर शांत किया और अपने साथ ले लिया। दमयंती उनके साथ चंदेरी पहुँची। चंदेरी में वहाँ की पटरानी ने उसे देखा और अपने पास बुलाकर उसका परिचय पूछा। उसने परिचय के विषय में केवल इतना ही कहा कि “वह कुछ दिनों की मारी हुई है”। पटरानी ने फिर कुछ नहीं पूछा, पर उसके रंग रूप से समझ

गई कि वह कोई राजरानी है। उसन उसका स्वागत सत्कार किया और वाटिका में टिकन का स्थान दिया तथा अपनी पुत्री को साथ रहने के लिये भेज दिया।

उधर नल दमयंती को छोड़कर चला तो गया पर दमयंती का विरह उसे सताने लगा। उसके बिना वह व्याकुल होकर फिरने लगा। फिरते फिरते ऐसे वन में पहुँचा जहाँ दावाग्नि लगी हुई थी। वहाँ कोई उसको पुकार पुकार कर कह रहा था, '—नल तुम धर्मात्मा, गुणी और ज्ञानी हो, जरा धेरे पास आकर एक बात सुन लो'। नल ने यह सुनकर दृष्टि दौड़ाई तो एक सर्प को जो उसका नाम पुकार रहा था—दावाग्नि में पड़ा देखा। उसकी बात मानकर वह उसके पास गया। सर्प ने कहा, "मैं पापी हूँ। मुझे अपने कर्मों और ब्राह्मण के शाप से यह गति मिली है। मैंने एक ब्राह्मण को अकारण डसा था जिसने मुझे एक ही जगह पर स्थिर रहने का शाप दिया। इसलिये मैं हिल डुल नहीं सकता। इधर यह अग्नि काल रूप होकर नेरी ओर बढ़ रही है। आप मुझे इससे बचाइए और सुरक्षित स्थान पर ले जा कर रख दीजिए। यदि आपने इस वार मुझे बचा लिया तो मैं सदा के लिये अमर हो जाऊँगा।" नल के हृदय में सर्प के प्रति दया उत्पन्न हुई और उसने उसको उठाकर अग्नि से बाहर कर दिया। जब छोड़ना चाहा तो सर्प ने दस कदम गिनते हुए चलकर छोड़ने के लिये कहा। नल ने वैसा ही किया; परंतु 'दस' फहने पर सर्प ने उसे डस लिया। सर्प के उसने से नल के सारे शरीर में विष व्याप गया और उसका रंग काला पड़ गया। नल ने कारण पूछा तो सर्प ने कहा, "मैंने आप के साथ धोखा नहीं किया है। इस समय आप कुदिनों के फेर में पड़े हैं। और यह दशा कुछ दिनों तक बनी रहेगी। आप राजा हैं, और तारा संसार आपको जानता है। कोई शत्रु इस स्थिति में आपको दुःख दे सकता है। इसलिये मैंने आपके रूपको छिपा लिया है जिससे कोई आपको पहचान न सके। जब आपके कुदिन टल जाएँगे तो आपके स्मरण करने पर मैं प्रकट हो जाऊँगा और अपने विष का शोषण कर लूँगा। आप का रंग फिर ज्यों का त्यों हो जाएगा। इसके अतिरिक्त यह विष आपकी रक्षा करेगा। इसके प्रभाव से आपके निकट न तो कोई शत्रु आएगा और न युद्ध से कोई आपसे जीत ही सकेगा। अब आप अपना नाम बाहुक रख सीधे राजा ऋतुपर्ण के पास अयोध्या चले जाइए। राजा ऋतुपर्ण जुवा खेलने की विद्या जानते हैं। आप उनकी सेवा करके वह विद्या प्राप्त करें। जुवा का मर्म जान लेने पर फिर उसी खेल द्वारा आप अपना गया हुआ राज्य वापस पाएँगे और यह दुःख फिर आपके लिये स्वप्न हो जाएगा।" यह कहकर उसने नल को दो कंचुलियाँ यत्नपूर्वक रखने के लिये दीं और कहा कि वे अवधि स्वरूप हैं। समय आने पर वे उसके तेज को पहले जैसा कर देंगे। नल सर्प के उपदेशानुसार सीधे अयोध्या पहुँचे और वहाँ राजा ऋतुपर्ण के सारथी बन कर रहने लगे।

कुंडनपुर में जब नल दमयंती के वनवास का समाचार पहुँचा तो राजा भीमसेन और रानी राजमती बहुत शोकाकुल हुए। उन्होंने शीघ्र ही नल दमयंती की खोज करने के लिये चारों ओर ब्राह्मणों और भाटों को भेजा। राजा नल का पता तो न चला, पर सहदेव नामक ब्राह्मण ने चंदेरी के राजमहल में दमयंती को देख लिया। बात प्रकट हो

जाने पर चंदेरी की रानी दमयंती से प्रेम पूर्वक मिली। उसने दमयंती को बताया कि उसकी माता और वह सगी बहनें हैं इसलिये वह उसकी पुत्री के समान है। वह दमयंती के दुःख को देखकर बहुत दुःखी हुई और उसे उसकी इच्छानुसार राज साज के साथ कुंडनपुर भेज दिया। दमयंती के कुंडनपुर पहुँच जाने पर सबकी बड़ा हर्ष हुआ, पर दमयंती को उससे कुछ सुख नहीं मिला। वह नल के विरह में घुलने लगी। उसके दुःख को देखकर राजा और रानी बहुत चिंतित हुए। उन्होंने नल को ढूँढने के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त किया। ब्राह्मण पहले दमयंती से मिले। दमयंती ने उन्हें नल के चिह्न बताए और फटी चादर दिखाकर नल के कार्य का परिचय दिया। उसने कहा, जहाँ जहाँ जाओ वहाँ-वहाँ कहना कि "एक पुरुष दुःख से दग्ध स्त्री को संग में सोती छोड़कर चला गया। उसकी चादर को भी ग्राधी फाड़कर ले गया। ऐसा निठुर कि जरा भी इवित नहीं हुआ। उसके तन, मन और हृदय को वस्त्र की ही तरह चीर कर चला गया।" उसने कहा, यदि इन बातों से कहीं डेरा डाले किसी पुरुष का पता चले तो समझ लेना कि वही वनवासी निठुर नल है। ब्राह्मणों के हृदय में भी दमयंती की पीड़ा से बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। वे उसका समझौदा संदेश लेकर चले और उसे वन-वन, नगर-नगर कहते हुए नल को ढूँढने लग। उनमें से एक ब्राह्मण अयोध्या भी गया और घर-घर, गली-गली वही बात सुनाने लगा। वह फिरते-फिरते वहाँ निकला जहाँ नल रहता था। नल ब्राह्मण के मुख से समझ संदेश सुनते ही मूर्च्छित हो गया। जब चैतन्य हुआ तो ब्राह्मण को प्रेम से बुलाकर बैठाया और इस प्रकार कहने लगा, 'हे मित्र! वही पतिव्रता स्त्री है जो पति से सच्ची प्रीति करती है। भले ही पति सेवा में उसे दुःख मिले, फिर भी उसकी सेवा में अधिकाधिक मन लगाती है। पति को सब तरह से भला समझती है और कष्ट का कारण अपने बुरे कर्मों को बताती है उसे पति के सब कार्य हितकारक जान पड़ते हैं। उसके अहित पूर्ण कार्यों को वह मन में नहीं धरती और भ्रामक दृष्टि उसको अच्छी नहीं लगती। और तुम, उस स्त्री में वे सब बातें थीं जो उसके पति की भाती थीं। वह युजुमार बड़े दुःख में थी इसलिये उसके दुःख को जब पति नहीं देख सका तो छोड़कर चला गया। परंतु इस संसार में वे विरली स्त्रियाँ हैं जो दुःख पाकर भी दुःखी नहीं होतीं। पतिव्रता वही है जो पति के रूठ हो जाने पर रूठ नहीं होतीं प्रत्युत उसके रूठ होने पर उन्हें उसी में रस आता है।' ब्राह्मण ने नल का कथन संदेश के उत्तर रूप में पाया। वह नल को अपने स्थान पर ले गया और उसका परिचय पूछा। नल ने कहा, 'मेरा नाम बाहुक है। यहाँ राजा की सेवा में रहता हूँ। मैं शालिहोत्र विद्या जानता हूँ इसलिये राजा ने अपने घोड़ों की देख-रेख और सम्हाल करने के लिये मुझे नियुक्त किया है। इसके अतिरिक्त राजा के चित्रकारों को चित्रांकन करना सिखाना हूँ और पाक विद्या में प्रवीण होने के कारण राजा के लिये अनेक प्रकार की रसोई तैयार करता हूँ। राजा मेरी सेवा से प्रसन्न रहता है और मुझसे प्रेम करता है।' ब्राह्मण संदेश का उत्तर पाकर सीधे कुंडनपुर आया और राजा तथा दमयंती को उसने समस्त वृत्तान्त सुनाया। दमयंती ने बाहुक के रूप रंग के विषय में पूछा तो ब्राह्मण ने रंग बहुत ही काला बताया और कहा कि संभवतः वियोगाग्नि में जल कर वह वैसा हो गया है। दमयंती को विश्वास हुआ कि बाहुक ही राजा नल है। वही शालिहोत्र विद्या जानता है और

चित्र तथा रसोई बनाने की कला में भी वह प्रवीण है। उसके रूप रंग ने उसको कुछ अमित अवश्य किया, पर उसका विश्वास डिगा नहीं। उसका हृदय उससे मिलने के लिये उद्विग्न हो उठा। वह माता के पास गई और उसकी संमति ले उसने नल को कुंडनपुर लाने का उपाय सोचा। उसने सहदेव ब्राह्मण को बुलाया और उसे अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण को यह समाचार सुनाने के लिये कहा, "नल लो गया है, उसका कहीं पता नहीं लगा। इसलिये उसकी स्त्री दूसरा विवाह करना चाहती है। विवाह मुहूर्त आज ही है। जो आज कुंडनपुर पहुँचेगा उसको दमयंती पति के रूप में दरेगी।" उसने सहदेव को अपनी योजना बताई और कहा कि 'यदि नल सचगुच राजा ऋतुपर्ण के यहाँ होगा तो एक ही दिन में रथ लेकर कुंडनपुर आएगा।' सहदेव ने अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण को उक्त समाचार सुनाया। राजा ने समाचार सुना तो उसके हृदय में दमयंती को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जगी। वह शीघ्र से शीघ्र कुंडनपुर पहुँचने की उतावली करने लगा। उसने तुरंत बाहुक को बुलाया और उसे दमयंती के विवाह का समाचार सुना, दिन डूबने के पहले ही रथ द्वारा कुंडनपुर पहुँचाने के लिये कहा। बाहुक दमयंती के निश्चय को सुनकर पहले तो हक्का बक्का रह गया, पर फिर यह मनभ्रंकर कि संभवतः उसने उसे ही बुलाने का उपाय रचा है, उसका दमयंती पर फिर विश्वास जमा। उसने तुरंत सम्हल कर राजा से कहा कि वह दिन डूबने के पहले उन्हें अवश्य कुंडनपुर पहुँचा देगा। उसने तेज चलने वाले घोड़ों को रथ में जोता और राजा को बिठाकर रथ कुंडनपुर की ओर ले चला। उसके हाँकने से घोड़े पवन वेग के समान चल पड़े और रथ से मेघ गर्जन की सी ध्वनि उत्पन्न हुई। राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे नल की प्रशंसा करने लगे। इसी समय राजा के कंधे से दुपट्टा खिसककर नीचे गिर पड़ा। उन्होंने बाहुक को 'दुपट्टा गिर गया' कह कर तुरंत रथ ठहराने का आदेश दिया। बाहुक ने दुपट्टे के सात कोस पर छूट जाने की बात बतला वहेड़ा वृक्ष के पास रथ ठहरा दिया। राजा को जब रथ की गति विदित हुई तो बाहुक से बोले, "बाहुक! इसमें संदेह नहीं कि तुम बड़े गुणी हो; परंतु मैं भी अद्भुत गुण का मर्मी हूँ। सामने जो वहेड़े का वृक्ष दिखाई देता है, उसमें जितने फल, फूल और पत्तियाँ हैं तथा जितने पत्ते-अधपके फल हैं एवं उनमें से जितने जमीन पर गिरे हुए हैं, मैं उन सबका अलग-अलग लेखा बतला सकता हूँ।" बाहुक यह जानने के लिये बड़ा उत्सुक हुआ और उसने राजा से लेखा पूछा। राजा ने सबका अलग-अलग लेखा बतला दिया। बाहुक ने वृक्ष उखाड़कर गणना की तो लेखा सत्य पाया। उसने राजा से वह विद्या उसे सिखा देने और बदले में उससे शालिहोत्र विद्या लेने की प्रार्थना की। राजा ने उसे अपनी विद्या सिखा दी। उस विद्या को प्राप्त करने के पहले बाहुक को छूत विद्या सीखनी पड़ी। इसलिये जैसे ही वह विद्या प्राप्त हुई वैसे ही उसे कलियुग दिखाई दिया। कलियुग नल के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और उससे क्षमा याचना के लिये अनुनय विनय करने लगा। उसने कहा कि उसे दुष्कर्मों का फल मिल गया। पतिव्रता दमयंती ने दुर्दिन में पड़कर उसे इस प्रकार शाप दिया था, "जिसने मेरे साथ अकारण ऐसा वैर ठाना है और मेरे पति को डौंवा डोल किया है, वह भी, हे विधाता! सुख की छाया में न बँठे। उसका भी गृह छूट जाय, वह

वनवास करे और उसका नुब मंदिर ढहकर धरती में मिल जाय ।” कलियुग ने कहा कि उस जाप का प्रभाव उस पर व्याप्त हो गया है । उसकी आदि ठीर नष्ट हो गई है । जिस बहेड़े के वृक्ष पर वह रहता रहा, वह उसके द्वारा कट कर धराजायी हो गया और वह पूर्ण रूप से उसके वन में है । नल को कलियुग पर दया आई और उसने उसकी क्षमा कर दिया । पश्चात् कलियुग धीमा त्याग कर चला गया और नल भी राजा ऋतुपर्ण सहित तीसरे पहर रथ लेकर कुंडनपुर जा पहुँचा । रथ की आवाज सुनकर दमयंती पति को देखने के लिये राजमहल की छत पर गई । परंतु सब लक्षण घटित होने पर भी रंग को न देख वह नल को बाहुक के भेष में नहीं पहचान सकी । उसके सामने यह समस्या अकल्पनीय रूप में उपस्थित हुई और वह भ्रम में पड़ गई ।

उत्तर राजा भीमसेन को जब राजा ऋतुपर्ण के आने का समाचार मिला तो उन्होंने उनका स्वागत किया और उन्हें भवनसार में टिकाया । राजा ऋतुपर्ण ने देखा कि वहाँ विवाह की कुछ भी तैयारी नहीं हो रही है तो वे चकराए और बड़े विचार में पड़े । राजा भीमसेन को जब विदित हुआ कि राजा ऋतुपर्ण उसी दिन अयोध्या से चले हैं तो वे भी मोच में पड़े । उन्होंने राजा ऋतुपर्ण से शीघ्रता से आने का कारण पूछा । राजा ऋतुपर्ण के मुख पर पहले संकोच और लज्जा के चिह्न झलके; परंतु तुरंत अपने को सम्हाल कर उत्तर दिया कि ‘वे केवल स्त्रियों के लिये आए हैं’ । राजा भीमसेन ने इस पर कृतज्ञता प्रकट की और उनका वड़ा सत्कार किया ।

दमयंती ने नल का समाचार जानने के लिये गुप्तचर भेजा और स्वयं महल की छत पर से कान लगाकर सुनने लगी । चर ने बाहुक से उसका और उसके साथियों के नाम पूछे तथा रथ इनामी के विषय में बतलाने को कहा, बाहुक ने कहा, “रथपति अयोध्या नरेज” राजा ऋतुपर्ण हैं । वे दमयंती के द्वितीय वर वरण करने का समाचार रूपाकर आए हैं । मेरा नाम बाहुक है और मैं राजा का सारथी हूँ । साथियों के नाम क्रमशः वारसुतो और जीवन्त हैं, वे सामान को देख रख करते हैं ।” चर ने वारसुतो से, जो पहले नल का सारथी था और उसके पुत्र पुत्री को कुंडनपुर पहुँचाकर अयोध्या चला गया था, नल का समाचार पूछा । परन्तु वारसुतो के कहने के पहले ही बाहुक बोल उठा । उसने पूछा, “क्या नल की स्त्री इसी जगह रहती है ? यह बात यह लोग जानना चाहते हैं इसलिए पूछना हूँ । फिर वारसुतो जिस गाँव को देखता है, वहाँ नल अवश्य होगा । इस समाज से वह बाहर नहीं है । यदि वह है तो इसी रथ में है । वह जिसके हृदय में रहता है वही उसको पहचान सकता है । हृदय के वर्ण को देखकर उसे अब अवर्ण वाला जाने । जो उसे (वास्तविक) वर्ण में देखना चाहेंगा वह ढूँढ़ ढूँढ़ कर थक जाएगा, पर उसे नहीं पा सकेगा । अवर्ण समझने हुए जो खोज करेगा वह पा जाएगा । जो वात-वान में भेद लेना जानता है वही उस पुरुष को पहचान सकता है ।” चर ने बाहुक को मर्मा और ज्ञानी समझा । उसे विश्वास हुआ कि वह या तो स्वयं नल है अथवा वह नल के विषय में जानता है । उसने बाहुक से उस पुरुष के विषय में भी अपनी जानकारी बनाने के लिये पूछा जिसने अयोध्या में घूमते हुए उस ब्राह्मण से बातें की थीं जो कहता फिरता था, कि “वह कौन पुरुष है जिसने पतिव्रता स्त्री को उसकी साड़ी और चादर

चीर कर तज दिया। वह बड़ा ही निठुर है, उसे जरा भी पीड़ा नहीं हुई। वह निर्दय उस सोती हुई को छोड़कर चला गया।” इस बात ने नल के हृदय को मानो चीर दिया। उसने पहले की जो दरार थी वह नई होकर फिर पीड़ा देने लगी। प्रेमाम्नि ने उस घाव को फिर सेकना आरम्भ किया। हँसता हुआ मुख रखते हुए भी उसकी आँखें लाल हो गईं और उनसे अश्रुधाराएँ निकल पड़ीं। वह फिर बोला, “हे मित्र! मुन, वह पुरुष भी हमी से है। वह या तो मैं हूँ या वह मेरे संग ही है। दूसरी जगह कहीं नहीं है। इतना सुनते ही वह चर सीधे दमयन्ती के पास आया और उससे बाहुक की सब बातें व्योरेवार कह सुनायीं। चर ने दमयन्ती से कहा, “बाहुक को ही प्रीतम समझो। मैं उसके हृदय में प्रेम की पीड़ा पाता हूँ। उसमें विरहाग्नि भरी हुई है। ऊपर से देह काली पड़ने का कारण यह है कि वह विरहाग्नि से दग्ध हो चुकी है। उसके बोलने में अग्नि की लपटें ऐसी निकलती हैं मानो उसका मुख मुख न होकर अग्नि की भट्टी ने मुख खोला हो। वह चुभने वाले वचन कहता है और उसका मन तुम्हीं में लगा रहता है। अन्त में जब तुम्हारा नाम सुना तो उसकी आँखों से रधिर की धाराएँ बह चली। वह निश्चय ही तुम्हारा पति है। समय रहते उसे पहचान लो। उसके चले जाने पर फिर रोना होगा।” दमयन्ती ने कहा, “हे भाई! मैंने भी बातें सुनकर प्रियतम को पहचान लिया है। परन्तु भ्रम को सब तरह से दूर कर देना अच्छा है जिससे पीछे पछताना न पड़े। इसलिए भोजन की सामग्री और रीते घड़े लेकर बाहुक के पास जाओ। यदि वह नल होगा तो बिना जल और अग्नि के रसोई तैयार कर लेगा। नल के देखते ही खाली घड़े पानी से भर जाते हैं और उसके स्मरण करते ही अग्नि भी चली आती है। इनके अतिरिक्त कुछ सुगन्धियुक्त फूल लेजाकर उसके हाथ में देना। यदि हाथ से मलने पर फूल ज्यों के त्यों अश्लान और सुगन्धियुक्त बने रहें तो बाहुक निःसन्देह नल के अतिरिक्त और कोई नहीं।” वह मनुष्य तत्काल फूल, जलरहित घड़ा और रसोई का सामान लेकर बाहुक के पास गया। बाहुक उन्हें देखते ही बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझ लिया कि वह सब उसकी परीक्षा के लिये भेजा गया है। उसे प्रिय का मिलन निकट दिखाई दिया। उसने पहले फूलों को लेकर हाथ से भला तो उनके तेज रंग, और सुवास में और वृद्धि हो गई। देखने वाले आश्चर्य करने लगे। फिर उसने खाली घड़े की ओर देखा, वह पानी से भर गया। तत्पश्चात् वरतन के अन्न में नमक जल डाल और सुवास का संचार कर उसे हाथ में लिया तो तत्काल उफान आकर भोजन भी तैयार हो गया। फलतः यह परीक्षा सब तरह उसकी साक्षी बन गई। वह मनुष्य भोजन के वरतन को लेकर दमयन्ती के पास वापस आया और उसे वरतन देकर जो कुछ देखा वह वर्णन कर सुनाया। दमयन्ती ने पहले भोजन को सूँघा और फिर प्रेम से उसे खाया तो उसमें सुगन्धि, रस और मिठास आदि सब वैसे ही पाए जैसे नल के बनाए भोजन में रहते थे। इस पर उसे निश्चय हो गया कि बाहुक ही उसका पति है। उसने अपने बालकों को भी उसके पास भेजा। बाहुक ने उन्हें दौड़कर गले लगा लिया और रोने लगा। राजा ऋतुपर्ण यह देख रहे थे। उन्होंने बाहुक से उन बालकों का परिचय पूछा। बाहुक ने कहा, “महाराज! इन्हीं बालकों के समान मेरे दो बालक थे जिनका स्मरण कर मैं रो उठा हूँ। दमयन्ती ने जब इसका भी परचा पाया तो उसे बाहुक के पति

होने में पूर्ण निश्वास हो गया और वह तुरंत माता के पास गई। उसने माता को पति के आने का समाचार दिया और जिस जिस प्रकार पति की परीक्षा की वह भी सब सुनाया। माता ने उसी क्षण चर भेजकर बाहुक को बुलाया। दमयंती बाहुक के सामने जाकर सीधी खड़ी हो गई। नल की दृष्टि जैसे ही दमयंती की दृष्टि से मिली, वह रोने लगा। उसके आंसू निकलते समय लाल दिखाई दिए और गिरते समय सफेद। यह नल में विशेष बात थी। दमयंती ने जब यह भेद भी पाया तो वह जोर से रो उठी। वह बोली, 'प्रियतम ! मुझे वन में छोड़कर तुमने जैसा किया वैसा कोई नहीं करता। संग रहते भेद उत्पन्न किया और जिस मिलन की सदा इच्छा रहती है उससे अलग हो गए। दूर भी होते हैं तो परीक्षा नहीं होती। विछूड़े हुए मिलन ही जाने पर फिर गले लगते हैं। सचमुच, मैं इस मिलन के कारण मारी गई। मैं तुमसे जुड़ी हुई थी, पर तुमने अलग किया। सुना है, कपटी लोग मिलन में भी अलग रहते हैं। हे कंत ! तुम्हें भी मैंने वैसा ही देखा। बताओ, कौनसा हित सोचकर पहले भूमि पर विछीना विछाया और मुझे गल से लगा सुलाया फिर मुख निद्रा में छोड़ विछोह किया। क्या मिलन में कोई ऐसा करता है ? यदि मैं जानती कि मुझे कपट से सुलाकर तुम स्वयं अलग हो रहे थे तो मैं किस लिये सोती और किस लिये तुम जैसे रत्न को खोती। तुमने मुझे कंठ से लगाकर मुलाया, पर मन में गाँठ बंध रहे। फिर भी, जाने दो, वह बात बीत गई। अब तो निलो। क्या अब भी वह गाँठ नहीं छोड़ोगे ?' नल ने कहा, " हे सुन्दरी ! यह सब प्रारब्ध बग हुआ। प्रारब्ध कभी नहीं मिटता। उसका भोग करना पड़ता है। जो कुछ किया प्रारब्ध ने किया। उसी ने कारण के रूप में कलियुग को बीच में डाला जिससे विछोह हुआ। अब दिन फिर लौट आए हैं। वह कलियुग मित्र बन गया है। परन्तु तूने तन के लिये विछोह माना, नहीं तो मैं तुझमें ही समाया हुआ हूँ। क्षण भर के लिये भी तुझसे अलग नहीं हुआ, भूल से तेरे ही मन में भ्रम उत्पन्न हुआ है। तूने ही अपने मन में गाँठ डाली है जिसके कारण मुझमें संबंध विच्छेद कर देह से सम्बन्ध जोड़ा है। देह सुख के लिए तूने मुझे भुला दिया है और वर बुलाकर वरण किए हुए को खो दिया है। हे दमयंती, तेरी देह का पति सुखी पुरुष है, पर मैं तेरे हृदय का स्वामी हूँ इसलिये देह की तरह अपना हृदय भी मुझ से न फेर।"

दमयंती नल का उत्तर सुनकर बहुत विकल हुई और बोली, "—हे स्वामी मैंने तुमसे सम्बन्ध नहीं तोड़ा है वरन् सत्रमे उदासीन होकर तुमसे ही नाता जोड़ा है। देह का सुख मैं कुछ नहीं गिनती। अपना तन, मन और प्राण सब कुछ तुम्हीं को समझती हूँ। तुम्हें बुलाने के लिये ही आज का आयोजन किया। एक दिन में सौ योजन की गति से रथ चलाने की कला केवल तुम्हीं जानते हो। इसलिये यह सोचकर कि यदि तुम अयोध्या में हो तो रथ द्वारा एक ही दिन में यहाँ पहुँचोगे। फिर भी, यदि तुमने अपने मन में ऐसा ही समझ लिया है तो ये सूर्य और चन्द्रमा साक्षी भरेंगे तथा मेरी देह के संगी—पृथ्वी, पवन, अग्नि और वरुण भी भ्रम का निवारण करेंगे।" दमयंती के ऐसा कहते ही तत्क्षण अग्नि, पवन और वरुण देह सहित प्रकट हुए; उन्होंने उसके सत की साक्षी दी। इससे नल को परम संतोष हुआ और उसने दमयंती को शृंगार करने के लिये कहा।

स्वयं भी उसने सर्प का स्मरण किया। सर्प तत्काल प्रकट हुआ और उसने उसका विष उतारा तथा कंचुली पहना कर उसे पूर्व रूप में ज्यों का त्यों कर दिया। तत्पश्चात् नल और दमयंती आनन्द पूर्वक मिले।

राजा ऋतुपर्ण को जब नल दमयंती के मिलन का समाचार मिला तो वे उसी समय नल के पास गए और उससे अपनी अज्ञानता के लिये क्षमा माँगी। नल ने राजा ऋतुपर्ण की प्रशंसा की और उनकी उदारता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें शालिहोत्र विद्या सिखाई। राजा ऋतुपर्ण कुछ दिन नल के साथ प्रेम पूर्वक रहकर फिर अयोध्या चले गए। तत्पश्चात् नल शीघ्र ही राजा भीम से बहुतसा धन और हाथी, घोड़े, रथ तथा सेना लेकर कुंडनपुर से उज्जैन आया। उसने पुष्कर को जुए में हराकर अपना राज्य वापस ले लिया और फिर दमयंती के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

महाभारत की कथा से अंतर

महाभारत में बृहदश्व ऋषि और युधिष्ठिर के संवाद के रूप में नल दमयंती की कथा वन पर्व के अन्तर्गत अट्ठाईस अध्यायों (५२-७६) में वर्णन की गई है। उससे प्रस्तुत कथा में कई स्थलों पर अंतर पाया जाता है :—

आरम्भ का तो अधिकांश (दमयंती के स्वयंवर की चर्चा चलन तक) कल्पित है। इसमें पहली बात तो यह है कि हंसों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। महाभारत में हंस नल दमयंती के बीच प्रेम संदेसा पहुँचाने का कार्य करते हैं और तत्पश्चात् लुप्त हो जाते हैं। प्रस्तुत कथा में हंसों के स्थान पर भाटिन की योजना की गई है। भाटिन रूप में अनूप और गायन में निपुण एवं अपूर्व है। वह नल की सभा में आरंभ में ही प्रकट हो जाती है और पद्मिनी के विषय में चर्चा छिड़ते ही प्रमुख वक्ता का स्थान ग्रहण करती है। उसकी प्रगल्भ वाक्शक्ति के आगे सारे सभासद निस्तेज हो जाते हैं। पद्मिनी के परिचय से आरम्भ कर कुंडनपुर नगर, राजा भीमसेन, रानी राजमती, पद्मिनी स्वरूपा राजकुमारी दमयंती और हस्तिनी, शंखिनी, चित्रणी एवं पद्मिनी नामक स्त्रियों के विशद वर्णन द्वारा वह नल को मुग्ध करती हुई उसकी सुध बुध खो उसे प्रेम पथ पर आरूढ़ करती है। इसके पश्चात् हंसों की तरह उसका भी कोई पता नहीं चलता। इससे स्पष्ट होता है कि स्वाभाविकता लाने के लिये भाटिन द्वारा प्रस्तुत किया गया विस्तृत विवरण कवि को अभिप्रेत था। हंसों द्वारा, उनके पक्षी होने के कारण, वैसा वर्णन करना सम्भव न था एवं वह अस्वाभाविक होता। दूसरी बात यह है कि दमयंती को पद्मिनी के रूप में चित्रित किया गया है और उसकी उँगलियों में अमृत बताया गया है जिसके आधार पर वन में मछलियों के जीवित होने की कथा गढ़ी गई है। महाभारत में ऐसा कुछ नहीं है। वहाँ दमयंती को अत्यन्त रूपवती बताया है; मृतक मछलियों के जीवित होने की कथा उसमें नहीं है। तीसरा परिवर्तन यह किया है कि दमन ऋषि को राजधानी से चार कोस दूर वन में तपस्या करते हुए दिखाया गया है। राजा भीमसेन वहाँ उनके दर्शन के हेतु जाते हैं और ज्ञानोपदेश के अनन्तर फल प्राप्त करते हैं जिनके प्रभाव से रानी के गर्भ से सन्तान उत्पन्न होती है। महाभारत के अनुसार

ऋषि राजा के ही घर पर आते हैं। चीया परिवर्तन यह है कि दमयन्ती के हृदय में नल का प्रेम सहसा उत्पन्न होता है। यह प्रेम का माहात्म्य दिखाने के लिये किया गया है।

कल्पितांश के पञ्चात् मूल कथा में प्रमुख रूप से निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं—

१—इंद्र के साथ वरुण, कुबेर और यम कुंडनपुर जाते हैं। महाभारत में कुबेर के स्थान पर अग्नि का उल्लेख है। इसी तरह इनके द्वारा नल को वरदान देने में भी हेर फेर है।

२—देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के भवन में पहुँचने पर नल को दमयन्ती ने पहचान लिया जिससे उसके प्रेम की महत्ता प्रकट होती है। महाभारत में ऐसा नहीं है। वहाँ नल अपना परिचय देता है।

३—दमयन्ती नल का रूप धारण किए हुए देवताओं को पहचानने में असमर्थ होने पर अर्चित प्रभु की गरुण में जाती है। महाभारत में दमयन्ती देवताओं से ही अपना वास्तविक रूप धारण करने के लिये प्रार्थना करती है।

४—वनजारों के स्वामी के समझाने बुझाने पर दमयन्ती उसके साथ चंदेरी चलती है। महाभारत में दमयन्ती स्वतः ही वनजारों के स्वामी के साथ चंदेरी चलती है।

५—नल का राजा ऋतुपर्ण को लेकर कुंडनपुर पहुँचाने पर दमयन्ती ने उसका समाचार जानने के लिये चर भेजा और उसकी परीक्षा के निमित्त उसी चर के हाथ फूल, जलरहित घड़ा और भोजन की सामग्री भेजी। महाभारत में कौशिकी नामक दूती नल का समाचार लाने के लिये भेजी जाती है। उसमें फूल, घड़ा और भोजन सामग्री भेजने का उल्लेख नहीं है।

६—नल चर द्वारा बुलाए जाने पर जब दमयन्ती के सामने खड़ा हुआ तो रोने लगा। उसके आँसू आँखों में लाल और गिरने समय सफेद दिखाई देते थे। महाभारत में ऐसा कुछ नहीं लिखा है।

७—नल को वास्तविक रूप में करने के लिये कर्कोटक मर्ष उपस्थित होता है और उसके शरीर से विष का गोपण करता है तथा उसे दी हुई कंचुली पहनाता है। महाभारत में कर्कोटक के आने का उल्लेख नहीं है, केवल कंचुली पहन कर ही नल अपने प्रकृत रूप को प्राप्न करता है।

इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे अंतर बहुत हैं, पर वे नगण्य हैं। प्राचीन (शाक्य या पौराणिक) कथाओं को अपनी कल्पनानुसार काव्य रूप देने में कवि लोग स्वतंत्र— इसमें संदेह नहीं। परंतु एक स्थल पर कवि की उद्भावना चित्त है। दमयन्ती की उम्र में अमृत होने की कल्पना बहुत शिथिल है। उस अमृत को स्वयं नल दमयन्ती ने जाने कितनी बार चखा होगा। इस दृष्टि से उन्हें अमर हो जाना चाहिए था। इस अतिरिक्त मरे हुए वनजारों के समूह को भी जीवित किया जा सकता था। इन वा.

को दृष्टि में रखकर कवि को कुछ न कुछ सामंजस्य बैठाना चाहिए था । कहने का तात्पर्य यह है कि यह कल्पना अव्याप्ति दोष से ग्रसित है ।

सूफी विचारधारा

प्रस्तुत काव्य में सूफी विचारों का अनुकरण दो तरह से किया गया है । एक तो रचना प्रकार को लेकर और दूसरा प्रेम साधना को लेकर । यहाँ इनका क्रम से उल्लेख किया जाता है:—

रचना प्रकार

१—सूफी प्रेमाख्यानकों की तरह प्रस्तुत काव्य भी अर्धघो में है । इसकी रचना भी दोहे चौपाई छंदों से हुई है और इसमें भी अध्यायों या सर्गों का उपयोग नहीं किया गया है ।

२—सूफी लोग कथा के पहले परमात्मा की स्तुति, सगसामयिक शासक की प्रशंसा, पैगंबर की वंदना और गुरु (पीर) का वर्णन करते हैं । इसमें भी ऐसा ही किया गया है । समसामयिक शासक (शाहजहाँ) और गुरु का वर्णन पीछे किया जा चुका है । परमात्मा की स्तुति वेदांत के आधार पर है । उसमें वेदांत पर स्थित अन्य दार्शनिक विचारों विशिष्टाद्वैत, भेदाभेद और अद्वैत का भी उल्लेख मिलता है:—

जो कोउ कहै 'अंस' हौं ताको । एक रूप मेरो अरु दाको ॥
तिहि अपनो अंसै कै जानी । निरमल असल आप सौं मानी ॥

—विशिष्टा द्वैत

जी कोउ ढीठ कहै हौं सोई । मो अरु वामं भेद न कोई ॥
तापर रीझि बहुत सुख मानै । अंतर मेटि आप सौं सानै ॥

×

×

×

निज समुझौ तो एकौ सोई । साहब सेवक भेद न कोई ॥
जड़ चेतन अंतर पुनि नाही । सब समाइ रहै ता माहीं ॥
ज्यों जल माहिं बुद बुदाभयेऊ । है जल नांव और होई गएऊ ॥ आदि

—अद्वैत [दोहा-७]

साहब (मोहम्मद साहब) धर्म का भी उल्लेख मिलता है:—

जो ताकौ साहब कै मानै । ताहि वही सेवक कै जानै ॥

[दोहा—७]

पैगंबर (मोहम्मद साहब) की वंदना भी सूफी रचनाओं में रहती है । पद्मावत में मोहम्मद साहब को परमात्मा द्वारा निर्मल ज्योति के रूप में उत्पन्न किया गया बताया गया है । प्रस्तुत काव्य में भी इसका अनुगमन करते हुए मोहम्मद साहब का तो नहीं, पर निर्मल ज्योति का वर्णन है । इसका 'मीत' शब्द से भी उल्लेख है, जिसके गुण का कवि कथन करता है—

अब 'गुन' कथन 'भीत' कै करौं । जिन्ह कै प्रेम प्रताप निस्तरौं ॥
जवते प्रघट मोहिं निसितारे । उन एते केतै निस्तरौं ॥
प्रथम 'निरमल वह जोति' उपाई । तिन्ह कै प्रीत सब सिष्टि बनाई ॥
रसन एक अस्तुति बहु भेखा । लिखै सो को नाहिन कछु लेखा ॥
जाके पेम हिय यह मदमाते । ताकै प्रीत प्रथम रंगराते ॥
हौं बलहार नांव कै जाग्रौं । जिन्ह प्रताप प्रभु दरसन पाग्रौं ॥
औं उन्ह प्रेम विन मुदित न होई । जिन भूली भटकौं मत कोई ॥

[दोहा—१२

परंतु इस ज्योति को श्रुति में उल्लिखित ज्योति समझना चाहिए:—

‘तत्तेजोऽसृजत’

नंददास ने भी ‘परमज्योति’ के रूप में इस ज्योति का वर्णन किया है:—

प्रथमहि प्रणउ पेम मय, ‘परम जोति’ जो ग्राहि ।

रूप उपावन ‘रूप निधि,’ निति कहत हे जाहि ॥

—रूप संजरी

गो० तुलसीदास जी ने भगवान् राम को ‘प्रकास रूप’ और ‘प्रकासनिधि’ कहा है जो इस ‘निर्मल ज्योति’ से भिन्न नहीं:—

सहज ‘प्रकास रूप’ भगवाना । नहिं तहें पुनि विज्ञान विहाना ॥

×

×

×

पुरुष प्रसिद्ध ‘प्रकास निधि,’ प्रगट परावर नाथ ।

रघुकुल सनि सस स्वामि सोई, कहि सिवै नायउमाथ ॥

—वालकांड

कवि कहता है, यही ज्योति प्रेम का विषय है और इसके प्रेम के बिना मुदित संभव नहीं । जिसके हृदय को यह ज्योति प्रेम में मतवाला बनाती है या बनाना चाहती है वह पहले प्रीति में रंगता है । वृष्णवों की प्रेमा भक्ति की तरह ही सूफियों का यह प्रेम है । नंददास ‘रंगीले प्रेम’ द्वारा ही भगवान् का सांनिध्य प्राप्त करते हैं:—

जदपि अगम ते अगम अति निगम कहत हे जाहि ।

तदपि ‘रंगीले प्रेम’ तेनिपट निकट प्रभु ग्राहि ॥

—रूप संजरी

तुलसी भक्तों के प्रेम के कारण अगुन (निरगुन) का सगुन (‘सहज प्रकास रूप’ भगवान् राम) होना बतलाते हैं:—

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रम बस सगुन सो होई ॥

वही, वालकांड

कहने का तात्पर्य यह है कि यह ‘निर्मल ज्योति’ पदमावत में वर्णित मोहम्मद साहब की ‘ज्योति’ से भिन्न है । हाँ, इतना अवश्य है कि इसका व्याख्यान मोहम्मद साहब

की वंदना के ढंग पर हुआ है। इसका कारण सूफियों विशेषतः पदमावत के रचना प्रकार का अनुकरण करना है। पदमावत में मोहम्मद साहब की वंदना इस प्रकार है:—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाउँ सुहम्मद पूनिउँ करा ॥
 प्रथम जोति विधि तेहि कै साजी । ओ तेहि प्रीति सिस्टि उपराजी ॥
 दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा ॥
 जौ न होत अस पुरुष उज्यारा । सूभिन परत पंथ अंधियारा ॥
 दोसरइँ ठाँव दई ओइँ लिखे । भए धरमी जो पादित सिखे ॥
 जगत वसीठ दई ओइँ कीन्हे । दोउ जग तरा नाउँ ओहि लीन्हे ॥
 जेइँ नहिँ लीन्हे जरम सो नाऊँ । ताकहँ कीन्हे नरक सहँ ठाऊँ ॥

गुन अवगुन विधि पूँछत होइहि लेख अउ जोख ।

ओन्हे बिनउव आगे होइ करव जगत कर मोख ॥१॥११॥

प्रेमसाधना

सूफियों का मत अनन्य प्रेम द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना है। समस्त संसार को व परमात्मास्य देखते हैं। उनके इस सिद्धांत का आधार अद्वैत मूलक सर्वात्मवाद है जिसके आगे न तो अंधविश्वास ही टिकता है और न अंध परंपराएँ ही रहती हैं; लोक लज्जा के लिये भी कोई स्थान नहीं रहता। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में यह अद्वैत मूलक प्रेम भावना अप्रकट रूप में रहती है। प्रेमाख्यानकों से भिन्न भावात्मक शैली में लिखे गए सूफी काव्यों में एकांतिक प्रेम की उदात्त व्यंजना पाई जाती है। हिंदी में मिरजा मुहम्मद जान की 'प्रेमलीला' इस विषय की सुंदर कृति है। उसमें बाँसुरी द्वारा प्रियतम (परमात्मा) का विरह जगाया गया है। बाँसुरी बनवारी से बिछुड़ कर विरह दुःख में रो उठती है। उसका रोना सुनते ही चराचर सृष्टि में खलबली मच जाती है। सब मोह निद्रा से जगते हैं और सबको प्रियतम की स्मृति होती है। फलस्वरूप वे सब भी प्रिय के विरह में रो उठते हैं:—

बाँसुरिया बिछुरन भइ भारी । बिछुरन दुख वह रोइ पुकारी ॥
 जब वह रोइ बिछुर बनवारी । धुनि सुन रोये पुरुष अरु नारी ॥
 जल सों बिछरि मछरिया रोई । मेरो मिलन बहुरि कव होई ॥
 कैसे निवहै जीवन मेरो । रीत परे संग तजौ न तेरो ॥
 निकसि तीर सों बाहर पड़ी । खन उलटी खन सूधी गड़ी ॥
 तरुवर सों जिमि पाती भड़ी । पौन की मारी इत उत पड़ी ॥
 विरह वियोग किमि जान कोई । जापर बीते जान सोई ॥

अपने प्रीतम लाल से, मिलि बिछुरै जनि कोइ ।

बिछुरन दुख सो जानहिँ, जो कोइ बिछुरा होइ ॥

पाद टिप्पणी—

१. उन्नीसवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० सं०), संख्या १२७ ।

वंशी की ध्वनि का संबंध नाद से है। नाद को हिंदू शास्त्रों में ब्रह्म (ॐकार) का स्वरूप माना है। प्रणवनाद (ॐकार) से अनाहन (सूदमनाद) और आहत (स्थूलनाद) उत्पन्न हुए। आहत नाद से दो प्रकार के नाद निकले—जीव जन्य (शब्द) और जड़जन्य (ध्वनि) तथा इन प्रत्येक के अमधुर और मधुर करके दो दो भेद हैं। इस प्रकार जीव की तरह वंशी ध्वनि भी वनवारी (शब्द ब्रह्म, ॐकार) से विछुड़ी हुई है, ऐसा भी समझना चाहिए। प्रत्यभिज्ञा जगने पर वह रो रही है। कहते हैं गोपियों के प्रति अभिमान दिखाने के कारण श्री कृष्ण की वंशी को भी उनसे अलग होना पड़ा। स्वामी हित हरिवंश जी को श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार बताया जाता है। ऐसे ही और भी कई वंशी के अवतार कहे जाते हैं। सूफी लोग अपने 'प्रेम संगीत' की भी वाँसुरी से उपमा देते हैं:—

फिर अनुराग 'वाँसुरी' वाजी । सँ अभिलाख स्वान्त उपराजी ॥

—अनुराग वाँसुरी

वर्णव भक्ति साहित्य में श्रीकृष्ण की वंशी की प्रसिद्धि तो है ही, संतों के पदचक्र साधन क्रिया में भी इसका उल्लेख मिलता है। परंतु वहाँ कान्हा के द्वारा वजने के कारण यह मन को 'भूपाल' बनाकर निहाल कर देती है। त्रिकुटी से कुछ ऊपर की साधना क्रिया में प्रवृत्त होते ही वंशी की ध्वनि सुनाई देने लगती है:—

सोची सोची मनुआ रहल मुदभाइ । ऐहि अवसर कान्ह मुरली वजाइ ॥

मुरली की धुनि सुनी मन भैला पूसिआल । रहली भीछूक जनु भँलो भुअपाल ॥

धुनी सुनी मनुआ उपर चली गेल । तहवा देपल एक श्रदबूद पेल ॥

बीना रबी ससी ताहा होला उजिआर । रीमी भीमी मोलीया वरीसु जलघार ॥*

—महराई गोसाईं धरनीदास

अस्तु, प्रस्तुत काव्य में भी कवि ने बहुत से स्थलों पर अपना (वास्तविक) अर्थ छिपाया है जो सब किसी से नहीं पाया जा सकता। बहुत से लोग समुद्र को जहाजों द्वारा पार करते हैं, परंतु मोती खोजने वाले समुद्र में ही घँसते हैं:—

बहुत ठौर निज अरथ डुरावा । सब काहू पं जाइ न पावा ॥

बहुत लोग बोहित चढ़े, दधि पर आवैं जाँहि ।

मुकता पावै मरजिया, वसि खोज ता माँहि ॥२७॥

इस काव्य में नलदमयंती के प्रेम के अतिरिक्त ज्ञान और व्यवहार धर्म का प्रतिपादन है। प्रथम के अनुसार नल के लिये दमयंती और दमयंती के लिये नल प्रेमस्वरूप परमात्मा के रूप में हैं। दोनों के हृदय में जब एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रकट होता है तब दोनों मिलने के लिये व्याकुल होते हैं। परंतु लोक की अनेक कठिनाइयों

पाद टिप्पणी—

* अठारहवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० सं०), संख्या ११४ ख ।

के कारण सरलता से मिल नहीं पाते । इसलिये वे विरहाग्नि में तपने लगते हैं । यही विरहाग्नि उनकी साधना स्वरूप है । उनकी इंद्रियाँ अपने-अपने विषयों से विरत हो जाती हैं । उन्हें न तो नींद ही आती है और न भूख प्यास ही लगती है । राग रंग से मन हट जाता है और विरक्तों की तरह संसार से कोई नाता नहीं रह जाता । उनकी चित्त-वृत्तियाँ एक दूसरे में एकाग्र हो जाती हैं । सच्चै (सात्त्विक गुण प्रधान) प्रेम में उनकी इस एकाग्र (ध्यान, धारणा और समाधि युक्त) स्थिति का सादृश्य गीता के निम्नलिखित श्लोक के संयमी में मिलता है :—

या निशा सर्वं भूतानां तस्यां जागति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

इस प्रकार विरह के तीव्र वेग के कारण प्रलाप की स्थिति में दोनों अपने-अपने प्रेम को एक दूसरे के प्रति जिस प्रकार व्यक्त करते हैं उससे प्रेम की अलौकिकता अलौकिकता की ओर जाती हुई लक्षित होती है । यही अलौकिकता प्रस्तुत कवि का गुप्तार्थ है । इसमें प्रेम की अलौकिकता के साथ-साथ रहस्यमय सत्ता के प्रति भी इंगित रहता है । कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

नल का विरह

[प्रेम का अलौकिक वर्णन और परमात्मा की ओर संकेत]

हों जागों तोहि लागि दमावत । तोहि सुख चैन नींद कित आवत ॥
हौ भैं भवंर भवौ वैरागी । तू सरोज सुख सर अनुरागी ॥
हौ चातक पिउ पिउ रट मोरे । तू स्वांती भायै नहि तोरे ॥
मो मन चित चकोर बिन देखें । तू सो चंद तोर नहि लेखें ॥
मो गति ज्यों मछरी बिन पानी । तू अपने पानी अभिमानी ॥

[दोहा—१२२

× × ×
मो सों बिनती पै बन आवैं । होइ सो वहै जो पिउ कौ भावैं ॥

× × ×
औ पुनि यहाँ वात कछु नाहीं । सब जग जीव देइ तो माहीं ॥
जाकों कृपा दृष्टि कर हेरसि । ताही के दुख दाह निवेरसि ॥

[दोहा—१२३

× × ×
पेम समुद्र अथाह अपारा । तहां परै को काढन हारा ॥
नदी समाइ जाइ इक ओरा । का सिख बूंद करै तिहि जोरा ॥

× × ×
पेम पहार अकास उचाहीं । सिख दोला ना ऊपर ताहीं ॥

[दोहा—१

प्रेम साधना-पंथ

सो तो सूभत तुमहि दुहेला । जिनहं न भयो पेम कर मेला ॥
 उपज न हियै विरह वैरागू । भयो न अगवहं कै पिछलागू ॥
 तिन यह पंथ सुगम करि जाना । जिन्ह कर पेम पंथ मन आना ॥
 हों सिख सीस चरन कर धाऊँ । पैग पैग चल चाव वढाऊँ ॥
 वसों न बीच रैन दिन चलूँ । तौ लगि जी लगि मीतहिं मिलूँ ॥
 ज्यों ज्यों चलूँ उमंग त्यों होई । पेम पंथ पर थकै न कोई ॥
 जो तन हार रहै तजि जाऊँ । मन पग पिउ मग सों न डिगाऊँ ॥

पेम पंथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहिं ।
 कसक करेजं काटही, नीर जु नैनन माहिं ॥१२६॥

× × ×

सीसै एक ओर कै डारै । तब इहं ओर आइ पग धारै ॥
 पेम खेल महं मार्यै वाजी । सो खेलै जो इह पर राजी ॥
 यह देखो पुनि अचरज रीता । जो हारै जानहु तिन जीता ॥

पेम समुद्र अपार अति, नाहिं ओर नहिं छोर ।
 जो बूड़े सोई तिरै, यहै पेम दधि ओर ॥१२७॥

सांसारिक भोगों से विरक्ति

हों अस राज न मन मै लाऊँ । जिहि सुख उरभिमीत विसराऊँ ॥
 जो जिउ मांभ मिले पिउ सोई । तौ यह राज कुसल पै होई ॥
 नाहित पेम अगिन तन जारी । भूठे राज जनम का हारौ ॥

हार जनम राजा घनै, गए उधांइ निसान ।
 तै जीते जेई परै, जूभ पेम मैदान ॥१२८॥

[लोक लज्जा की उपेक्षा]

पुनि तुम यह सिच्छा मुख आनी । चलै देस महं हास कहानी ॥

× × ×

डरों न हास कलंक सों, जो पेम रहे मन माहिं ।

इहि आँसू परवाह जल, कित कलंक ठहराहि ॥१३२॥

पुनि तुम यह बोले सिष वानी । राजन्ह महँ होइ है अपमानी ॥

× × ×

भूठ मान ए मान सब, काया के सनमान ।

मान कियो मै मान सों, रीभ पेम अपमान ॥१३३॥

× × ×

[प्रिय शोध (मिलन) की कठिनाई]

बढ़ी रजाई ऊँच दुवारा । सब कर तहाँ कहाँ पँसारा ॥
 करहि द्वारपालक कठिनाई । आयसु विना पवन न दुराई ॥
 कै सो जाहि जो ग्याता होई । जिहि श्री राजहि भेद न होई ॥
 ग्यातहि जात अटक कछु नाहीं । को वरजं अपने घर जाहीं ॥
 कै सो जाहि जिहि आप बुलावै । पेम बसीठ होइ पहुँचावै ॥
 जो जद्यपि पहुँचै उतकोई । तो आवन पुनि उलटि न होई ॥
 हेरि रूप वह जाइ हिराई । तिहि मिल आपा देइ गवाँई ॥
 इहै कठिन सोध पिउ केरा । फोउ न फिरा जिनहि मुख हेरा ॥
 काहि पठाऊं पीउ पहं, को दो जिउ को होइ ।
 एक जीउ के देइ विनु, पीउ न पावँ कोइ ॥१३५॥

[ध्यान की एकाग्रता और अद्वैत स्वरूप दर्शन]

साँची प्रीत न रहै दुरानी । जिन जासों लाई तिन जानी ॥
 तन यह दिस्टि मात्र लों न्यारा । सो एकइ जो जानन हारा ॥
 श्री पुनि अचल प्रीत जब होई । तब तिनहूँ महं भेद न कोई ॥
 अंतर तौलों देइ दिखाई । जौलों में तू बीच कचाई ॥
 तनमै भए न अन्तर कोई । तन श्री प्रान सो एक होई ॥

तन सब ताहि अतन महं, अतन सब तन माहं ।
 वहै अतन तव में भयो, अतन दुतिय पुनि नाहं ॥१३६॥

ध्यान की एकाग्रता सिद्ध हो गई तो प्रेम साधना भी सिद्ध होगई । फलस्वरूप प्रियतम का दर्शन या तो उसी समय हुआ समझिए और यदि नहीं तो उसमें नाम मात्र का विलंब समझना चाहिए । जब 'अति प्रवल अवस्था' हो जाती है तो 'बरखा' होने में कोई संदेह नहीं रह जाता:—

जब अति प्रवल अवस्था होई । तब बरखा संदेह न कोई ॥
 कहु को दुखी जो पेम दुख, जिन सुधि पिय ना लेइ ।
 बँद लिये औखद निकट, पीर विना कहं देई ॥१३७॥

इसीलिये नल की प्रेम साधना अंतिम सीमा तक पहुँच गई तो उसे स्वयंवर में जाने का निमंत्रण मिला ।

दमयंती का विरह

[प्रेम साधना की गंभीरता]

सुरत ध्यान पिउ सों अनुरागी । बातें करै विरह बैरागी ॥
 प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छांड़ि भई हों तोरी ॥
 अब लगि विरह वान में सहे । रोमहि रोम पैठि तन रहे ॥
 अब लागे सो घाव पै लागे । जिउ अकुलाइ चहै तन त्यागे ॥

जदपि जीउ तन त्यागि कै, वेग मिनै तोहि जाइ ॥

पै मन चाव कि तो अछत, जीउ तो मांहि समाइ ॥१५५॥

पिउ जिउ तू तो बिन कल नाहीं । सोहि जिउ को संसा कछु नाहीं ॥

यह जब तव तो सों मिल रहा । अबहूँ अनमिल जाइ न कहा ॥

निज जिय घाम अतन तन तोरा । यह मन भूल कहै जिउ मोरा ॥

तिन कारन बिनती हौं करौं । हा हा खाइ सोस भुइं धरौं ॥

तन तोहि लागि बहुत दुखपावा । रूप रंग रस सर्वाहि गवांवा ॥

×

×

×

विरह रोग सिर बहुत चढ़ावा । ताहूँ पै नित करै सवावा ॥

प्रीतम जिउ तू तन अलग, सदा रहै तुव पास ।

विरह त्रास दुख तन सहै, सोई जाइ निरास ॥१५६॥

[परमात्मा की ओर संकेत]

पंच सत्रु हौं एकली, जूझत हौं इन मांह ।

गाढ़ परै पिउ तोहि भजूं, जो राखी रहि वांह ॥१६१॥

हौं अनाथ कछु होय न मोसों । जो कछु होइ नाथ सब तोसों ॥

मोसों यहै पेम दुख भरना । नाञ् तिहारो सुमिरन करना ॥

यह बल नाहि कि तुम पहं आऊं । मिलि कै तन की तपत बुझाऊं ॥

तुमहौं प्रघट होहु जो आई । आपा आन देहु दिखराई ॥

तवही पिउ दरसन हौं पाऊं । इन सत्रुन सों आप छुड़ाऊं ॥

महाराज तुमसों सब होई । तुम कहं वरजनहार न कोई ॥

तुम अपने सत्रुन कै वरता । सब करि सके आप जो करता ॥

जो तुम आइ करहु वट फेरा । कहो तुम्हें कौने धौं घेरा ॥

दोहा—१६२

×

×

×

औ इहि सँ कछु दोस न मोरा । जो कछु करै सो वह चित चोरा ॥

छिन छिन घाव घाव पर लावै । दिस्टि अगोचर वान चलावै ॥

धानक वहै धनुक पुनि सोई । आपाहि वान और नाहि कोई ॥

आपाहि बेभि घाव उर करै । आपाहि तहां लोन होइ परै ॥

दोहा—१६६

[संसार और लोक लज्जा का त्याग]

प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छांड़ि भई हौं तोरी ॥

दोहा—१५५

×

×

×

प्रीतम काज लाज सँ खोई । रोइ रोइ अंसुवन सब घोई ॥

×

×

×

×

जौ पिउ लागि लाज पै जाई । जाहु निलज मोरे प्रभुताई ॥

[दोहा—१५६

नल दमयंती का यह साधनात्मक प्रेम पत्नीव्रत और पातिव्रत्य धर्म के रूप में सामने आता है। वास्तव में ऐसे ही स्त्री पुरुषों का प्रेम लोक रंजक के साथ साथ लोक कल्याणकारक होता है। ये एक दूसरे को परमात्मास्य ही देखते हैं। इनकी रहनी गहनी शुद्ध सात्विकता लिये हुए होती है। इनमें सद्बृत्तियों का पूर्ण विकास पाया जाता है जिनसे इन्हें अमृतत्व प्राप्त होता है। अपने अकृत्रिम मधुर व्यवहार से ये सब को मोह लेते हैं। जीव जंतुओं के प्रति सदय रहते हैं। संसार का सारा वैभव प्राप्त होने पर भी ये विकार ग्रसित नहीं होते। ये लोक मर्यादा के संस्थापक और पालक होते हैं। समाज इनको अनुकरण करता है। नरनारी इनसे अनुप्राणित होकर अपने-अपने चरित्र का निर्माण करते हैं। इस प्रकार संसार इनसे कृत्य कृत्य होता है। ऐसे स्त्री पुरुष बड़े भाग्यशाली और उच्च संस्कार युक्त होते हैं। ये सर्वत्र और सुलभ नहीं होते। कभी कभी ही संसार में जन्म लेते हैं। परंतु जब जन्म लेते हैं तो संसार इनकी ख्याति सुन इन्हें देखने के लिये लालायित हो उठता है :—

आगे जगत थका सुनि सोभा । कौतुक कहं सब कर चित लोभा ॥

× × × ×
कोऊ धरै मिलन मन आसा । कोऊ देखा चहै तमासा ॥

[दोहा—१७?]

सब अपनी अपनी भावनाओं के अनुरूप इनके रूप 'पानिप' के प्यासे हो जाते हैं। इस दृष्टि से इनके रूप की व्याप्ति में अलौकिकता आ जाती है। इनके रूप के सामने संसार के रूप का मान नहीं होता। सूरज और चाँद लज्जित हो जाते हैं। ब्रह्म की तरह इनका रूप घट घट में व्याप्त हो जाता है। नारद ने दमयंती के रूप के संबंध में इंद्र से ऐसा ही कहा :—

चाँद सुरज तिहि देखि लजाहीं । रहा न रूप मान जग माहीं ॥

ब्रह्मरूप तिहि रूप जनु, घट घट रहा समाइ ।

जिन हेरा तिहि हेरि छवि, आपा दीन्ह हिराइ ॥१८४॥

× × × ×
बहुत देव कुंडनपुर गए । तिहि 'पानिप' के प्यासे भए ॥

नारद जैसे ब्रह्मज्ञानी इस रूप से ब्रह्म रूप का ही दर्शन करते हैं। भले लोग पहले तो काम से मोहित होते हैं, पर जब 'वर्ण से वर्ण' (स्त्री पुरुष का उत्तम जोड़ा) मिल जाता है तो प्रसन्न होते हैं। इंद्रादिक देवता और राजा ऋतुपर्ण के विषय में ऐसी ही बात है। इंद्रादिक देवता दमयंती की बुद्धि के आगे थक गए :—

औ पुनि इन्द्रादिक जे देऊ । इहि चरित्र थकित भए तेऊ ॥

इन अवला कैसे नल जाना । कौने चित्त पुरख पहिचाना ॥

पुनि प्रसन्न मन ह्वै सब बोले । अंत होय जो जिन्ह कै सोलै ॥

भली भई नारी नल पावा । विधना 'वरनिहि वरन' मिलावा ॥

[दोहा—२०६]

राजा ऋतुपर्ण नल से क्षमा माँगते हुए कहते हैं :—

पुनि ऋतुपरन मरम इह पावा । तिनिहि काल नल पहं उठि श्रावा ॥
 दोला बहुत चूक भइ सोसों । ओछी दहल गही मैं तोसों ॥
 मैं तेरा तव भेद न जाना । अब लखि मरम बहुत पछिताना ॥
 तू राजा मोरे घर साहीं । मैं अजान तोहि जाना नाहीं ॥
 [दोहा—३६०

दुर्जन लोग अंत में निराग होते हैं :—

वाला दइ नल कहं जैमाला । चली और लोगन उर साला ॥
 अपने उर सों साल उतारा । सोई दुर्जन जन हिय डारा ॥
 दामिनि कौंध दमंती गई । लोगन घटा रंश्र हिय भई ॥
 सगरी सभा झुरे जनु लागी । विरुध भये विरही वैरागी ॥
 चातक ज्यों जिय हुती जो ग्रासा । मिटी सो पिक लौ भई निरासा ॥
 [दोहा—२०६

‘राम चरित मानस’ में इस जगद्भावना का बहुत ही उत्तम वर्णन किया गया है। विदुषों ने पुरुषोत्तम राम को विराट्मय देखा, योगियों ने परम तत्त्वमय, पुरवासियों ने लोचनसुखदायक और दुर्जनों ने भयानक :—

जिन्ह कौ रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

× × × ×

विदुषन्ह प्रभु विराट मय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

× × × ×

जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
 हरि भगतन्ह देखे दोउ आता । इष्ट देव इव सब सुख दाता ॥

× × × ×

पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूपन लोचन सुखदाई ॥

× × × ×

उरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥

× × × ×

सीता जी को तो कुटिल राजा राम से बल पूर्वक छीन लेना चाहते थे —
 तव सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ॥

× × × ×

लेहु छुड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि वाँधहु नृप बालक दोऊ ॥

तात्पर्य यह है कि प्रेम साधना में तपकर ऐसे स्त्री पुरुषों में अलौकिकता आजाती है और वे जीवन की सर्वोच्च भूमिका पर स्थित हो जाते हैं। वहाँ उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सकता। यदि परालब्ध वश उन पर विपत्ति भी आती है तो अंत में फिर जय प्राप्त करते

है। इस प्रकार उनका प्रेम अमर हो जाता है। प्रेम का तत्व यही है। इसी से 'प्रीति-रस' होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने हनुमान को जानकी के लिये जो संदेश दिया था उसमें इसी 'प्रेमतत्त्व' का दर्शन होता है:—

कहेउ राम वियोग तव सीता । मो कहं सकल भए विपरीता ॥
नवतरु किसलय मनहु कृसानू । काल निसा सम निसि ससि भानू ॥
कुवलय विपिन कुंत वन सरिसा । वारिद तपत तेल जनु वरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई । काहि कहौ यह जान न कोई ॥
'तत्व प्रेम' कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मन सदा रहत तो पाहीं । जानु 'प्रीति रसु' एतनेहि माहीं ॥

इस प्रेम संदेश ने अपना प्रभाव इस प्रकार प्रकट किया कि जहाँ जानकी पावक में जलने की तैयारी कर रही थीं वहाँ इसने उनकी सारी सुधबुध खो उन्हें प्रेम में मग्न कर दिया:—

प्रभु संदेशु सुनत वंदेही । मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ॥

फलतः वे मृत्यु से बच गईं और मिलन होने तक रावण के अगणित अत्याचारों को सहन करती हुई भी निडर और अडिग बनी रहीं। रावण उन्हें मारना चाहता था, पर मार नहीं सका।

अस्तु, यही कारण है कि लोक ने शिव-पार्वती, राम-सीता, सावित्री सत्यवान और नलदमयंती के प्रेम को आदर्श रूप में अपनाया। ये महान् विभूतियाँ लोक मर्यादा की रक्षक और लोक जीवन को विकसित करने वाली हुईं। गृहस्थ धर्म (प्रवृत्ति मार्ग) इन्हीं के मार्ग पर चलने से 'प्रीति रस' युक्त होता है।

गुप्तार्थ के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि यह जितना पूर्वाद्ध (कथारंभ से लेकर दमयंती के स्वयंवर की चर्चा चलने तक) में पाया जाता है उतना उत्तराद्ध में नहीं उत्तराद्ध में कहानी अधिकतर प्रकृत रूप में चलती है। इसका कारण यह है कि कवि पूर्वाद्ध में प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन करना चाहता है और उत्तराद्ध में लोकव्यवहार का। इसका संकेत राजा भीमसेन के प्रति दमन ऋषि के उपदेश में मिलता है जिसमें ऋषि राजा को पहले परमात्मा और आत्मा के ज्ञान का उपदेश करते हैं और तदनंतर व्यवहार धर्म का:—

परमात्मोपदेश

सिद्ध कहा राजा सुन सोसों । निज यह मरम कहौं हों तोसों ॥
जो सुनि समुक्ति बात उर धारेसि । अगम वस्तु कहं सुगम निहारेसि ॥
साईं एक वहै सब ठाऊ । सुन ताके तोहि चिन्ह सुनाऊँ ॥
स्थिर निर्गुण अतन अभेषा । चरम दिस्टि सों जाइ न देखा ॥
मुक्त न बद्ध सहज परकासा । ज्यों देखसि सब ठावं अकासा ॥
घट औघट अंतर कछु नाहीं । सिमट समाइ रहा सब माहीं ॥

सोई सब खलन कर खेला । और न सगी आप अकेला ॥
 ये बहु खेल जो देहि दिखाई । चेतन सब महँ रहा समाई ॥
 ता बिन करनी कछु न होई । गुन औगुन तिन्ह लगै न कोई ॥

ऐसे सब रंगन चुना, पै वह अपने रंग ।

जो निज वाको निरँग रंग, तासों भयो न भंग ॥६६॥

आत्मोपदेश

अब तोहि तोरो गति समझाऊँ । समुझ देखि निज कहै चुनाऊँ ॥
 जो वह एकै सिमट समाना । घट औघट ता बिन नहि आना ॥
 त्यों तोरे घट तू पुनि सोई । निरख देखि निज और न कोई ॥
 जो वह सो तू सिमट समाया । मुआ न उपजा गया न आया ॥
 जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन उपाधि न मानहु कोई ॥
 जो वह सो तू सिमट समाया । मुआ न उपजा गया न आया ॥
 जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन उपाधि न मानहु कोई ॥
 यहै उपाधि आप जो विसारसि । भूल और को और विचारसि ॥
 छाँड़ि अमर पद मिरतक होई । तोरै कुमत काल भै तोही ॥
 तोहि यह मिथ्या भरम जो भयऊ । औरहि ते औरहि ह्वै गयऊ ॥
 ज्यों धनाढ्य माया अधिकारी । सपने महँ होइ जाड भिखारी ॥

साया निसि सपना जगत, नौद भरम अज्ञान ।

सोड सांच समझा सवन, जागे कछु न निदान ॥६७॥

पै यह ज्ञान आज तोहि नाही । तू उरझा गाढ़े तिन माहीं ॥
 तोरे जिय परतीत न आवै । मन मलीन संका उपजावै ॥
 मारग कै जल ज्यों गदराना । मारग जल ज्यों होइ ठहिराना ॥
 रतन दुरा गदरे जल माहीं । विना थिराने सुभल नाही ॥
 ताते जो तोरे यह इच्छया । सुन उरधार देउ तोहि सिच्छया ॥
 प्रथम मांज मन दरपन काई । तव निरमल छवि देइ दिखाई ॥
 सोहं स्वांस सबद मसकला । सहजहि जाय रैन दिन चला ॥
 तासों लग सोई मन मांज । मांज ग्यान अंजन द्विग मांज ॥
 उधरै नैन ग्यान हिय होई । रहै न द्वैत रहस होइ सोई ॥
 मुक्त होइ अलख जब सुभै । सहजै सकल भरम तव दूभै ॥

दुविधा पवन मथान मन, तन मटकी दधि जीव ।

मर्ये मही साया निकसि, दह्यो रह्यो होइ जीव ॥६८॥

व्यवहारधर्मोपदेश

अरु व्योहार करम सुन मोसों । जानि सुपात्र कहीं हों तो सों ॥
 तोहि दयाल दीन्ह वड़ राजू । तोहि अस का बहुतन कर राजू ॥

चीन्हक चलेसि धरम पग धारै । राज करेसि सत धर्म विचारै ॥
 होइ न दुखी राज महं कोई । राव रंक सुख मानहि दोई ॥
 राजा जब नियाव पर आवै । सील छांडि कै सत दिवावै ॥
 राव रंक सरवर कै जानै । समुझि दूध पानी निज छानै ॥
 राजहि यह बूझहि तिहि वारा । कस नियाव कीन्हैसि ससारा ॥
 जो रंकहि वरियार सतावै । तिहँ पलटै राजा दुख पावै ॥
 राव रंक जिन्ह कर उपराजा । तिन्ह कर तैस रंक तस राजा ॥

राव रंक परजा सबै, राजा सब कर सोइ ।

यह सपने कै राज पै, गरब करो जिन कोइ ॥६६॥

ज्ञान के इन दो पक्षों को प्रस्तुत आख्यानक के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में कलात्मक ढंग से क्रमबद्ध किया गया है। प्रथम ज्ञान का विषय निर्गुण ब्रह्म है और दूसरे ज्ञान का विषय व्यवहारधर्म। लोक व्यवहार का उपदेश पात्र (राजा) के अनुसार राजधर्म के रूप में हुआ है। परंतु राजा भीमसेन को किया गया यह उपदेश प्रस्तावना रूप में कोरा उपदेश समझना चाहिए। अन्यत्र यह 'कांता संमित उपदेश' के रूप में कहानी के साथ गुंथा हुआ है। कवि ने एक बात और की है। दमयंती के वर्णन में उसने परमात्मा को प्रेम (प्रेमामृत) के रूप में चित्रित किया है और नल के वर्णन में ज्ञान रूप में। यह उनके लिंग भेद के कारण है जो स्वाभाविक है। परमात्मतत्त्व दोनों में एक ही है। दोनों शुद्ध सात्विक वृत्ति के होने के कारण वह तत्त्व उनमें पूर्ण प्रकाश रूप में भासने लगता है। रंगहीन शुद्ध काँच की बोतल में जैसे गंगाजल दिखाई देता है ऐसे ही उनके त्रिगुण मल रहित शुद्ध अंतःकरण में परमात्म रूपी आत्म तेज चमकने लगता है। इस प्रकार उनमें जिस रूप सौंदर्य का निर्माण होता है वह अनुपम, दुर्लभ और अलौकिक है। उसके आगे स्वयं रूप (जगद् रूप) का मुख फीका पड़ जाना उचित ही है। इस दृष्टि से इस रूप की उपमा के लिये ब्रह्म ही रह जाता है और ऐसा ही कवि ने किया है। यह भी बात है कि कहानी ब्रह्म की ओर इंगित करती हुई चलती है। नल के सौंदर्य का वर्णन केवल कहानी के आरम्भ में है और वह कवि द्वारा हुआ है। दमयंती के सौंदर्य का वर्णन भाटिन द्वारा तीन बार और कवि द्वारा उत्तरार्द्ध में दो बार किया गया है। यहाँ विषय स्पष्ट करने के लिये उनके आरंभिक रूप सौंदर्य का एक एक उदाहरण दिया जाता है। इन्हीं में समस्त भेद खुल जाता है—

नल का सौंदर्य

वह (ज्ञान रूपी नल) उज्ज्वल वर्ण वाला है मानो काम ने (परमात्मा का नाम 'काम' भी है इसलिये परमात्मा रूपी काम ने) अवतार लिया हो। जिसके मुख से सुना गया, वही उस रूप को सुंदर (वास्तविक, ब्रह्मरूपस्य) कहता था। नल के मुख के आगे रूप (जगद् रूप) का मुख फीका था। उसके रूप की बरावरी कोई नहीं कर सकता था। मानो विधाता ने सब के घट-घट में उसी रूप को लिखा (मानो वही रूप सबके घट-घट में ब्रह्मरूप के समान व्याप्त हुआ)। उसके मुख की ज्योति सूर्य क्रांति (ब्रह्मज्योति) के समान थी। संसार में दिन करने वाले सूर्य की ज्योति उस ज्योति को

नहीं पाती थी। सूर्य को देखने से आँखों की ज्योति जगने लगती है और वे तब शीतल होती हैं जब हिम देखने को मिलता है। परंतु नल को देख लेने पर सूर्य को देखने के लिये कोई लालायित नहीं रहता था। जो नल को देख लेता था, वह उसमें सूर्य का (दूसरा अर्थ, ब्रह्मरूप का) दर्शन करता था। सूर्य को देखने से आँखों की जो गति (जलने की गति) होती है वही गति नल रूपी सूर्य को क्षण भर देखने से होती थी (अर्थात्, नलरूपी ज्ञान सूर्य अज्ञानांधकार युक्त आँखों को क्षण भर में जला देता था)। पुत्र अथवा स्त्री, जिसके भी चित्त में वह रूप (ब्रह्मरूप) झलक पड़ा, फिर वह जन्म भर उसके चित्त से नहीं टला। वह रूप संसार के हृदय में समाया हुआ जैसा था। जिसने उस रूप को देखा उसने अपने को उसी में हिरा दिया (दूसरा अर्थ, जिसने उस ब्रह्म रूप का दर्शन किया वह भी ब्रह्मभय ही गया)।

जितने राजा अविवाहित थे उन्होंने जैसे ही नल के रूप के विषय में सुना वैसे ही उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया (वैराग्य इसलिये कि संसार की सुंदरी नल को छोड़ उन्हें नहीं बरेगी)। वे अग्नि वर्णयुक्त नल के वर्ण के कारण द्वेषाग्नि में जलने लगे।

दूसरा अर्थ

जो रजोगुणी (शुद्ध सात्विक गुण से अयुक्त) थे वे उस ज्ञानरूप के विषय में सुनते ही विरक्त (सांसारिक भोगों से अलग) हो गए। और ज्ञानाग्नि में तपे (नल के सदृश्य) शुद्ध सात्विक उज्ज्वल वर्ण प्राप्ति के निमित्त वे भी अपने रजोगुण को ज्ञानाग्नि में जलाने लगे।

ज्ञानोपदेश

यह लिखा जा चुका है कि कवि कहानी के साथ-साथ ज्ञानोपदेश भी करना चाहता है। नल के इस रूप वर्णन में ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश है—

ब्रह्म ही वास्तविक वस्तु है। वही काम है। उसका रूप अनुपम है। सब जगह और सब के हृदय में वही रूप व्याप्त है। उसके रूप की झलक मात्र मिलने से ज्ञान चक्षु प्राप्त होते हैं और ज्ञान प्राप्त होते ही ब्रह्म प्राप्त हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति के लिये त्रिगुणों (सत, रज, तम) को समूल नष्ट करके शुद्ध सात्विक वृत्ति प्राप्त करनी पड़ती है, आदि। कहानी के रूप में यह ज्ञान रसात्मक शैली में वर्णन किया गया है—

श्री अति रूपवंत उजियारा । मानो काम लोन्ह अवतारा ॥
जिन्ह मुख रूप कहै तिहि नीधः । नल मुख रूप रूप मुख फोका ॥
करै न कोउ रूप सरि तारै । घट जनु घट लिखि दीन्ह विधातै ॥
सूर क्रांति बरनी मुख जोती । पै सूरह मुख जोति न श्रोती ॥
नैनहि जोति जरै रवि देव । सीतल हीहि हेम तब पेखं ॥
सूरह देखि लोभाइ न कोई । इन्ह देव सो दरसन होई ॥
जो गति नैनन की रवि तारै । सो गति छिन तारै मुख यारै ॥

पुरुष नारि जाके चित परा । फिरि भरि जनम न चित सों टरा ॥
 ब्रह्म रूप जग हीय ससाना । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ॥
 जे रजवारै अन वरै, सुनि सो भा वैराग ।
 अनल वरन नल वरन लग, वरन लग होइ आग ॥२६॥

दमयंती का सौंदर्य

वह (प्रेमामृत स्वरूपा दमयंती) जगत की सर्वश्रेष्ठ स्त्री पद्मिनी की अपेक्षा एक कला बढ़ कर है। उसकी हाथ की उँगलियों में अमृत भरा है जिनका धोवन मृतक के मुख में देने से वह तत्काल जी उठता है (प्रेमामृत पान करने से जीव तत्काल मृत्यु के मुख से छूट कर अमर हो जाता है)। सानो दिधाता ने उसी को अमृत से छापकर बनाया हो और फिर उसके समान दूसरी स्त्री न बना सका हो। वह एक ही पद्मिनी ऐसी है जो अमृत से भरी है (परमात्मा एक ही है और वही अमृत है)। न जाने वह किसके लिये अवतरित हुई है। हे महाराज ! उसके मुख की ज्योति का सौंदर्य देखते ही बनता है, कहते नहीं। वह आश्विन पूर्णिमा के चंद्र से भी कहीं उच्च ज्योति पुंज के समान है। निश्चय ही वह पद्मिनी आश्चर्य पूर्ण है। ऐसी अभी तक कहीं सुनने में नहीं आई। उस कमल की सुगंधि तीनों लोकों में पहुँच गई है। सारा संसार भीरा बनकर उस सुगंधि की आशा में भ्रमण कर रहा है। उसकी शोभा ने सबको लुभा लिया है; न जाने वह किसके हाथ लगती है।

संसार रत्न (अमृत रत्न) के खोज में है और वह पद्मिनी प्रेम समुद्र की मुक्ता रूपी अमृत रत्न है। न जाने कौन उसे पाकर समुद्र (संसार समुद्र) पार करता है और कौन उसी में (संसार समुद्र से ही) डूबा रह कर प्राण देता है।

उपदेश

दमयंती के इस सौंदर्य वर्णन के साथ साथ प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति का उपदेश मिलता है—

‘प्रेम ही से अमृत रूपी परमात्मा या आनंद दायिनी मुक्ति प्राप्त होती है। प्रेम ही अमृत है (परमात्मा का नाम अमृत भी है) परमात्मा रूपी प्रेमामृत पान करने से जीव जन्म मरण के बंधन से छूटकर अमराणंद प्राप्त करता है। प्रेम समुद्र में डुबकी लगान से वह प्रेमामृत रूपी सुक्ति रत्न मिलता है जिससे जीव संसार समुद्र से तर जाता है—

पदुमिनि चाहि बाढ़ एक करा । कर अंगुरिंहि अमृत रस भरा ॥
 जो परवार मिरतक मुख घालहि । जी उठि ठाढ़ होइ तत्कालहि ॥
 जनु बिधि अग्नी छाप कर डारी । कै न सकै सरि दूसर नारी ॥
 इक पद्मिनी ओ अमृत भरी । धौं किहि जोग दई अवतरी ॥
 महाराज मुख जोति निकाई । कहि न जाइ देखत बनि आई ॥
 जन असौज पून्यों सति ऊवा । तासों ऊँच काँति कर दूवा ॥

यह अचरज कि वह पटुमिनी । महाराज अचलों नहि सुनी ॥
पहुँचै कँवल तिहूँ पुर वासा । जग भा और भव तिहि आसा ॥
सुनि सोभा सब जगत लोभाना । धौं काके कर चढै निदाना ॥

जगत मरजिया पैम दधि, मुक्ताहल सो तीय ।
धौं को पात्रे लं तिरै, को बूडै दे जीय ॥३४॥

(यहाँ दमयंती की उँगलियों में अमृत का होना युक्तार्थ में तो दमत्कार पैदा करता है; परंतु प्रकृतार्थ में, जैसा पहले लिखा जा चुका है, ठीक क्षामंजस्य नहीं बैठता ।)

दमयंती के अन्यत्र वर्णित रूप का भी छोटा सा उद्धरण दिया जाता है जिसमें उसके रूप को देखकर सूर्य और चंद्र लज्जित होकर चिंता में पड़ जाते हैं तथा जिसका रूप संसार के रूपों को प्राप्त होता है एवं जो सब रूपों की उपमा है—

भुइँ पर चाँद उवा जनु आई । जोत अकास दीन्ह दिखराई ॥
देख जोत पून्यौं ससि घटा । कत वह और चंद परगटा ॥
वहै सोत्र सोचत भकत, परा स्याम उर अंग ।
अजहूँ प्रगट सो दाग हिय, जग जो कहै कलंक ॥७५॥

बोती रैन सूर परभातें । निकसा तवहि हुता रंगरातें ॥
निरखत खिन वारी उजियारी । पीर भयो तन पारत पारी ॥

× × ×

रूप देह वर जनु आंतरा । रहै न अंत रूप कै करा ॥
ताकी छवि कहूँ कौन बखानै । ओहि कहै जो दरसै सो जानै ॥
इहि सरूप वारी भई, रूप रूप तिहि रूप ।
रूप रूप कहै उपम वह, वा मुल रूप अनूप ॥७६॥

और भी—

मेरे जान तिहूँ पुर माहीं । ताके रूप और धनि नाहीं ॥
दुतिय नास्ति एकी जग प्रानू । कहि न जाय तिहि रूप बखानू ॥

× × ×

जो पुनि कबहु अकास तै हेरे नैन फिराइ ।
सब देव होइ किलकिला, गिरा चहै तहँ राइ ॥७६॥

कहानी के अध्यात्म पक्ष को लेकर द्विचार करें तो भाटिन पता बताने वाली कोई गुपीजन या गुणवती दूती अथवा लुफी मान्यता के अनुसार गुरु ठहरती है । नल जान है और दमयंती अमृत । जान के प्रतीक अग्नि और सूर्य हैं और अमृत के प्रतीक प्रेन और चंद्र । काम और पद्मिनी (कमल) भी प्रतीक के रूप में क्रमशः प्रयुक्त हुए हैं जिन्हें मोदर्य के अर्थ में समझना चाहिए ।

ज्ञान और अमृत दोनों ही ब्रह्म स्वरूप हैं—

ज्ञानं स्वप्रकाश चिदात्मा परं ज्योतिः

—वसिष्ठ

रसो वैतः रसं ह्ये वायं लब्धवानंदो भवति

शुद्ध सात्त्विक ज्ञान से अमृत अलग नहीं है। जो ज्ञान है वही अमृत है। ज्ञान के साथ साथ अमृत की सिद्धि भी स्वतः हो जाती है। जीव बिना दाम्पत्य प्रेम किए भी जानामृत पाल कर आत्मानंदी होता है। ऐसे ही शुद्ध सात्त्विक दाम्पत्य प्रेम से प्रेमानंदी होता है। इन्हों को भ्रमज्ञः निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं। पहली स्थिति में विषय वासनाओं से ऊपर उठने के लिये संसार का सर्वथा त्याग करना पड़ता है और दूसरी स्थिति में समस्त चराचर सृष्टि को परमात्मामय (तुलसी के शब्दों में—'मिया राम नय') समझते हुए उसके साथ संबंध स्थापित करने की आवश्यकता रहती है। यही दूसरी स्थिति गृहस्थ धर्म का मर्म है। गृहस्थाश्रम में ही कविता कामिनी ने प्रथम प्रथम नव शृंगार रचा और उस प्रथम महाकाव्य को जन्म दिया जिससे समस्त संसार अलौकिक प्रीति रस से सिक्त हुआ। इस आश्रम का मूल मंत्र निश्छल प्रेम है। निश्छलता (शुद्ध सात्त्विकता) में ज्ञान है और प्रेम में अमृत। ज्ञान का प्रतीक, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सूर्य है और अमृत का चंद्र। सूर्य की उत्पत्ति महत्पुरुष की आँख से हुई है और चंद्रमा की उत्पत्ति उसके मन से—

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽञ्जयात

इससे यह सिद्ध हुआ कि निश्छल (शुद्ध सात्त्विक) प्रेम परमात्ममय है, और वह आँख और मन से होता है। आँखों में प्रियतम को बसाना पड़ता है, और मन उसको देना पड़ता है। विरहाकुला दमयंती कहती हैः—

विरह अग्नि उर कीन्ह प्रकासा । आँखिन निकट कंत कर वासा ॥

× × ×

वहै बधिक नल काँपा लावा । मन पंछी अचेत उरभावा ॥

हौं अपने मन कौं भुरौं, जो नल लंगा उरभाइ ।

राज करहु नल जो कोऊ, मन मोहिं देहु मंगाइ ॥१६६॥

कविवर 'प्रसाद' भी इसी स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि प्रेम के विरह-मिलन में सुख-दुःख आँख और मन का खेल खेलते हुए नाचेंगे—

मानव जीवन वेदी पर, परिणय है विरह मिलन का ।

सुख दुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख औ मन का ॥

अस्तु, कवि ने नल को 'ज्ञान' रूप में और दमयंती को 'अमृत' रूप में चित्रित कर स्त्री-पुरुष की समानता के सिद्धान्त की भी पुष्टि की है। यह भारतीय विचार सरणी का अनुगमन करना है। आर्य धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्री अर्द्धाग्निनी है। स्त्री-पुरुष दोनों

ही बराबर के जीवन साथी हैं। एक ही ब्रह्म सृष्टि रचने के निमित्त स्त्री-पुरुष रूपों में विभक्त हुआ। स्त्री शक्ति रूपा है, और पुरुष शिव रूप—

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया पितः ।
कृतं द्विधा नगश्रेष्ठ स्त्री पुमानिति भेदतः ॥१३॥
शिवः प्रधान पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा ।
शिव शक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्व दर्शिनः
वदन्ति सा महाराज तत एव परात्परम् ॥१४॥

—महा भागवत, भगवती गीता, चतुर्थ अध्याय

अस्तु, सूफी प्रेम कथानक काव्यों में श्रेष्ठ काव्य, पद्मावत की शैली पर नायिका के देश की श्री संपन्नता का वर्णन भी विशेष रुचि के साथ किया गया है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु जैसे, पेड़ पौधे, वन उपवन, ताल तलैया, फल फूल, पशु पक्षी, कुआँ, वावड़ी नगर, देश, नगर निवासी, पनिहारिन, हाट, बाजार, कृषि व्यवसाय, दुर्ग पर्वत, और हाथी घोड़े आदि का वर्णन करत हुए उनसे प्रेमपूर्वक उपदेश कराया गया है। कवि कुंडनपुर की उपमा वैकुण्ठ से देता है और कहता है कि वह धार्मिक देश है जहाँ प्रत्येक जाति के लोग हर के ध्यान में लीन रहते हैं। वहाँ चारों ओर लगे वृक्ष प्रेमी जनों की तरह जगत से उदासीन होकर प्रियतम के गाढ़े प्रेम में गड़े हैं; उसी के प्रेम ध्यान में एक पग से खड़े हैं। उनकी प्रेमाग्नि मानो वृक्ष को ठूँठ बना देने वाली पतझड़ है और उनकी प्रेमोन्मत्तता सरस वसंत है जो उन्हें प्रेमाग्नि से अनुरंजित नवीन कोंपलें प्रदान करता है। जैसे जैसे वे प्रेमाग्नि में जलते हैं वैसे वैसे उनका सारा तन श्री संपन्न हो जाता है। उनकी शाखा के अग्रभाग फूलों से सुशोभित होने लगते हैं। पक जाने पर वे गिर जाते हैं, पर उनका प्रेम छोटा नहीं पड़ता। वे सदा एक ही पानिप (प्रेमामृत रूपी परमात्मा दर्शन) के प्यासे रहते हैं, परहित के लिये सदा भुके रहते हैं।

वे (तरुवर) मानों कह रहे हों कि संसार में वे विरले ही हैं जो स्वयं शीत और धूप सहकर दूसरे को छाया प्रदान करते हैं—

जो वह नगर नियर कै आई । पुहुमि पेम मय देइ दिखाई ॥
अस कुछ धरमवंत अस्थानू । सर्वाहि जाति उपजै हर ध्यानु ॥
जहाँ जु सिस्टि दिस्टि मैं आवै । सोई जनु उपदेश बतावै ॥
लागे विरिछ नगर चहुँ पासा । जनु पेमी जन जगत उदासा ॥
पिय कै पेम गढ़े होइ गाढ़े । तिन्ह ही ध्यान एक पग ठाढ़े ॥
ज्यों ज्यों पेम अग्नि तन जारै । कै पतझार ठूँठ कर डारै ॥
त्यों त्यों होहि पेम मदमाते । काढ़े पात अग्नि रंगराते ॥
जो पुनि जरै बहुरि तन भरै । डार डार फुनगा फुल परै ॥
पाकै पाकि पाकि सब गिरै । तउ न पेम लहुरा सों टरै ॥
सकल एक पानिप को चहै । पर काजै नित ऊने रहै ॥

ते तरुवर मनु डमि कहै, ते विरले जग भांहि ।

सीउ धूप आपुन सहै, करै और पर छांहि ॥३६॥

पनघट का दृश्य तो बड़ा ही सरस और चमत्कार पूर्ण है। पतिहारिनों की पंक्ति मुनियों की पंक्ति की तरह है। जैसे बड़े मुनि छोटे मुनियों को उपदेश देते हैं वैसे ही पतिहारिनों का भी उपदेश चलता है। वे एक दूसरी को पैरों की ओर दृष्टि रख घट की ओर ध्यान देने का उपदेश देती हैं। बाँकी दृष्टि सीधी कर लेने, सिर में बोझ और बाट रपटीली होने की चेतावनी दी जाती है, आदि। यह सारा उपदेश ज्ञान साधना की ओर भी संकेत करता है, जैसे—मन को एकाग्र करना चाहिए। घट रपी शरीर में ही परमात्मा रूपी आत्मा है, उसमें ध्यान लगाओ। घट रूपी शरीर दुःख रूपी बोझ है। ज्ञानमार्ग सूक्ष्म है मन के चंचल होने पर उस मार्ग से च्युत हो जाना पड़ता है। फिर तो कब नवीन शरीर मिलेगा और कब परमात्मा की कृपा होगी—

पतिहारी देखीं मृग नैनी । गज गामिनि श्री कोकिल बनी ॥
 पहिरै चीर सो भांतन भांती । राइमुनिहि की ज्यों अन्न पांती ॥
 लेजू पात गहै वा हाथै । नैनन्ह पानी कलसा मार्यै ॥
 निपट लाज सों आवाह जाहीं । पाइन दिस्टि सुरत घट नाहीं ॥
 जो कोई सखी नैक दृग फेरै । सूधी दिस्टि बाँक कैं हेरै ॥
 बिल सब सखी ताहि समुभावाहि । जनु परदेतिन पंथ बतारवाहि ॥
 बल चेतहु घट गहं मन देह । बाँकी दिस्टि सूत्र कर लेह ॥
 साथै बोझ बाट रपटीली । रपट परे दुख होइ छवीली ॥
 जो घट फोरि जाहि घर छूँछै । का पुनि कहै कंत कैं पूछै ॥

रपट फोरि घट खोइ जल, बिन पानी बिललाई ।

पुनि धौं कब आवा चढै, कब कुम्हार कहै जाहि ॥४२॥

दमयंती के प्रेम के संबंध में थोड़ा सा स्पष्टीकरण करना उचित होगा। मूल कथा में हंस नल-दमयंती के बीच प्रेम संदेसा ले जाने का काम करते हैं जिससे दोनों में गुण श्रवण द्वारा पूर्वानुराग उत्पन्न होता है। 'नल दमन' में कवि ने हंस के स्थान पर भाटिन की योजना की है। परंतु भाटिन केवल नल को ही दमयंती का पता देती है और तत्पश्चात् लुप्त हो जाती है। दमयंती को नल के विषय में पता देने वाला कोई नहीं। कवि ने यह काम 'प्रेम' से लिया है, और इस प्रकार वह प्रेम का साहाय्य दिखाना चाहता है। उसका कहना है कि प्रेमी और प्रेमिका के बीच दूत का काम प्रेम ही करता है:—

मिला जो चाहै पीउ सों, तो पेम करो गह नेम ।

प्रेमी प्रीतम मिलन कौं, बीच बसीठ सो पेम ॥१३७॥

प्रेम का आकर्षण ऐसा है कि जो जिसको रंग में रँगता है, वह भी उसके मद में मत्त हो जाता है। जो जिसको चाहता है वह भी उसको चाहने लगता है। दोनों एक ही प्रेमाग्नि ताप से तप्त होते हैं। दोनों और प्रेम ही दूत संबंध बनाता हुआ दोनों को सुरति डोरी से जोड़े रखता है। सच्ची प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। तन तो केवल देखने मात्र के लिये अलग है। वास्तव में वह एकमात्र प्रेम रूपी परमात्मा ही सब जगह व्याप्त है। जब प्रेम अचल हो जाता है तब दोनों में कोई भेद नहीं रहता। लैला ने रक्त

कढ़ाया ही था कि मज्जू की आँखों से वह निकल पड़ा। उसलिये अंतर तब तक ही दिखाई देता है जब तक 'म' और 'नू' की कच्चाई बनी हुई रहती है। प्रेम में तन्मय हो जाने पर तन और प्राण एक हो जाते हैं। तन उसी अतन रूपी परमात्मा में है और वह अतन भी समस्त तन में व्याप्त है। इस प्रकार ज्ञान होने पर दोनों प्रेमी अतनमय होकर 'म' रूप—एकही द्वितीयोनाम्ति हो जाते हैं। यही प्रेमाख्यानक काव्यों का अद्वैत सिद्धांत है जो कवि का वास्तविक अभिप्राय है :—

जो कोऊ जाके रंग रात । सोऊ पुनि ताके मद सार्त ॥
जो जिहि चहे चहे तिहि सोऊ । एकीहि ताप तपे मिलि दोऊ ॥
पेम बन्धीठ एक दुहुं ओरा । वहै मुरत डोरी कर जोरा ॥
साँची प्रीत न रहै दुरानी । जिन जासों लाई तिन जानी ॥
तन यह दिस्टि मात्र लौं ध्यारा । सो एकइ जो जाननहारा ॥
ओ पुनि अचल प्रीति जब होई । तब तिनहुं महं भेद न कोई ॥
लैलै इहां जो रकत कढ़ावा । वहां मज्जू के नैनहि आवा ॥
अंतर तीलीं वेड दिखाई । जौलीं में तू बीच कचाई ॥
तनम भए न अन्तर कोई । तन ओ प्राण सो एक होई ॥

तन सब ताहि अतन महं, अतन सब तन माहं ।

वहै अतन तब मैं भयां, अतन दुतिय पुनि नाहं ॥१३८॥

परंतु जिज्ञासा पूरी तरह शांत नहीं होती। परमात्मा के संबंध में भी पहले से ही सुनासुनाया या संस्कार के रूप में, कुछ न कुछ ज्ञान बना रहता है। जब तक वह ज्ञान नहीं है तब तक ज्ञान मार्ग का अनुसरण करना बेकार सा ही है। जब आधार ही नहीं तो आधेय कहाँ से होगा। इसमें विदित होता है कि दमयंती को नल के रूप सौंदर्य का पता पहले से अवश्य था। पुराने जमाने में राजकुमारों और राजकुमारियों के चित्रों का विक्रियार्थ आदान प्रदान एक राज्य से दूसरे राज्य में बराबर होता था। उन चित्रों का परिचय भी दिया जाता था। इसी आधार पर यह कह सकते हैं कि दमयंती को नल के विषय में पूरी जानकारी थी। यही नहीं, उसके हृदय में नल के प्रेम की चिनगारी पड़ चुकी थी। काव्य के निम्नलिखित दो उद्धरणों में इस बात के संकेत मिलते हैं :—

प्रथम पत्र नल चित्र बनावा । सहज कुमुम ताके रंग आवा ॥

देखि सो अनल वरन उजियारा । परा हुता हियरं चिनगारा ॥

अब लागि प्रेम पवन सो जागा । सुलगा हिया जरन तन लागा ॥

[दोहा—१४०

इसमें 'पराहुता हियरं चिनगारा' बतलाता है कि दमयंती के हृदय में नल का प्रेम चिनगारी के रूप में पहले से पड़ा हुआ था।

दूसरा उद्धरण—

नल उर्जन राजा जो कहावा । इन वारी तासों चित लावा ॥

सुनियत अनल वरन उजियारा । तिहि कर भरप लगी उरभारा ॥

वहै दाह हियरै सहं परा । सँका चहै आग कर जरा ॥
तिहि क रूप चित्र एक चीता । वहै राम कै जानै सीता ॥
निसि दिन रहै पेम अनुरागी । श्रोत होइ तवही वैरागी ॥

रोवै मन देइ मित्र महं, देखि देखि यह चित्र ।

जिहि को ऐसो चित्र यह, कैसो धौं सो मित्र ॥१६५॥

इसमे 'सुनियत' शब्द से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि सखियों ने नल के 'अनलवरण' होने के विषय में सुन रखा था । अतएव दमयंती के हृदय में नल के प्रति जो प्रेम उत्पन्न हुआ, वह गुण, श्रवण, चित्र और स्वप्न दर्शन से हुआ ।

कवि ने सूफियों की दो अन्य बातों की ओर भी ध्यान दिया है । उनमें से एक तो है 'मधुप्याला' और दूसरा है 'चित्र विधान ।' मधुप्याला के दो उद्धरण दिए जाते हैं ।

पहला—

औ उर भाठी मद पेम चुआऊं । नल कै कथा सु नलकै लाऊं ॥
ऐसो पेम मयी मधु ढारौ । जासौं दिया पेम मग वारौं ॥

×

×

×

पेमी पीउनहार जे, चाखत खिन छकि जाहिं ।

एक पियाला फिर पिबै, दूभर देहिं उंघाहिं ॥२६॥

दूसरा—

चित्र सुराही नैन पियाला । मद वह मीत पिबै यह वाला ॥
चित्र विधान का एक उद्धरण इस प्रकार है :—

जदपि तोर चित्र मोह पाहां । रात दिवस चितवों तिहि माहां ॥

अँखियाँ तो तासो विरमाऊं । मन चंचल आवै न उहाऊं ॥

सो तोरे निज मूरत चाहै । आप दहै औ तन कै दाहै ॥

जिय निज तत्त रूप कर भूखा । तिहिं कर चित्र दिखावत रूखा ॥

वह जानै यह चित्र न जीऊ । जिय को जीउ प्रान सो वीऊ ॥

दोहा—१५७

इसमे चित्र विधान के साथ साथ ज्ञान और प्रेम साधना का चित्र भी खींच दिया गया है ।

व्यवहार धर्म

जैसा पहले लिखा जा चुका है, कवि ज्ञान और प्रेम के साथ-साथ व्यवहार धर्म का भी प्रतिपादन करना चाहता है । इसीलिये काव्य के उत्तरार्द्ध में (दमयंती के स्वयंवर से लेकर अंत तक) कहानी अधिकतर लौकिक रूप में चलती है जिसमे धर्म का महत्त्व दर्साया गया है । लोक व्यवहार धर्म पर आधारित होना चाहिए और धर्म सत्य पर । सत्य पूर्वक धर्मावलंबन करने से मनुष्य को कोई नहीं सता सकता । धर्म उसका सहायक होता है और जिसका धर्म सहायक है उसको इहलोक एवं परलोक का कोई भय नहीं

रहता । यों तो नल पहले से ही सत्य और धर्म पर चलता था; परन्तु प्रेमसाधना में कसकर और दमयंती जैसी स्त्री रत्न मिल जाने पर उसके बल, पौरुष, उत्साह और उत्तरदायित्व में अधिक वृद्धि हो गई । उसके अंदर जो कुछ अपरिपूर्णता थी वह सब जाती रही और वह पूर्ण मानव में परिवर्तित हो गया । दिव्यमाधुरी संपन्न त्रिलोक सुंदरी को प्राप्त कर लेने पर भी वह केवल भोगों में लिप्त नहीं हुआ । वह धर्म और राजनीति के अनुसार राजकाज करने लगा जिससे प्रजा सुखी रहने लगी और चारों ओर धर्म का बोलवाला हो गया । हरिस्मरण के बिना कोई काम नहीं होता था । वह सदा पवित्र रहता था और नित्य अनुल दान देता था :—

नित नल धरम पंथ पग धरै । राजनीति बरनी तस करै ॥
परजा सुखी धरम कर राजू । हरि सुमिरन बिन और न काजू ॥
सदा पवित्र रैन दिन रहै । दान प्रवाह नदी नित बहै ॥
ऐसो धरमवंत जो होई । ताकै विघन न व्यापै कोई ॥
जहां तहां इहि धरम सहाई । जहां सत्य तहां पाप न जाई ॥
धरम सहाड कोटि दुख टारै । धरम सत्रु संताप निवारै ॥

सजग धरम मग पुरुख जो, को तिहि सकै सताइ ।

डुहुं लोक को भय हरै, जा कहं धरम सहाइ ॥२४३॥

ऐसे कर्तव्य परायण, सत्यवादी और धर्मप्राण राजा को संसार का ऐश्वर्य स्वतः ही प्राप्त हो जाता है । इसलिये कवि ने नलदमयंती के सुखभोग का भी पूरा वर्णन किया है :—

होइ लाग पुनि सदा बधावा । बिधिना सुख संजोग बनावा ॥
भोग विलास करै मिलि दोऊ । रातहि छौस न होइ विछोऊ ॥
दोऊ एक पेम मद साते । अन्तहकरन एक रंग राते ॥
दो मन मिलि जो होहि इक ठाऊं । तिहि सुख का उपमा जो बताऊं ॥
औ धर राज भोग कर साजू । खांग न कौनों सबै समाजू ॥
दोऊ रहै फूल से बने । फूलन कों सुवास रंग सने ॥
दिन दोइ फूल कंत औ गली । रैन होहि मिलि एक कली ॥
मिला कवैल मधुकर कर जोरा । मेज सरोवर लेहि हिलोरा ॥
भंवर समाड कवैल महं रहै । कवैल सो सिमिट भवै कहँ गहे ॥

दोऊ पागे पेम रस, हिर्य मिलाप हुलास ।

रात छौस संगहि रहै, षट रितु वारह नास ॥२३३॥

अन्यत्र कहा जा चुका है कि ऐसे सत्यवादी और धर्मात्मा पुरुषों के ऊपर जब विपत्ति आती है तो उसका कारण प्रारब्ध समझना चाहिए । कलियुग के कोप से नलदमयंती के विपत्ति में फंसने का कारण कवि ने प्रारब्ध ही बताया है—

परालवध पै अति बरियारा । सो न टरै काहू कर टारा ॥
दुख मुख होनहार जो होई । जिहि कहं जतन रहै होइ सोई ॥
मिटै न परालवध कर भोगू । ज्यों होना त्यों होइ संजोगू ॥

धरम पवित्र जिन भूठ न बोला । परालवध वस वन वन डोला ॥
 नल सरवंस धरम मग दीन्हा । परालवध कुसती तिन कीन्हा ॥
 करम अलग ग्यानी संजोगी । सोऊ परालवध कै भोगी ॥
 परालवध बाँधी यह काया । आतम जीव भयो मिलि माया ॥
 यह सद परालवध कर खेला । तेही कीन्ह तत्त गुन भेला ॥
 परालवध मिलि भए एक ठारे । परालवध होइ है पुनि न्यारे ॥

परालवध दुख सुख वंधे, खिन आवहिं खिन जाहिं ।

हरख सोक विसराइ मन, नित रह ताई माहिं ॥२४४॥

इसमें कवि ने आवागमन (खिन आवहिं खिन जाहिं) का कारण प्रारब्ध बताया है, जो भारतीय विचारधारा है। अस्तु, परंतु अंत में धर्म की विजय होती है। कलियुग परास्त हुआ और नल दस्यंती ने विजय प्राप्त करते हुए शेष जीवन धर्मानुसार सुखपूर्वक व्यतीत किया। इस प्रकार कवि ने धर्म, प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन किया है। धर्म से प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होता है और प्रेम (भक्ति) से ज्ञान। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। पार्वती हिमालय से कहती हैं—

ज्ञानात् सजायते मुक्तिर्भक्तिज्ञानिरय कारणम् ।

धम्मत् संजायते भक्तिर्धर्मो यज्ञादिको मतः ।

तस्मान्मुमुक्षुर्धम्मार्थं ममेदं रूपमाश्रयेत् ॥६०॥

महा भागवत, भगवती गीता, प्रथम अध्याय

धर्म (यज्ञादि कर्म) और प्रेम (भक्ति) का वास्तविक क्षेत्र गृहस्थाश्रम है। ज्ञान के लिये गृहस्थाश्रम (संसार) त्याग करना पड़ता है। प्रवृत्ति मार्गो वृद्धावस्था में इस मार्ग का अवलंबन करते हैं। कवि ने दस्यंती की मृत्यु हो जाने पर नल से भी गृहस्थाश्रम छड़ाया—

कह ये वचन, चल बैठि अगोसैं । ग्रह तजि मीत सवार सदोसैं ॥

लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मीत मन लागा ॥

सन तिहिं देइ तन सुरत गवाँई । प्राण तिनहिं में रहा समाई ॥

उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । चल वियोग संजोग समाना ॥

सुमिरन भजन विरर सब गयेऊ । जाको भजै सोऊ अब भयेऊ ॥

सुमिरन भजन देह मिल होई । सो तन जिय सों अछत विछोई ॥

संदिर ज्यों तन कहं जड़ जाना । चेतन पुरुख अलग पहिचाना ॥

जद्यपि तिहिं काया यह त्यागी । पै वह रहै अवधि लौं लागी ॥

आधि अवधि पूरन जब भई । देही बन्स बिचल तव गई ॥

जद्यपि जिउ तन कों तजत, तोऊ न तजै परीत ।

जब दरसै पिउ को दरस, तब पावै परतीत ॥७॥

पादटिप्पणी

१. देखिर 'स' प्रति के अंत में दोहा, ७ और उसकी चौपाइयाँ ।

व्यावहारिक धर्म की दृष्टि से राजा नल उदात्त नायक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें दया, क्षमा, नम्रता गांभीर्य और दृढ़ता आदि गुण विद्यमान हैं। आत्म सम्मान उनमें भरपूर है जिससे उनकी नम्रता आदि गुणों का कोई दुरुपयोग नहीं करने पाता। यहाँ उनके दो गुण—दया और क्षमा विशेष उल्लेखनीय हैं। दया का उदाहरण दावानल में पड़े सर्प के प्रसंग में मिलता है। सर्प यन्तुओं का सहज शत्रु है। विपत्ति ग्रस्त सर्प की कृष्ण पुकार पर राजा नल को दया उत्पन्न होती है और वे उसे आसन्न काल के मुख से बचाते हैं। आगे भले ही वह सर्प राजा नल के लिये परम उपकारी के रूप में प्रकट होता है, पर तात्कालिक स्वरूप उसका विपत्ति ग्रस्त शत्रु का ही मानना पड़ना है। ऐसे शत्रु पर दया करना उच्च संस्कार युक्त पुरुषों का कर्तव्य है। क्षमा के प्रधानतः दो प्रसंग हैं। एक कलियुग से संबंधित है और दूसरा पुष्कर से। कलियुग गहरी शत्रु है और पुष्कर घर का होने से अधिक भय कारक। अंत में दोनों परास्त होते हैं और राजा नल दोनों को क्षमा कर अपनी उदारता का परिचय देते हैं। दोनों को क्षमा करने में भेद है। कलियुग अपराध के लिये क्षमायाचना करता है, जिसके फलस्वरूप नल उसे क्षमा करते हैं। परन्तु पुष्कर के साथ सिर की बाजी लगती है। हार जाने पर वह जीवनदान के लिये प्रार्थना नहीं करता। यदि राजा नल चाहते तो उसका प्राण ले सकते थे, कोई कहने वाला नहीं था। परन्तु वह भाई है इसलिये उनके हृदय में द्रव्यत्व का जो भाव उसका वह महान् आदर्श को लिये हुए है। वह पुष्कर को क्षमा तो करते ही हैं साथ ही साथ उचित शिक्षा देकर उसके जीवन यापन की समुचित व्यवस्था भी बंध देते हैं। क्षमा के ये प्रसंग अपने-अपने स्थान पर अलग-अलग स्वरूप लिये हुए हैं। दोनों ही लोकरंजनकारी हैं। राजा नल को अपने आत्मवल पर पूरा भरोसा है और साथ ही साथ वे लोक मर्यादा पालन की ओर भी पूरी तरह सजग हैं। वे पुष्कर से कहते हैं, “यदि मैं भी तेरे ही तरह बुराई करता हूँ तो संसार से भले और बुरे का भेद ही जाता रहेगा”—

जो होंहूँ अब करों बुराई । भले बुरे अंतर उठि जाई ॥

भले बुरे अंतर यहै, भला भलाई रीति ।

तर्ज न जद्यपि बुरे सों, देखे कोटि अनीति ॥३६७॥

कलियुग को क्षमा करते समय भी यही दृष्टि है—

नल तामों तँसी पुनि करी । नँक न ता करनी अन बरी ॥

कहा कि हों जिय वैर न बरी । जो तँ करी सो सुरत न करी ॥

यह परकिति मोरं चलि आई । हँ सर्वेसों हँ देखे भुलाई ॥

गुन अगले का श्रीगुन अपना । निसि दिन करी दुहुन को जपना ॥

अपने गुन अगले कर दोखू । हिय सों करी दोउन को मोखू ॥

दे जव धौल बचन नल तोखा । कलियुग कियी मेट मन धोखा ॥

[दोहा ३३६]

तात्पर्य यह कि, “मैं अब तेरे प्रति अपने मन में कोई वैर नहीं रखूंगा और जो कुछ तैने किया है उसे स्मरण भी नहीं करूँगा। मेरी यह प्रकृति है कि दो बातों का नित्य प्रति स्मरण करता हूँ और दो बातों को सदैव के लिये विस्मृत कर देता हूँ। जिनका नित्य प्रति

स्मरण करता हूँ व ह — 'बड़ों के गुण और अपने अवगुण' तथा जिन दो को भूल जाता हूँ वे हैं — 'बड़ों के अवगुण और अपने गुण' ।

कहने का उद्देश्य यह है कि इन्हीं गुणों को पाकर लोक जीवन का विकास होता है ।

दमयंती से स्वकीया नायिका के शील, सारल्य और पवित्रता आदि गुण पूर्ण विकास को पहुँचे हुए हैं । वह पतिव्रता, चरित्रवती, लज्जावती और पतिसेवा परायणा है । उसमें स्त्रियोचित आत्मगौरव पूर्ण मात्रा में है । इनके अतिरिक्त भारतीय नारियों की वह तेजस्वी प्रत्युत्पन्नमति भी उसमें विद्यमान है जो पुरुष की बुद्धि कुंठित हो जाने पर आगे मार्ग निकालती है । दमयंती तीन अवसरों पर अपने इस गुण का परिचय देती है । इनमें से दो तो स्वयंवर से संबंधित हैं जिसमें पहले अवसर पर देवताओं के दूत बनने पर दमयंती के बारबार अनुरोध करने पर भी राजा नल के लिये उसे ग्रहण करना दूत धर्म के विरुद्ध जान पड़ता है, पर दमयंती उपाय बताकर उन्हें चिंता मुक्त करती है और दूसरे अवसर पर देवताओं के छल को निरर्थक करती हुई उन्हें पहचानने में सफल होती है । तीसरा अवसर वह है जब रूप-वर्ण खोकर राजा नल एक तरह संसार से ही लुप्त हो जाते हैं; परंतु दमयंती चुपचाप बैठी न रहकर अपनी बुद्धि कौशल द्वारा उस स्थिति में भी उनका पता लगा लेती है और ऐसी बुद्धिमानी से सूत्र संचालन करती है कि नल स्वतः ही उसके पास खिंचे चले आते हैं । यह सब उसकी प्रत्युत्पन्नमति द्वारा संभव होता है । चरित्रवल भी उसमें उच्चकोटि का है । वन में राजा नल से विछड़ जाने पर आतताइयों से रक्षा करने में शील और पातिव्रत्य युक्त यही चरित्रवल उसकी सहायता करता है और उसे निर्भय बनाये रखता है । दमयंती के इस चरित्रवल को देखकर इंद्र और राजा ऋतुपर्ण सरीखे अज्ञाधारण कोटि के पुरुष भी स्तंभित हो जाते हैं । उसका यह चरित्रवल इतना बड़ा चढ़ा है कि देवता भी समय पड़ने पर उसके शील की रक्षा करने के लिये उपस्थित हो जाते हैं और सिंह जैसे हिंसक पशु उसके आगे शृगाल बन जाते हैं । निःसंदेह, ऐसी ही यगस्विनी नारियों का चरित्र लोक को चिरकाल तक अमल आलोक से परिपूरित रखता है ।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य में सूफी विचारधारा और भारतीय विचारधारा का समन्वय किया है । यदि यह कहें कि सूफी खोल में भारतीय आत्मा भरी है तो अनुचित नहीं होगा । यह कार्य बहुत कुछ तो जायसी ही कर चुके थे, पर सूरदास ने रही सही कमी को पूरा कर दिया । इस दृष्टि से प्रस्तुत आख्यानक काव्य विशेष अध्ययन की वस्तु है ।

काव्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में प्रस्तुत काव्य की रचना निकृष्ट कोटि की बताई है । इसका आधार संभवतः 'स०' प्रति है जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है और जिसकी लिपि अत्यंत भ्रष्ट है । भूमिका के आरंभ में हमने भी यही विचार प्रकट किए हैं कि यदि 'स०' और 'का०' प्रतियों में से किसी एक के आधार पर संपादन होता तो वह नितान्त असफल सिद्ध होता । परंतु दो प्रतियों के आधार पर जो संपादन संभव हुआ उससे यह काव्य उत्तम रचना के रूप में सामने आता है और

आचार्य शुक्ल की उक्त धारणा के लिये स्थान नहीं रहता । क्या भाव, क्या भाषा और क्या शैली, सब दृष्टियों से यह सकल काव्य कृति है । संबंध निर्वाह और वस्तु वर्णन भी कवि कौशल के परिचायक हैं । इसकी कथावस्तु एक प्रेम कहानी है और यह शृंगार रस प्रधान काव्य है । शृंगार रस के दोनों पक्षों—संभोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार का इसमें वर्णन है । विप्रलंभ भी दो तरह का है एक विवाह पूर्व का और दूसरा विवाह के पश्चात् का । विवाह पूर्व का अभिलाष हेतुक द्वियोग शृंगार जैसा कि पहले कहा जा चुका है गुण, श्रवण और चित्र-दर्शनजन्य है । शृंगार रस के अंतर्गत नखशिख, वारह मासा और षट्ऋतु वर्णन भी आते हैं । 'नलदमन' में वारह मासा को स्थान नहीं दिया गया है । जेठ दो का वर्णन है । षट्ऋतु वर्णन संभोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में हुआ है । दोनों के एक-एक उदाहरण दिए जाते हैं—

शिवनख [नासिका वर्णन]

नासिक खीन खरग के धारा । मन तिहि परत होइ दो फारा ॥
ससि पर चंपकली जनु राखी । मलय पुहुप चोहू का सारि ॥
जो पुनि पहरै फूल जराऊ । कहिन जाइ कछु तिहि कर भाऊ ॥
सुअटा अघर विव तकि छका । ध्यान रूप खववारी लगा ॥
सुवा ठौर का बरनी तासू । वह न वास यह पुहुप सुवासू ॥
जदपि सुवा ठौर अति जोनी । तऊ कठोर न तिहि सर होनी ॥
वह कोमल जनु पुहुप बनाई । पुहुपहुँ तै अति कोमलताई ॥
वन वन सुवा फिरै तप सार्ध । मूदि मूदि आग्नि अलख अराधे ॥
नासिक बरन ठौर सकु होई । परि जो भयो काट दुख सोई ॥

वनी प्रकासक वदन पर, डमि नासिक चित चोर ।

अभी स्वाद मनु ससि कुतुर, कीर निकासी ठौर ॥६३॥

संभोग शृंगार

[षट् ऋतु वर्णन]

रितु वसंत फुलि है वन बेली । सुरितु चैत बंगाल नबेली ॥
सब दिन सुख तैसै फुलवारी । चाँवर जुरै होहि धनारी ॥
वार्जाहि साज राग धुनि होई । इंद्र अखाड़ कहा जस सोई ॥
नवल फूल फूले चहुँ ओरा । आवहि पवन सुवास हिलोरा ॥
सुमन हार को दाऊ डारी । श्री अभरन सब सुमन सर्वारी ॥
सारे पुहुप बेलि जनु फले । इहि मनु गति मधुकर होइ भूले ॥
अँग अँग भँवर पुहुप रस लेई । रदन कँवल कँजन मुख देई ॥
रैन होइ मंदिर सुखवासी । सज्या वीनि कुसुम दल डाली ॥
हँसि हँसि मिलहि पुरुख अरुनारी । मगन कैलि रस प्रीतम प्यारी ॥

प्रीतम प्यारी एक संग, रितु वसंत पुनि होइ ।

या सुख सम संसार महँ, हूजा और न कोइ ॥२३८॥

विरह वर्णन के भी थोड़े से उदाहरण दिए जाते हैं । नल में विवाह पूर्व का विरह गुण-श्रवण जन्य और दमयंती में गुण-श्रवण और चित्र वर्णन जन्य है—

नल का विरह

[विवाह पूर्व का]

राजा प्रबल प्रेम बस भयऊ । अस्थिर मन उदात्त होइ गयऊ ॥
 राज काज दिन चित्त न लागं । निसि निद्रा विनु परं न जागं ॥
 तारे गिनत छिपहिं नव तारे । छिन न छिपं पुतरी के तारे ॥
 नींद लाग तिन्हक मग रोगू । छाड़ दिहेसि घर भेष वियोगू ॥
 जो मन राम रंग महँ लावँ । तिनहू न लगं पेम भरमावँ ॥
 कल न परं व्याकुल भै रहै । काहू सो मन मरम न कहै ॥
 सोचहँ सोच जरँ दिन राती । जैसे दियो दिया कै वाती ॥
 पुध्या रही न दीसै आँसू । दिन दिन घटँ लाग तन माँसू ॥
 भा तन पियर रात जो रहा । सूरज वदन गहन मनु गहा ॥

जिन्ह घट वासा पेम को, तिन घट रकत न माँस ।

अगिन तेज दोउ उफनत, चुड़ निकसे होइ आँस ॥१०६॥

[विवाहोपरांत का विरह]

निस जब होइ नींद टर सोवँ । यह दुख भरा जाग निस खोवँ ॥
 बैरी विरह नाग होइ आवँ । विखधर जान जुद्ध कहँ धावँ ॥
 निवल पाइ रिपु धर धर लावँ । रुदन करँ जब कछु न बसावँ ॥
 स्याम घटा तन औ निसि कारी । तैरुड विरह उमगि अंधियारी ॥
 लसै बीज होइ हियै दसावत । निसि वीतँ चख भरै लगावत ॥
 छौंस कंवल ज्यों सब निसि नैना । औ मुख कहै विरह दुख वंना ॥
 प्यारी तू किहिं वन वनवासी । कित डोलसि भूखी अरु प्यासी ॥
 ऐ जिउ प्रान कहाँ तोहि वासा । दिस्टि न परसि रहसि जिउ पासा ॥
 तै उदास कैधौ मन माहाँ । का तोहि रूप सुरत मोहि नाही ॥

कत तिहिं छौंस निसा परै, उहि बटपारै गाउँ ।

बस कुमति उपजी हियै, करि मल मल पछिताउँ ॥३००॥

दमयंती का विरह

[विवाह पूर्व का]

कठिन विथा मुख जाइ न काढ़ी । ज्यों ज्यों डुरै अधिक त्यों बाढ़ी ॥
 रातहि सखी सोइ जब जाहीं । उठि बैठे मन दै पिउ माहीं ॥
 हाथ चित्र लै टकी लगावँ । नैन इहाँ मन उहाँ मिलावँ ॥
 लाइ सुरत डोरी पुनि रोवँ । नैक न नैनन नीर बिछोवँ ॥

रुसि कहें रुदा सुरज को ध्यानं । जाग रैन नित करे विहानूं ॥
नींद जो गई सो फिर ना आई । आवे उभिक भौंक फिर जाई ॥

नींद निरासें आई क, कौन ठौर ठहराड ।

नैन जो मंदिर नींद कै, तहें पिड रहा समाइ ॥१४०॥

निस दिन रहै पेम अनुरागी । क्षुधा घटी तिरखा अति जागी ॥
पेम सवर (सवल) भातन भा हीना । लागे वोभ चौर अति भीना ॥
राता कँवल पियर दिखरावा । अनु पिड पेम गहन महें आवा ॥

[दोहा—१४१]

×

×

×

[विवाहोपरांत का]

जा कहें प्रीत पीड सों होई । ताहि कुटुंब सों काम न कोई ॥
रथ तें उतरि पवैरि जब आई । नल मिलाप गृह दीन दिखाई ॥
देखत खिन सो ठाँ वह नारी । उठी वियोग अगिन उर भारी ॥
तिहि मिलि रोड कुटुंब दुख खोव । वह तिन्ह मिलि विछुरे कहें रोव ॥
दिन मिलि मिलि सखियन सों रोई । निसि नल कै दुख सों मिलि खोई ॥
ब्रह्मा कै दिन ज्यों निसि वाढ़ी । घटे न विरह उमंग जिउ गाढ़ी ॥
भर भर अंकम देइ मरोरा । सहै न निवल गगन भकभोरा ॥
ताक भुईँ पलका कै पाटी । सब निसि दुहौं ओरतें काटी ॥

[दोहा—३१३]

शृंगार के अतिरिक्त करुण, अद्भुत और शांत रस भी ध्वनित होते हैं । इनके भी उदाहरण दिए जाते हैं—

करुण रस

इसका स्थायी भाव शोक है । यह द्रव्य नाश, वंधुनाश, प्रियवियोग और धर्म अप-
घात आदि से उत्पन्न होता है । प्रथम दो के उदाहरण दिए जाते हैं—

[द्रव्यनाश जन्य]

चले पुरुख नारी संग दोऊ । देखि उनहि भुरवै सब कोऊ ॥
सब दिन घरमराज इन कोन्हा । दुख धीं कौन दोख विधि दीन्हा ॥
कोऊ कहै वड़ी अग्यानी । आपु आपुदा आपुहि आनी ॥

×

×

×

नल कै स्रवन भनक यह परी । सुनि सुनि सीस तरहिनी करी ॥
औं सो वचन रानि पुनि सुनै । लाजन्ह गड़ी जाइ सिर धुनै ॥
इन वातन अधिकौ अकुलानी । चली उतायल लाज लजानी ॥
छाड़ि नगर बाहर भए दोऊ । नारी पुरुख और नहि कोऊ ॥
धिर गति काल और रंग फेरा । नगर छीनि वन दीन्ह वसेरा ॥

हुआ काल्हि लौं राज समाजू । आज आइ प्रगटा यह साजू ॥
जे पग सदा पवित्तर रहे । ते ताते भूभल महें दहे ॥
जे तन पुहुप अरें अरसावें । सो काँटों तर लोटनि खावें ॥
ताती ताप लगै तन जरै । उड़ि उड़ि धूरि सीस पर पड़े ॥

पग बाहन दुख को कटक, छत्र छाँह रवि धूप ।

धन चादर चौडोल महें, चला जाइ नल भूप ॥२५४॥

राजभ्रष्ट राजा नल आलंबन हैं । पुष्कर का कृत्य उद्दीपन है । प्रजा और दमयंती का क्रंदन अनुभाव है । विषाद, चिंता आदि संचारी भाव हैं ।

[बंधु नाश]

नल तिहिं सोक सीस महें मारा । भुका हार लाई तन छारा ॥
धन धन कूक ढाह देइ रोवै । रहिर धार नैनन न बिछोहै ॥
नैनन अगिन लपट मुख काढे । आप जरा औरीह उर डाहे ॥
जम को बर सोकहें जम भयेऊ । अब बर सो सराप होइ गयेऊ ॥
कल बैरन्ह तिहिं दिन बर दीन्हों । देइ सराप कस छार न कीन्हों ॥
पर पुनि का वैरी प्रतिपाला । सो तो लहसि प्राण ज्यों बाला ॥
औ सो मरे जाकर जिउ लेई । मम जिउ लै पै मरन न देई ॥
मरन चहों पै मरन न पावों । सुमिरन करों हारतौ नाओं ॥
पाँच बरख अब प्राण बिहना । तन किहिं लागि जिया तौं सूना ॥

ये विलाप कर कर भिकै, रोवै औ बिललाय ।

मुवा चहै कैसे मरै, जो जम न प्राण ले जाय ॥५॥

दमयंती की मृत्यु आलंबन है । उसकी पतिभक्ति आदि गुण-स्मरण उद्दीपन है । नल का रोदन और दैन निंदा अनुभाव है । निर्वेद, मोह, स्मृति और प्रलापादि संचारी हैं ।

अद्भुत रस

स्थायी भाव-विस्मय । आलंबन—अलौकिक और आश्चर्य जनक वस्तु और कार्य—
जो देखै तौ कइ नल ठाढ़े । नल विन ज्यों नल ह्वै छल बाढ़े ॥
औ पुनि नल ता हिय जो समाना । जो देखा सो नल कै जाना ॥
दुविधै पड़ी सोच जिय करै । विधि किहिं भॉति जानि पिउ परै ॥
जो अब चूकुं जनम भर रोऊं । पावा पीउ हाथ सों खोजूं ॥
एहिं सभा महं पीउ जो पावा । तो पावा पुनि हाथ न आवा ॥
कौतुक दुखन सभा यह पाई । औ अब छिनक माहिं उठिजाई ॥

×

×

×

—दो०—२०३

जब नहिं निव्रित होइ बहु बाधा । तब तिन परभु अचित अराधा ॥
दीन बंधु वड़ अंतरजामी । घट औघट समान विसरामी ॥

भूलें पंथ वतावन हारे । संकट परें छुड़ावन हारे ॥
 तुम जानों जिहि मद हों माती । जाके पेम रंग उर राती ॥
 कृपा करहु मोहि वहै मिलावहु । छरहि जो छर तिन पाहि छुड़ावहु ॥
 असरन सरन सरन जब गई । तव अकास बानी तिहि भई ॥

[दोहा—२०४

× × ×
 सुन अकास बानी उर धारी । तव अछर छर निरखि निहारी ॥
 देखैं त्रिगुन अलग तिन माहीं । एक पुरख दूजा कोउ नाहीं ॥
 वहै अचल राखैं थिर पाऊं । और अघर ह्वै रहै चलाऊं ॥
 एक सो पुरख निरखि पहिचाना । मिटा भरम मन निहचै आना ॥
 चिन्हैसि कहसि यहै सो पीऊ । जिहि लै थापा आपन जोऊ ॥
 गह भेटा पीतम अपनावा । लै उर जैमाला पहिरावा ॥
 छरें छरें वह छरी न गई । जाकी अहै ताहि कै भई ॥

[दोहा—२०५

× × ×
 श्री पुनि इन्द्रादिक जे देऊ । इहि चरित्र थकित भए तेऊ ॥

[दोहा—२०६

वास्तविक नल का दिखाई देना और कई नलों का होना आलंबन । नल को वरण करने का एक मात्र अवसर स्वयंवर सभा ही होना उद्दीपन । प्रार्थना करना, आकाश वाणी का होना और नल को वरण करना आदि रोमांच उत्पन्न करने वाले कार्य संचारी । इंद्रादि देवताओं को विस्मय होना अद्भुत रस है ।

शांतरस

स्थायी भाव - निर्वेद या शम । आलंबन—अनित्य संसार की निस्सारता का ज्ञान या परमात्मा चिंतन । यह रस दमयंती की मृत्यु के पश्चात् नल को निर्वेद होने पर व्यंजित होता है—

राज काज सों भयेउ उदासी । ग्रह तजि भया चहै बनवासी ॥
 पुत्र जो इन्द्रसेन लौ लावा । निज आपन तिहि वरन सुनावा ॥
 कहसि पुत्र लै आपन राजू । श्री जो कछु सब राज समाजू ॥
 गनकहि बूझि सुदिन ठहरावा । पाट बैठि सिर छत्र धरावा ॥
 मोहि अब राज वंदिग्रह भयेऊ । राज पाट कौ सिख उठ गयेऊ ॥
 राज मंदिर अब भय अंध कूर्ये । सांप सूर किडुआ कुल सौहें ॥
 दावानल होइ गइ फुलवारी । होइ पहाड़ अगिन चिनगारी ॥
 नैनहि फूल गड़े होइ काँटे । विस्तर अंग काट ज्यों चाँटे ॥
 मोहि अब भसम चहै उर छाला । पै वह नावं जपन कइ माला ॥

× × ×
 पर सोई मोहि ना चहै, भसम जो तन कियो गेह ।

मन माला वाला बचौं, छाला खाल सों देह ॥६॥

कह्ये बचन, चल बैठि अगोसे । ग्रह तजि मीत सवार सदोसे ॥
 लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मीत मन लागा ॥
 मन तिहिं देइ देइ तन सुरत गवाई । प्राण तिनिहिं में रहा समाई ॥
 उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । चल वियोग संजोग समाना ॥

[दोहा—७]

×

×

×

‘नल दमन’ में युद्ध का प्रसंग न होने के कारण वीर रस का अभाव है । परंतु बहुत से लोग ‘दया वीर’ और ‘धर्म वीर’ को भी वीर रस के अंतर्गत मानते हैं । नल में ये दोनों बातें पाई जाती हैं । इस दृष्टि से जहाँ जहाँ ऐसे प्रसंग आए हैं वहाँ वहाँ यह रस भी मानना चाहिए । भयानक रस के कई अवसर आए हैं, जैसे—दमयंती के हिसक पशुओं से युक्त वन से पहुँचना जहाँ सिंह दहाड़ रहा है और जंगली हाथियों द्वारा सार्थवाहों के मारे जाने की घटना; का होना परंतु न जाने कवि ने क्यों इन अवसरों पर इस रस का परिपाक नहीं होने दिया । हो सकता है, प्रेम साधना मार्ग के पथिकों को भयानक का अनुभव न होने देना ही मात्र कारण हो । यही बात रौद्र और वीभत्त रसों के संबंध में भी समझना चाहिए । साधना वालों को क्रोध और घृणा से क्या नाता । रहा हास्य रस, वह वैसे ही मध्यकालीन हिंदी कवियों द्वारा उपेक्षित है, इसलिये प्रस्तुत कवि ने भी उससे विशेष संबंध नहीं रखा । फिर भी नल दमयंती के प्रथम मिलन अवसर पर सखियों के खेल कूद में इस रस की थोड़ी सी झलक मिलती है ।

अलंकार

अलंकारों का भी बड़ा रमणीय विधान किया गया है । अनेक प्रकार के अलंकारों की योजना पाई जाती है । उत्प्रेक्षा, रूपक और अतिशयोक्ति विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं । अनुप्रासों के फेर में कवि बहुत नहीं पड़ा । परंतु जहाँ कहीं आए हैं तो अत्यंत स्वाभाविक रूप में । कुछ अलंकारों के उदाहरण दिए जाते हैं:—

अधिक ताद्रूप्य रूपक

भुईं पर चाँद उवा जनु आई । जोत अकास दीन्ह दिखराई ॥
 देख जोत पून्यों ससि घटा । कत यह और चंद परगटा ॥

[दोहा—७५]

दमयंती के वदन उपमेय को ‘कत यह और चंद परगटा’ पद द्वारा उपमानचंद्रमा से भिन्न कहा गया है तथा ‘पून्यों ससिघटा’ कथन द्वारा वह उपमान से बढ़कर हो जाता है । इसलिये अधिक ताद्रूप्य है ।

अभेद रूपक

[सावयव एक देश विवर्ति]

निरखत नैन मेघ जुरि आए । विरह सिंधु हिय सों जल लाए ॥

वदन चंद पट घट गह लियो । तम निस ज्यों दिन हिय इमि भयो ॥
वरखै लाग भकोर भकोरी । अंचर भीज चुआ होई ओरी ॥*

(दोहा—३०८)

चंदेरी में सहदेव ब्राह्मण के मिलने पर दमयंती रोने लगती है । उसकी अश्रुधारा का वर्षा से रूपक वाँधा गया है । नयन मेघ रूप होकर जुड़ आए हैं । हृदय विरह सिंधु है जहाँ से मेघ जल ले गए हैं । वदन चंद्रमा रूप है और पट घटा रूप जिसमें वदन रूपी चंद्रमा छिप गया है [दमयंती रोते समय मुख को वस्त्र से ढक लेती है इसलिये वस्त्र को घटा रूप कहा गया है] । हृदय रूपी दिन रात्रि रूपी तम में परिणत हो गया है । अश्रु रूपी वर्षा रह रह कर होने लगी है । अंचला भींग कर ओरी (छप्पर का ढलुवाँ भाग) रूप हो चूने लगा है । इसमें सब अक्षरों का शब्दों द्वारा कथन किया गया है; परंतु वर्षा उपमान जिस अश्रु शब्द का आरोप है उस अश्रु का शब्द द्वारा कथन नहीं किया गया है । केवल अर्थ बल से जाना जाता है । इसलिये 'सावयव एक देश विवर्ति अभेद रूपक' है ।

माला रूप भिन्न शब्द परंपरित रूपक

धन चातक कहं भा पिउ स्वाती । पिउ चकोर कहं धन ससि राती ॥
धन सो मीन पावा पिउ पानी । पिउ अलि धन अंबुज अरघानी ॥
धन कुमुदिनि प्रीतम ससि पावा । पिउ पतंग धन दीप लुभावा ॥
धन महि कौं पिउ मेह सुभागू । पिउ सारंग कहं धन इभ रागू ॥
धन सीपी पावा पिउ स्वाती । पीउ भूख भोजन धन राती ॥

[दोहा—३५६]

दमयंती में चातक आदि आरोप का कारण नल में स्वाती आदि का आरोप किया जाना है । दमयंती में ससि, मीन, कमल आदि बहुत से आरोप भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा कथन किए गए हैं । ऐसे ही नल में भी किए गए हैं । जैसे-चकोर, पानी, अलि आदि । अतएव 'माला रूप भिन्न शब्द परंपरित रूपक' है । परंपरित रूपक में एक आरोप दूसरे आरोप का कारण बनता है ।

एक साँग रूपक का भी उदाहरण दिया जाता है, जो काव्य का भी उत्तम नमूना है—

पहिरे राता चीर सुहावा । तिहि प्रकार रवि दिस्टि न आवा ॥
चिहुर रैन मुख ससि होइ ऊवा । नैन कलंक भौंह मनु जोवा ॥
कुंडल लवन देखि मन थाका । भूमक रहे जानहुं रथ चाका ॥
बना जो सीसफूल उजियारा । छत्र भिल मिले नखत संवारा ॥
सुंदर तिलक सारथी छाजै । ताकर ओकें अलग विराजै ॥
सोहे दृगन जो अंजन लागा । मानहु लागि म्रिगन मुख वागा ॥

*तुलनीय—वरखै मघा भकोरि भकोरी । मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ॥

सांग सो जनु गजपंथ संवारा । चंदन चित्र कचपचै तारा ॥
 मुक्ता लर जो सांग बैसाई । मनु बग पांति घटा मंडराई ॥
 दिन महं रैन समाज दुति, रीभि छका सब कोइ ।
 बहु जन कहा कि ससि उवा, निसि भई द्यौस न होइ ॥२०१॥

चौपाइयों में सांग रूपक है और दोहे में भ्रांतिमान् अलंकार । सांग रूपक में दमयंती को चंद्रोदय के रूप में चित्रित किया गया है । लालिमा लिये हुए वस्त्रों को पहन कर उसके सौंदर्य का जो उज्ज्वल आलोक बिखरा उसके आगे सूर्य का प्रकाश भी अरतंगत हो गया । चिहुर रूपी रैन में मुख रूपी शशि उगा जिसमें भौंह रूपी कलंक भी थोड़ा सा विद्यमान है । कानों के दोनों कुंडल चंद्रमा के रथ के चक्र हैं और शीशफूल रथ का छत्र है जिसकी गोद में तिल रूपी सारथी अलग से विराजमान है । अंजन से अंजित दृग वाग धारण किए हुए मृग रूप हैं । सवारी हुई सांग हस्त नक्षत्र मार्ग है और चंदन की चित्र कारी कृतिका नक्षत्र रूप है । सांग पर जो मुक्तालड़ बिठाई गई है वह संध्याकाल की रक्तालोक घटा पर मडराने वाली बग पंक्ति है [बग पंक्ति का अच्छा सादृश्य बिठाया गया है । संध्या काल में बगले पंक्तिबद्ध होकर अपने निवास स्थान को जाते हैं] ।

इस प्रकार रैन समाज दिन में ही द्युति धारण कर बैठा जिसे देख सब कोई मुग्ध हो गए । बहुतों ने तो कहा कि यह चंद्रोदय है । इसलिये रात्रि हो गई है, दिन नहीं रहा । यहाँ बहुतों को चंद्रोदय का भ्रम होने से भ्रांतिमान् अलंकार भी है ।

थोड़े से और अलंकारों के उदाहरण दिए जाते हैं :—

असंबधातिशयोक्ति

प्रेम समुद्र अथाह अपारा । तहां पर को काढन हारा ॥
 नदी समाइ जाइ इक ओरा । का सिख बूंद करै तिहिं जोरा ॥

×

×

×

पेस पहार अकास उचाहीं । सिख दोला ना ऊपर ताहीं ॥

फलोत्प्रेक्षा

बनी प्रकासक बदन पर, इमि नासिक चित्त चोर ।
 अमी स्वाद मनु ससि कुतुर, कीर निकासी ठौर ॥६३॥

वस्तुत्प्रेक्षा

अब बरनों तिहिं सांग निकाई । जमुना चीर गंग जनु आई ॥

[दोहा—२८

×

×

×

पतरी धार कौंध जनु कौंधा । तस तिहिं सांग लाग रहै चौंधा ॥

×

×

×

इमि दीसै अहि के उदर, अधर दमंती नार ।
नीलांवर के ओट मनो, दीपक राखा वार ॥२७३॥

प्रत्यनीक

वसा न पूज पियर भयो गाता । लागेसि विरह कील्ल घर छाता ॥
मसरी करि अहार नित रहै । विख ल्ल वचै विरह दुख दहै ॥
सब तन रोम रोम विष वसा । तिह अनखन मानुस कहं उसा ॥

[दोहा—१०५

संदेहालंकार

धौं जिउ कहं पिउ काह करेई । आपुन लं कै कालहि देई ॥
अवलीं मिलन आस तन माहीं । रहा हुता अब रहै कि नाहीं ॥
सो वह छीस आइ नियराना । धौं कैसे अब रहै निदाना ॥
खेवा गहै करै पीउ पारा । कै निरास वोरै मझधारा ॥

रूपकातिगयोक्ति

मिलि ससि रवि रोवन लगे, हियरा उमड़ा सुक्ख ।
ता दिन तपन निसर चली, या निसि जागन दुक्ख ॥१८६॥

प्रथम प्रतीप

वना लंक तस जाइ न कहा । केहर देखि बैठ वन रहा ॥

धमक

देख रुदन संग हुती जो धाई । सोउ रुदन रूप होइ आई ॥
धाई जहं मंदिर पटरानी । तासों धाइ सो कथा बखानी ॥
× × ×
प्रीतम सैं तोसों नहि तोरी । सब सों तोर मोर भइ तोरी ॥
× × ×
अनल वरन नल वरन लग, वरन लगे होइ आग ॥२६॥
× × ×
घाइ सो घाइ माइ पहं रोई ।

वृत्यनुप्रास

घन गरजन सुनि कै लखी, पति रथ की धमकार ।
चौंक चमक चपला भई, चढ़ि चमकी चौवार ॥३३६॥

× × ×

हौं मैं नदर ददीं देरागी । तू सरोज सख सुर अनुरागी ॥

×

×

×

कोऊ कहै बड़ो अग्यानी । आपु आपदा आपुहि आनी ॥

×

×

×

भाषा

कवि ने न तो जायसी की ठेठ ग्रामीण अवधी का ही प्रयोग किया है और न रामचरितमानस की संस्कृत गभित का ही । उसने दोनों के बीच का रास्ता पकड़ा है । उसने महाभारत और पुराण साहित्य का भी पारायण किया था—

भारथ मैं जो कथा वखानी । आदि अंत वानी महं आनी ॥

बात बात मैं जुगति बनाई । कथा पुरान मय कै दिखराई ॥

तात्पर्य यह कि महाभारत पढ़ने के पश्चात् उसने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की । दूसरी बात यह है कि उसने जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया है वह सूफी न होकर भारतीय है जो उसने भारतीय ग्रंथों (दर्शनादि) से प्राप्त किया । इस दृष्टि से वह संस्कृत का विद्वान सिद्ध होता है । इसलिये 'नल दमन' में उपर्युक्त ग्रंथों की भाषा का संतुलित रूप दृष्टिगोचर होता है । परंतु कवि ने ऐसी भाषा जानबूझकर प्रयुक्त नहीं की वरन इसका निर्माण उसकी योग्यता के अनुसार स्वतः ही हो गया । वह प्रतिभाशाली कवि है, इसलिये उसकी भाषा का माधुर्य गुण संपन्न, भाव पूर्ण, मुहावरेदार, एक रस और प्रवाह-पूर्ण होना स्वाभाविक है । कहीं कहीं जो अंतर दिखाई देता है वह उसके ज्ञान प्रदर्शन की [जिसे वह 'गुप्तार्थ' कहता है,] विशेष अभिलाषा के कारण है । वहाँ भाषा काव्य विहीन होकर दर्शन शास्त्र की भाषा मात्र होकर रह जाती है । इसके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

पिउ बोला प्यारी सुन मोसों । निज मन मरम कहों हों तोसों ॥

मैं जबसों तो महँ जिउ डारा । तवसों आध घरी न विसारा ॥

छिन छिन सुरत लैन लग तोरी । मन तू ही मैं राखों गोरी ॥

जैसे मिरग नाद मन लावै । ओ अलि कवैल वास ज्यों पावै ॥

चातक स्वाति बूंद कै आसा । निस दिन चित दै रहै अकासा ॥

त्यों तोसों मैं लगन लगाई । गुडी डोर ज्यों सुरत मिलाई ॥

निस दिन सोच रहा मोहि तोरा । सुरत सूत छिन जोर न तोरा ॥

रहसि अखंड लगी मन मोरै । ओ जिउ मोर रहै तनु तोरै ॥

हौं अपनी सत भाव कहि, अब बूझत हौं तोहि ।

तैं धौ पेस बैस सुखी, किमि दीन्यौ मन मोहि ॥२१८॥

जो तुम पुनि पूछौ मो पाहाँ । बिनी सुनौ सरवन दै नाँहाँ ॥

मैं जब सों पिउ सों जिउ लावा । तव ही सों आपा विसरावा ॥

तन आपन सो निरापन कीन्हों । जिउ लै काडि पीउ महँ दीन्हों ॥

जिउ पुनि जब पिउ सों मिलि गयऊ । जिय कै ठोर जीउ पिउ भयऊ ॥

जिउ पिउ अन्तर भेद भुलाना । मन निज जीउ पीउ कर जाना ॥

रोमहि रोम रहा रम पीऊ । जीउ पीउ भा हौं निरजीऊ ॥
 हुता जो मन में मैं अभिमाना । सो चलि प्रीतम माहि समाना ॥
 मन पुनि पीउ मिला ज्यों जीऊ । सो अब कहन लागि हौं पीऊ ॥
 मन जिउ मेदि पीउ भा सही । हौं हौं कहे ओ मात्र न रही ॥

जैसें दिनकर किरन मिलि, तम असत होइ जाइ ।

तैसें प्रेम प्रकास महँ, हौं हौं गई हिराइ ॥२२६॥

ये प्रकरण स्वयंवर हो जाने पर नल दमयंती के मिलन अवसर के हैं; वे एक दूसरे से अपने-अपने प्रेम का वर्णन करते हैं। नल के प्रेम वर्णन में तो कवित्व है; परंतु दमयंती अपने प्रेम का जिस प्रकार वर्णन करती है उसमें काव्य न होकर वेदान्त बोल रहा है। उसमें कवि का गुप्तार्थ गुप्तार्थ न रहकर प्रकृतार्थ हो गया है। उसमें जीउ (जीव) और पीउ (सीव, परमात्मा) का ही विषय प्रधान होकर चल पड़ा है। जीउ (जीव) पीउ (सीव) में मिलकर एक हो गया है और 'हौं' जो अभिमान है वह नष्ट हो गया है। इस प्रकार जीउ (जीव) और पीउ (परमात्मा) की अद्वैतता सिद्ध की गई है। ध्यान देने की बात है कि नल के वर्णन में 'हौं', 'तू' और 'तैं'—उत्तम और मध्यम पुरुष दोनों हैं। परंतु दमयंती के प्रेम वर्णन में प्रथम अर्धाली के 'तुम' को छोड़कर, जिसका वास्तविक वर्णन से कोई संबंध नहीं, उत्तम पुरुष के 'हौं' के अतिरिक्त मध्यम पुरुषवाचक शब्दों का अभाव है। आगे चलकर यह 'हौं' भी 'प्रेम प्रकास' में विलीन हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि ज्ञान अनेकता को मिटा कर एक (परमात्मा) को सिद्ध करता है और काव्य एक की अनेक व्यंजना करता है। जहाँ तक अनेकता में एक को देखने (एक की व्यंजना करने) का प्रश्न है वहाँ तक तो काव्य ज्ञान का साथ देता है और जहाँ ज्ञान ने अनेकता को मिटाना ही आरंभ किया तो वहाँ काव्य ज्ञान का साथ छोड़ देता है। यहाँ यही बात है। दमयंती सर्वत्र ऐसी ही कहती हो, यह बात नहीं है। उक्त उद्धरण तो विरल है। वह 'हौं', 'तैं', 'तू' का प्रयोग बराबर करती है और वहाँ भाषा सरस काव्य की भाषा है, जैसे—

कहसि कंत यों करै न कोई । ज्यों तैं ही बन माहि विछोई ॥
 संग मिलै अंतर के डारा । मिलै मांभ होइ गयसि निरारा ॥
 होतसि दूर न होत परेखा । गरै मिलै विछुरत का लेखा ॥
 इहै मिलन लैं सत हौं मारी । जुरी मिली तैं कीन्ह नियारी ॥
 कपटी सुना मिलै महं न्यारा । सो प्रीतम तू नैन निहारा ॥
 किहि हित सों भुइं सैन बनाई । गरै लाइ सुख नींद सुवाई ॥
 सुख सुवाइ पुनि कीन्ह विछोऊ । ऐसी करै मिलै महं कोऊ ॥
 जो जानौं तू कपट सोवावसि । मोहि सुवाइ आपा विछुरावसि ॥
 तौ हौं किहि कारन तव सोऊं । तो सो रतन सोइ नाहि खोऊं ॥

कंठ लगाइ सुवाइ संग, गांठ धरी मन माहि ।

सो बीती अजहं मिली, गांठ छोरि हौं नाहि ॥३५४॥

यहाँ ज्ञान की कोई ताक-भाँक नहीं है। परंतु जहाँ ज्ञान अनेक में एक ही परमात्मा का दर्शन कराता है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वहाँ भी भाषा कवित्व को लिये हुए है, यथा—

हौं भैं भवँर भवौं वँरागी । तू सरोज सुख सर अनुरागी ॥
हौं चातक पिउ पिउ रट सोरे । तू स्वांती भायँ नहि तोरे ॥
मो मन चित चकोर बिन देखै । तू सो चंद तोरै नहि लेखै ॥
मो गति ज्यों मछरी बिन पानी । तू अपने पानी अभिमानी ॥

यहाँ व्यंग्यार्थ के अनुसार 'हौं' जीव 'तू' परमात्मा को सरोज, स्वाती, चंद्र और पानी आदि अनेक वस्तुओं में देख रहा है। इसलिये भाषा भावमय हो गई है। यहाँ एक बात विशेष रूप से दृष्टि गोचर होती है। वह यह कि यहाँ मन के साथ चित्त भी आया है। भारतीय अद्वैती मन और चित्त को अलग-अलग मानते हैं इसलिये कवि पर भारतीय अद्वैत ज्ञान का पूर्ण प्रभाव होने का यह भी एक प्रमाण है। अस्तु, भाषा के संबंध में एक बात यह है कि वह अवधी का समसामयिक रूप है। अपभ्रंश शब्दों से वह युक्त है। परंतु साहित्यिक रूढ़ि का नितांत त्याग नहीं किया है। ऐसे शब्द भी उसमें प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग साहित्य में बहुत पुराने समय से होता आ रहा है, जैसे—चाहि (अपेक्षाकृत) और बाज (छोड़ कर या बिना) शब्द। परंतु ये शब्द अधिक बार प्रयुक्त नहीं हुए हैं। एक दो स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि विदेशीयता लाया है, जैसे—

लैलै इहां जो रक्त कड़ावा । वहां मजनू के नैनहि आवा ॥

और—

मौलाना मिलान जिन्ह तानै । परं खिलावाहि पढ़ाहि दुवाएं ॥
इससे वहाँ भाषा में अस्वाभाविकता आ गई है।

छंद विधान

सूरदास का छंद विधान सीधा साधा है। अन्य सूक्तियों की तरह उन्होंने भी दोहे चौपाई छंदों में रचना की है। चौपाइयों के दो भेद किए हैं। एक में सोलह मात्राएँ और दूसरे में पंद्रह मात्राएँ रखी हैं। दोहे में विशेष परिवर्तन नहीं पाया जाता, पर कहीं-कहीं मात्राएँ घट बढ़ अवश्य हो गई हैं।

सूक्तियाँ

सूरदास को सूक्तियों से भी बड़ा प्रेम है। ऐसे बहुत कम दोहे हैं जिनमें कोई उक्ति या तो सूक्ति के रूप में अथवा भाव व्यंजना के रूप में न आई हो। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। मेल विषय की सूक्ति देखिए :—

ग्वाल हुता जो चल वसा, कौन समेटे गाइ ।

फैल फूट सब जाहिगे, तहां मेल ढर जाइ ॥२७५॥

कुछ अन्य तथ्य विषयक सूक्तियां भी दी जाती हैं—

अस्तुति निंदा पत अपत, सर्व काल पर होइ ।
उवत सूर प्रथमी नवै, अथवत नवै न कोइ ॥२५५॥

× × ×

तैसी चाल चलै वने, जैसे काल कर चाल ।
काल व्याल न कटाइयै, आप काटियै काल ॥२६०॥

× × ×

हों मंजीठ कै रंग ज्यों, श्रौंति मिली तोहि संग ।
तू ततकाल उघड़ चला, जैसे रंग पतंग ॥२६१॥

× × ×

मीत विछुर जो जीजिये, का जीयें तेहि दाव ।
सजन विछोह न कीजिये, जीव जाव तो जाव ॥२६३॥

× × ×

जैसे सुख में नेकु दुख, वही बहुत दुख देइ ।
तैसे दुख में नेक सुख, बहुत मान मन लेइ ॥२६४॥

एक उदाहरण भाव व्यंजना का भी दिया जाता है—

पग वाहन दुख को कटक, छत्र छांह रवि धूप ।
धन चादर चौडोल महं, चला जाइ नल भूप ॥२५४॥

मुहावरेदार भाषा लिखने में तो कवि बेजोड़ है । यहाँ केवल एक उदाहरण दिया जाता है जिसमें 'चला सो चला' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है—

कलिजुग कियो कठोर मन, तोर मोह को जोर ।
चला सो चला उदास हूँ, मुख न कियो तिहि शोर ॥२६६॥

वैसे सारे दोहे की ही भाषा मुहावरेदार है ।

दोष

'नल दमन' में दो त्रुटियाँ विशेष रूप से सामने आती हैं । एक तो अध्यात्म पक्ष का आवश्यकता से अधिक प्रतिपादन करना है जिससे वह कहीं-कहीं कोरा दर्शनशास्त्र का रूप धारण कर लेता है । दूसरा पदमावत का अनुकरण है जिसके अनुसार कामशास्त्र में उल्लिखित पद्मिनी, चित्रिनी शंखिनी और हस्तिनी नामक चार प्रकार की स्त्रियों का तथा सोलह शृंगार और बारह आभरणों के नामों का वर्णन करना है जो काव्य की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखते । राम रावण जैसे शब्दों के प्रयोग भी जायसी के अनुकरण पर हुए हैं । एक स्थान पर तो इनके प्रयोग बहुत सुंदर वन पड़े हैं, जैसे—

धन सीता पिउ राम मनु, विछुर भयी संजोग ।
दोऊ आनंदित मगन, रावन हना वियोग ॥३५६॥

परंतु एक स्थल ऐसा भी है जहाँ राम का प्रयोग ठीक से नहीं हुआ। वहाँ 'विरुद्ध मति कृत' दोष आ गया है—

कीन्ह पयान विवान उठावा । बोल कहारन राम चलावा ॥

यहाँ 'राम' से अभिप्राय 'आराम' से है। परंतु यही राम मृत्यु अवसर पर कहे जाने वाले 'राम राम सत्य' का स्मरण कराता है। इसलिये अभीष्ट अर्थ के प्रतिकूल अर्थ की प्रतीति होती है।

फुटकल प्रसंग

काव्य में बहुत से फुटकल प्रसंग आए हैं। यहाँ केवल एक उदाहरण 'कुम्हार किसान के रहस (रहिंस)' का दिया जाता है—

रहिंस कुम्हार किसान कै, का भय लीन्ह जो बूट ।

ओर पहुंचै जानिये, किहि कर बैठे अँट ॥१४६॥

×

×

×

प्रस्तुत कृति उत्तम प्रबंध काव्य के रूप में सामन आ रही है। यह आज तक दुर्लभ कैसे बनी रही, यह आश्चर्यजनक है। फिर भी यह मिल गई है, यही बड़ी बात है। आशा है, यह अपने अनुरूप स्थान ग्रहण करेगी।

अंत में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि भूमिका के रूप में यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह ग्रंथ की समालोचना न होकर उसका परिचय भर है। अभी ग्रंथ और अध्ययन की अपेक्षा रखता है इसलिये समालोचना उक्त अध्ययन के पश्चात् ही संभव है। ग्रंथ का संपादन जैसा कुछ बन पड़ा है हिंदी विद्वत् समाज के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है, समादृत होगा।

काशी,
ज्येष्ठ शुक्ल ५, संवत् २०१७ }

वासुदेवशरण अग्रवाल
दौलतराम जुयाल

पुनश्च

इस संस्करण की तैयारी का निमित्त श्री मुनिकान्ति सागर जी को मिली हुई नलदमन की देवनागरी प्रति बनी। जब मैंने पहली बार जयपुर में वह प्रति उनके पास देखी और उनसे उसके संपादन के दिषय में अपनी इच्छा प्रकट की तो उन्होंने सहर्ष तत्काल वह प्रति मुझे दे दी और पीछे चलकर उसे हिन्दी विद्यापीठ आगरा के पुस्तकालय के लिये दान भी कर दिया। मुनि जी की इस उदारता के लिये मैं अतिशय अनुगृहीत हूँ। उन्होंने भरतपुर, अलवर, जयपुर अर्थात् प्राचीन मत्स्य जनपद को छान कर हिन्दी के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों का उद्धार किया है। नलदमन की दूसरी प्रति उर्दू लिपि में लिखी हुई बम्बई संग्रहालय में है। वह मूल प्रति हमें प्राप्त न हो सकी। किन्तु उसकी एक देवनागरी प्रति लिपि मोतीचन्द्रजी ने कराई थी और उसी के आधार पर नागरी प्रचारिणी समाने भी एक टंकित प्रति अपने लिये तैयार कराई थी जो हमें प्राप्त हुई। इसके लिये हम अपने मित्र श्री मोतीचन्द्रजी और नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री श्री डा० राजवली पाण्डेय के आभारी हैं। ग्रन्थ की मूल प्रतियों से पहली मुद्रण प्रति तैयार करने

का श्रेय श्री दौलतराम जुयाल, अन्वेषक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को है। मैंने उस पाठ को देखकर यथामति संशोधन किया, पर मेरी बराबर यह इच्छा बनी रही कि उर्दू की बम्बई वाली प्रति यदि उपलब्ध हो सकती तो यह पाठ और भी सुधारा जा सकता था। इस संस्करण की भूमिका के लिये भी मैं श्री जुयाल का अनुगृहीत हूँ। इसे उन्होंने मेरे निर्देशन में तैयार करके मुझे दिखा लिया है। मेरी इच्छा थी कि यह उन्हीं के नाम से प्रकाशित हो, पर सहयुक्त नामों के बिना इसके मुद्रण के लिये वे तैयार न हुए। श्रीजुयाल ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में जो परिश्रम किया है उसके लिये वे घन्यवाद के पात्र हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल

स्वस्ति श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

अथ नलदमन सूरदासकृतमारभ्यते

ईश वंदना

सुमिरी^१ आदि अनादि जो कोई । आदि अंत^२ पुनि एकै सोई ॥
जाहि न वरन न रूप न रेखा । अविगत गति अभेख बहु^३ भेखा ॥
सिथिल न चंचल^४ बड़ा न छोटा । तरुन न बूढ़ा लटा^५ न मोटा ॥
बहुत न थोरा सजा^६ न फूटा । मिला न विछुरा जुरा न टूटा ॥
ज्यों कुछ त्यों का गाँऊ^७ नाऊँ । नाउं जो^८ धरै वरै तिहि^९ नाऊँ ॥
नाउं इहै^{१०} जो कहै^{११} सो नाऊँ । इही कहव^{१२} वरु^{१३} रापत^{१४} नाऊँ ॥
नाउं धरत खिन मरगुन होई । जो निरगुन तिहि^{१५} नाउं न कोई ॥
वह जो रूप वा कोउन^{१६} कहा । वचन न चली तहाँ थकि रहा^{१७} ॥
जहाँ वचन कर गवन न होई । तहाँ कौन विधि वरनै कोई ॥

दोहा—आपुन बना न^{१८} वनै विना आपुन बना^{१९} वनाव ।

ज्यों सो^{२०} बना त्यों नहि^{२१} बना कहत^{२२} न वनै वनाव ॥१॥

दोहा०—१—१—मुमरूँ (कां०) । २—अनंत (म०) । ३—तिन्ह (स) । ४—
चपल (कां०) । ५—लवा (कां०) । ६—सच्चा (कां०) । ७—नांव (कां०) । ८—वताऊँ
(कां०) । ९—जुं (वां०) । १०—तिन्ह (म०) । ११—एही (कां०) । १२—कहै
(स०) । १३—कहिन (कां०) । १४—पर (कां०) । १५—राखव (म०) । १६—तिन्ह
(स०) । १७—को अन कहा (कां०) । १८—रहा (कां०) । १९—वनान न वनै बना
(स०) । २०—वनां (कां०) । २१—मू (कां०) । २२—त्वोही बना (कां०) ।
२३—कहित (कां०) ।

जद्यपि ज्यों ज्यों कहाँ न जाई । पै घट श्रीघट रहाँ नमाई ॥
 जहाँ न वहँ सो ठौर न कोई । मकलँ ठौर मँह एकीँ सोई ॥
 ओँ पुनि छेदँ भेदँ कछुँ नाहीं । सिमिटिँ नमाय रहाँ सब माँहीं ॥
 ओहि जो ठाठ वा कोउ न ठठा । सदा एक रस बड़ा न घटा ॥
 ज्यों आकास समान समाना । वही जान एहीँ उनमाना ॥
 पै वह चेतन यह जड़ मुना ॥ वह मजोति यह जोनि विहूना ॥
 जो कुछ दिस्टि परै सो नाही । पै इहिँ वा मँह वोँ इहिँ माँही ॥
 चर्मँ दिस्टि सों जाइ न देखा । तीँ दीखँ जो होई कुछ रेखा ॥
 वातहिँ बात जाइ वह जाना । दिस्टि न आवँ प्रगटँ हेराना ॥

दोहा—देख देखत देखि जत्र, दिस्ट कहेँ कछु नाहिँ ।
 दिस्टि अगोचर अलख वह, ता नाहीँ कै माँहि ॥२॥

सब मै ओँ सबही सों न्यारा । सब कुछ करै अकरता प्यारा ॥
 तिहँ चेतनँ विन कछु न होई । पै करतूत न लागै कोई ॥
 मंदिर माँहँ दिया ज्यों वारा । त्यों घट घट तासों उजियारा ॥
 घट मँहँ करनँ सकतँ सब तासों । पै वह अलग दिया ज्यों यासों ॥
 जैसे कंवल सुरज मिलिँ खिलै । पै याको गुन ताह न मिलै ॥
 कंवल खिलै कछु सुरज न खिला । ओ ताकै मुख मिलै न मिला ॥
 त्यों चेतन जड़ माह समाना । अनमिल जाइ मिला सा जाना ॥
 ज्यों पानीँ पूरै घट माही । दिस्टि परै ससि कैँ परिछाहीं ॥
 जल गुन जानँ परै जवँ हलई । चंद सो अलग न हलइ न चलई ॥

दोहा—कहीँ न जाहिँ वनाय कछु ता साहव के रंग ।
 रंगँ अंग सब ता मिल वनै, आपुँ न रंगँ न अंगँ ॥३॥

दोहा—२-१—कह्यौ (कां०) । २—रह्या (कां०) । ३—वोहि (कां०) । ४—
 ठौर ठौर मै (कां०) । ५—एकै (कां०) । ६—ऊ (स०) । ७—विन (स०) । ८—छंद
 (स०) । ९—हद (स०) । १०—समत (स०) । ११—रह्या (कां०) । १२—तिन्हही
 (स०) । १३—अनमाना (स०) । १४—सोना (स०) । १५—वह (स०) । १६—या
 (स०) । १७—चरम (स०) । १८—तो (स०) । १९—प्रघट (स०) । २०—कही
 (स०) । २१—माँही (कां०) ।

दोहा—३-१—औ (स०) । २—तिन्ह (स०) । ३—चिन्तै (स०) । ४—कुछ्यौ
 (स०) । ५—मै (कां०) । ६—कर्ण (कां०) । ७—शक्ति (कां०) । ८—वासों (कां०) ।
 ९—मिल (स०) । १०—पाणी (कां०) । ११—की (कां०) । १२—जानि । १३—
 जनु । १४—कहे (कां०) । १५—रङ्ग रङ्ग रङ्ग ताहि मिल (कां०) । १६—आप
 (कां०) । १७—निरङ्ग (कां०) । १८—नरङ्ग ।

जद्यपि^१ आप अलिप्त अकरता । पं करता भरता श्री हरता ॥
 सरजनहार जगत कर सोई । अलख निरंजन श्रीर न कोई ॥
 जो देखी सब वहै बनावा । न कुछ मांहि कुछ कै दिखरावा ॥
 कीन्हैसि प्रथम जोत परकामू । कीन्हैसि पानी पवन^२ अकामू ॥
 अग्नि पान^३ जल रज इमि सार्ज^४ । जिन्ह^५ सीं ए कौतुक उपराज^६ ॥
 कीन्हैसि धरती सुरग पतारा । मेरु समुन्द मूर^७ ससि तारा ॥
 दिन अरु^८ रैन धूप अरु छाहां । मेव वर्ण^९ पानी^{१०} जिहि^{११} माहां ॥
 देव मनुज दईत^{१२} यां प्रेता^{१३} । पमु पंछी जल थल जाव^{१४} केता ॥
 तखर मूल^{१५} बेल अरु^{१६} वूटी । अग्नि^{१७} सिरजना^{१८} गिनत^{१९} न टूटी ॥

दोहा—जे देखा ए खेत^{२०} जग, अनवन^{२१} वरत^{२२} अपार ।

छिनक एक^{२३} मंह सब किण^{२४}, करत न लागी^{२५} वार ॥४॥

जहं^{२६} लग जीव जंतु उपराजा^{२७} । भूख^{२८} सबहि कर सार्थहि राजा ॥१॥
 आपु सवन^{२९} मुधि कै पहुँचार्य । कीट पतंगन विसर न पार्य ॥२॥
 हस्ति^{३०} आदि दै चांटा ताई^{३१} । छिन न विसारत ऐसउ साई ॥३॥
 अस अटूट कीन्हैसि भंडारा । बटै न अघट अपूर अपारा ॥४॥
 जो जिहि^{३२} जोग देइ^{३३} तिहि^{३४} साई । ताकर दीन लेइ^{३५} सब कोई ॥५॥
 जो कोउ गरव करै मन मांही । हम^{३६} उपराज^{३७} दरव तव खाहीं ॥६॥
 गरव^{३८} मांभ का दरव कमावा^{३९} । तहां कीन उद्यम करि^{४०} खावा ॥७॥
 पमु पंछी जो वसै वन मांहा^{४१} । केतक अरथ दरव तिन्ह पाहां^{४२} ॥८॥
 वहै एक जग कै मुधि लेवा । अलख अपार निरंजन देवा ॥९॥

दोहा—करन हरन पोपन^{४३} भरन, जग कर्ता^{४४} के हाथ ।

पन^{४५} छिन कै^{४६} मुधि लेइ^{४७} लगि रहै सवन के साथ ॥५॥

दोहा—४-१—जद्यप (स०) । २—प्रांन (म०) । ३—खेह मव रचि (कां०) ।
 ४—साजो (कां०) । ५—तिहि (कां०) । ६—उपराजों (कां०) । ७—मुर (स०) ।
 ८—श्री (कां०) । ९—प्रांन (स०) । १०—पाइ (स०) । ११—जिन्ह (स०) ।
 १२—दैत्य (कां०) । १३—परेता (स०) । १४—ज्यों (स०) । १५—मूर (स०) ।
 १६—श्री (कां०) । १७—अग्नि (कां०) । १८—सिरजटा (कां०) । १९—कटत
 (कां०) । २०—लखे (कां०) । २१—अनां (स०) । २२—वर्ण (कां०) । २३—
 मै (कां०) । २४—कहै (म०) । २५—लाई (म०) ।

दोहा—५-१—जिन्हि सीं (कां०) । २—अपराजा (स०) । ३—भेख (म०) ।
 ४—कहै ४—सबहि । ५—हस्त (म०) । ६—जिन्ह (स०) । ७—दिये (स०) ।
 ८—तिन्हि (स०) । ९—निग (म०) । १०—हमही (कां०) । ११—उपाय (उपराज
 को काट कर उपाय बनाया गया है । उपाना = उत्पन्न करना भी अवधी की धातु है)
 (जेहि मृष्टि उपाई, रामचरित्रमानस) । (कां०) । १२—गर्भ (कां०) । १३—
 गमावा (स०) । १४—कर (म०) । १५—माहीं (कां०) । १६—पाहीं (कां०) ।
 १७—पूपन (स०) । १८—जग को ताके (स०) । १९—छिन (कां०) । २०—की
 (कां०) । २१—लेन (कां०) ।

करता कीन्ह चहै सो करै । भरे ढार^१ छूछ लै^२ भरै ॥
 परबत तिन ज्यों तोरि उड़ावै । तिनकहि^३ परबत कर^४ दिखरावै ॥
 सागर सोपि^५ उछारै छारा । सूखे मंह जल भरै अपारा ॥
 कंचन मंदिर बसत उजारै^६ । श्री^७ उजार मै कंचन ढारै^८ ॥
 राता विरिछ करै विनु पाता । डुंड^९ निपात^{१०} करै तिन्ह^{११} राता ॥
 पंडित गुनी निरगुन^{१२} कै डारै । मूरख पंडित करि^{१३} बैठारै ॥
 छत्रपती सों भीख मंगावै । लै भिखमंगा राज बैठावै ॥
 इंद्रहि चांटा करि^{१४} अवतारै । चांटहि^{१५} इंद्रासन बैसारै^{१६} ॥
 वेद^{१७} मतो फिर फिर अवतारै^{१८} । अघम अघरम^{१९} करत उधारै ॥

दोहा—अंवरत^{२०} बिख मूरै^{२१} करै, श्री विरव अंवरत^{२२} मूर ।

सदा हजूरी दूर करि, दूरै करै हजूर ॥६॥

ऐसो बल ऐसी प्रभुताई । छमा^१ वूभ कछ् वरनि न जाई ॥
 जीने अंग भजै जो वाको^२ । तेही अंग मिलै वह ताको^३ ॥
 जो ताको^४ साहब कै^५ मानै । ताहि वही सेवक कै^६ जानै ॥
 जो कोउ^७ कहै कि सखा हमारा । ताहि सखा होइ मिलै पियारा* ॥
 जो कोउ^८ ताकै^९ जात कहावै । जात^{१०} मान तिन्ह^{११} पांत^{१२} मिलावै^{१३} ॥
 जो कोउ^{१४} कहै अंस ही ताको । एक रूप मेरो अरु वाको ॥
 तिहि^{१५} अपनो^{१६} अंस^{१७} कै जानी^{१८} । निरमल अमल आप सो मानी^{१९} ॥
 जो कोउ^{२०} ढीठ अहै ही सोई । मो अरु वामै भेद न कोई ॥
 ता पर रीभि बहुत सुख मानै^{२१} । अंतर मेटि आप सो सानै^{२२} ॥

दोहा—ऐसो साहब और नहि, इतनी प्रभुता जाहि ।

सेवक जा सरवर^{२३} करै, करै आप सरि ताहि ॥७॥

दोहा—६-१—ढारै (स०) । २—ते (स०) । ३—कहुं (स०) । ४—करि (कां०) । ५—सूक (स०) । ६—उजारी (कां०) । ७—श्री (कां०) । ८—घारै (स०) । ९—डुंड (कां०) । १०—नपात (स०) । ११—वहु (कां०) । १२—निगण (कां०) । १३—कै (स०) । १४—कै (स०) । १५—चांटा (कां०) । १६—बैठारी (कां०) । १७—वेदमतै (कां०) । १८—अवतारी (कां०) । १९—अघर्म (कां०) । २०—प्रवधारी (कां०) । २१—अमृत (कां०) । २२—मूरि (स०) । २३—अमृत (कां०) । २४—दूरी (कां०) ।

दोहा—७-१—छिमा (कां०) । २—तिन्हही (स०) । ३—करि (कां०) । ४—करि (कां०) । ५—कोई (कां०) । ६—कोई (कां०) । ७—ताकी (कां०) । ८—जाति (कां०) । ९—तिह (कां०) । १०—पांति (कां०) । ११—लगावै (कां०) । १२—कोई (कां०) । १३—तिन्ह (स०) । १४—बोहु (कां०) । १५—अंसु (कां०) । १६—जानही (कां०) । १७—मानहि (कां०) । १८—कोई (कां०) । १९—दीठ (कां०) । २०—मानही (कां०) । २१—जानही (कां०) । २२—पर (स०) ।

* जयपुर की प्रति में यह पाँचवी चौपाई है ।

निज समुझी^१ तो एकी सोई । ग्राहव सेवक भद ने^२ कोई ॥
जड़ चेतन अंतर पुनि^३ नाहीं । सर्व समाइ रहै ता माहीं ॥
ज्यों जल माहि बुदबुदा^४ भएऊ । है जन नांव और होइ गएऊ^५ ॥
गांठि छट जब जलहि^६ समाना । जल को जल कुछ भयो^७ न आना ॥
कनक सिला ज्यों चित्र बनाए^८ । पमु पंछी लिख नांव धराए^९ ॥
एक^{१०} कनक होइ^{११} रहा^{१२} अनेका । कारण^{१३} टूट एक को एका ॥
त्यों यह सब सोइ होइ रहा । भेद कीर्य^{१४} तिन मरम न लहा ॥
वहै^{१५} नर्चया^{१६} वहै^{१७} बजैया । वहै^{१८} खेल श्री वहै^{१९} खेलैया ॥
जब चाहै तब धरै उठाई । अपना ज्यों कां त्यों रहि^{२०} जाई ॥

दो०—वह जो रूप वाको अचल, तासों भयो न भंग ।

जग समुद्र जल माहि, उपजी ए तरंग ॥८॥

जो मंदेह धरै जिउ^१ कोई । वहै^२ चेतन कैसे जड़ होई ॥
जद्यपि वहै^३ चेतन जड़ नाही । पं जड़ प्रगट^४ भाए^५ ता माही ॥
जड़ कछु^६ दूजे वस्तु^७ न जाना । मकरी कर^८ जाग कै^९ माना^{१०} ॥
काढ़ि आप सों कौतुक कीन्हा । श्री^{११} छिन माहि^{१२} लील पुनि लीन्हा ॥
अंत महा परलै जब होई । दिष्टि पदारथ रहै न कोई ॥
होइ अलोप^{१३} तत्तु^{१४} गुन^{१५} मेला । कछु न रहै वह रहै अकेला ॥
सब कुछ^{१६} ताही^{१७} मांभ समाई । चेतन अविनासी कहि^{१८} जाई ॥
आदि अंत जा एकै मोई । मध्य^{१९} उपाधि^{२०} न मानी कोई ॥
ऐसे समुझि एक निजु जानहु । दुविधा भूलि^{२१} न मन मे ग्रानहु ॥

दोहा—और न भखउ^१ जो^२ कुछ मो वहै^३ अलख निरंजन एक ।

भांति^४ भांति कै भेख धरि^५, एकै भयो अनेक ॥९॥

दोहा—८—१—समझै (वां०) । २—एकै (का०) । ३—और (कां०) । ४—कछु

(कां०) । ५—भयो (कां०) । ६—गयो (कां०) । ७—भेव (स०) । ८—बनाई (स०) । ९—धराई (स०) । १०—कनक अंग (का०) । ११—हुई (कां०) । १२—रह्या (कां०) । १३—कारै (स०) । १४—गिनै (स०) । १५—वही (कां०) । १६—नचा-वहि (कां०) । १७—वही (कां०) । १८—वही (कां०) । १९—रहि (कां०) ।

दोहा—९—१—जन (कां०) । २—दिन (स०) । ३—दिन (स०) । ४—प्रघट

(स०) । ५—भई (कां०) । ६—दूजी (कां०) । ७—जानहि (कां०) । ८—को (कां०) । ९—करि (कां०) । १०—मानहि (कां०) । ११—ऊ (स०) । १२—मांभ । १३—अनूप (कां०) । १४—तत (स०) । १५—खन (स०) । १६—कछु (कां०) । १७—ताहि (कां०) । १८—ही रहि (कां०) । १९—भरहु (स०) । २०—उपाइ (कां०) । २१—मूल (कां०) । २२—कछु कछु (कां०) । २३—सी (कां०) । २४—वोह (कां०) । २५—कई (स०) । २६—धर (स०) ।

ता गति^१ तां विन हाथ न आवै । बुद्धि^२ तहां परवेस न पावै ॥
 मति^३ तिमि निसि वह दिन उजियारा । ताकर कहां तहां पैसारा ॥
 केहि^४ विधि मिलै धूप कहु^५ छाही । जीन मुरज चितवै तिन्ह^६ मांही ॥
 खोजहि^७ खोज हार पै माना । लपि^८ न सकै सोहि पै^९ हेराना ॥
 है तो तिनकै ओट पहारा । पै तिन तिन^{१०} आंखन तिन डारा ॥
 स्वप्न भर्म जासों जग फीका । एकहि हुए देखै दृग नीका ॥
 ओ^{११} तिन्ह^{१२} कढन कढा होइ काढ़े । कढ^{१३} न जाइ ताकै विन काढ़े ॥
 जब सोइ ता तमहि^{१४} निकारै । ज्ञान नैत्र सूधै कै^{१५} डारै ॥
 बांक^{१६} द्वैत दरसन मिट जाई । तव निज एकी देइ^{१७} दिखाई^{१८} ॥

दोहा—अग्नि परगट जब काठ तै, काठै^{१९} देइ जराइ ॥

तवाहि काठ तासों मिलै, नातर मिली न जाइ ॥१०॥

जेती वा^{२०} प्रभु कै^{२१} प्रभुताई । तेती गति^{२२} नहि^{२३} जाइ सुनाई ॥
 अति^{२४} अपार गति पार न कोई । निज वरनन कैसै कर होई ॥
 ताको वरनन और न कोई । यहै^{२५} वचन जो कछु सत^{२६} सोई ॥
 कै विस्तार पार को पावै । कयनी^{२७} औरै^{२८} और न करावै^{२९} ॥
 जो रसना सत^{३०} होहि^{३१} कथैया^{३२} । जिह^{३३} लीं कर सब होहि लिखैया ॥
 भुइ^{३४} अकास कागज^{३५} सब होई । सरवर औ सागर मसि^{३६} सोई ॥
 लेखनि^{३७} सब^{३८} तरुवर तन^{३९} डारा । तोड^{४०} सो^{४१} लिखि न जाइ विस्तारा ॥
 जो कहियै तासो उपराई^{४२} । अस्तुत को निदान कछु नाही ॥
 यहै^{४३} निदान जो^{४४} नांहि^{४५} निदानू । सो प्रभु अनगिनत कीन्ह^{४६} विधानू^{४७} ॥

दोहा—निरगुन औ सर्गुण^{४८} गुनी^{४९}, अवरन औ बहु भेस ।

एक अनेक जो होइ रहा, ताहि^{५०} करी आदेश ॥११॥

दोहा—१०-१—ताकत (स०) । २—विधी (स०) । ३—मत (स०) । * यह चौपाई केवल मुनि काति सागर जी की प्रति मे है । ४—किहि (कां०) । ५—कहि (कां०) । ६—तिहि (कां०) । ७—खोजै (कां०) । ८—लिख (स०) । ९—हूँ (कां०) । १०—तन (स०) । ११—ऊ (स०) । १२—बोहु गजिन गडावेहु गाढे (कां०) । १३—कढ़ि (कां०) । १४—तानह तिनहि (स०) । १५—गहि (कां०) । १६—वात (स०) । १७—देहै (कां०) । १८—देखाई (स०) । १९—सौ (कां०) ।

दोहा—११-१—ता (कां०) । २—की (कां०) । ३—कत (स०) । ४—कह (स०) । ५—अत (स०) । ६—येही (कां०) । ७—सब (स०) । ८—कीन्ह (कां०) । ९—और (कां०) । १०—करि आवै (कां०) । ११—सब (स०) । १२—होतिहि (कां०) । १३—कथा (कां०) । १४—जिहि ती गुरु सत होतिहि लपा (कां०) । १५—भुम्भ (कां०) । १६—कागर (स०) । १७—मिस सागर (कां०) । १८—लषन (कां०) । १९—शत (कां०) । २०—तिन (कां०) । २१—ती (कां०) । २२—सु (कां०) । २३—सोपराही (स०) । २४—ऐहि (स०) । २५—जु (कां०) । २६—नाथ (स०) । २७—गिनइ (कां०) । २८—निदानू (कां०) । २९—सब गुन (स०) । ३०—गुणी (कां०) । ३१—ताकी (कां०) ।

अब गुन कथन मत कै करीं । जिन्ह कै प्रेम प्रताप मिस्तरौं ॥*
 जवते प्रवट मोहि निसितारे । उन एते केतै निस्तारे ॥*
 प्रथम निरमल वह जोति उपाई । तिन्ह कै प्रीत सब सिष्टि बनाई ॥*
 रसन एक अस्तुति बहु भेखा । लिखै सो को नाहि कछु लेखा ॥*
 जाके प्रेम हिय यह मदमांते । ताकै प्रीत प्रथमै रंगराते ॥*
 हीं बलहार नांव कै जाअी । जिन्ह प्रताप प्रभु दरसन पाअी ॥*
 अीं उन्ह प्रेम विन मुक्ति न होई । जिन भूली भटको मत कोई ॥*
 अतम सब कल मांह सो जानहु । यहै वचन सत्य कै मानहु ॥*
 निस वासर रावर जस कही । कंवल चरन मन करतै कही ॥*

दोहा—तीन लोक नौ खंड महं, ऐसो और न कोइ ।

आतम आदि तै अंत लग, भयो न कोऊ होइ ॥१२॥*

बादशाह वर्णन

साह जहां सुलतान चकत्ता । भानु समान राज एकछत्ता ॥
 दिहली उवा^१ सुरज^२ उजियारा । चहुँ और जस किरन पसारा ॥
 राजन्ह के मुख रहा न पानो । मनो^३ बेलि रवि तेज भुरानी^४ ॥
 हुते^५ जु^६ गढ^७ मेर ज्यों ठाढे^८ । गारि^९ नवाइ^{१०} नीर कै^{११} काढे ॥
 कियै नमान^{१२} सब अभिमानी । मान छोड़^{१३} अब^{१४} करहि^{१५} किसानी ॥
 सीस नवाइ रहा जो वाचा । जो उकसा सो काल मुख खांचा ॥
 रहा न कतहुँ जुद्ध^{१६} कर^{१७} मानू । अस दिढ होइ बैठा सुलतानू ॥
 छत्री छत्रधार जो कहाए । ते जुहार को^{१८} वार^{१९} न पाए ॥
 खंड खंड कै राजा राऊ । ठाढे रहत जोरें कर पाऊ ॥

दोहा—जे राजा तरवार वर^{२०} कटक देत है^{२१} टार^{२२} ।

तोरि तोरि तरवार तिन्ह^{२३} फार^{२४} गढाए^{२५} कार ॥१३॥

दोहा—१३—१—हुवा (कां०) । २—सूर्य (कां०) । ३—मान (स०) । ४—
 भुरानी (स०) । ५—होते (स०) । ६—जो (स०) । ७—घर (स०) । ८—वाड़े (स०)
 । ९—कार (स०), गार (कां) । पर शुद्ध पाठ 'गारि' है । गारना = दवाकर निचोड़ना ।
 मेरु के सदृश दुर्गों को भुका कर उनहें कडका पानी निचोड़ कर वहा दिया । १०—
 लुदाय (कां०) । ११—कड़ (कां०) । १२—अपमान (कां०) । १३—छरी (कां०) ।
 १४—अति (कां०) । १५—करै (कां०) । १६—जड (कां०) । १७—करि (कां०) ।
 १८—कहि (कां०) । १९—पार (स०) । २०—बलि (कां०) । २१—ही (कां०) । २२—
 तार (स०) । २३—वह (कां०) । २४—भार (स०) । २५—गढाई (कां०) ।

* ये चौपाइयाँ और दोहा श्री मुनि कांतिसागर जी की प्रति में नहीं हैं ।

साज काज करै चड़ाई । महि मंडल' हय' मय होइ जाई ॥
 चलहि' गयंद ठाठ चहुं ओरा । मेघन अनी' कीन्ह मनु' जोरा ॥
 अनगिन सैन न वार न पारु । महि'पहुं' सहि' न जाइ सो भारु ॥
 कांपै धरनि मेरु घस जाई । कमठहि आन वनै कठिनाई ॥
 वासुकि डुलै' होइ कलमली । परै पताल लोक खलवली ॥
 परवत चूर चूर होइ जाही । असल मसल होइ धूर उडाही' ॥
 इंद्र लोक पहुँचै' सो धूरी । अंधकार उपजै तिहि' पूरी ॥
 सूरज प्रकास न देखे देखाई । वासर अछन रैन होइ जाई ॥
 वन'पंड' टूटि खेह मिलि जाहीं । सरवर सागर सलिल' सुखाही ॥
 दोहा—प्रगलै ऊज्जल जल पिवै', पिछलै रवदर'छानि' ।

ता' पिछलै चोवा खनै, तव पावहि' ते पानि ॥१४॥

न्याउ नीत जो पुरानन गाई' । सो प्रियमीपति कै देखराई' ॥
 गऊ सिध एक घाट पियाए' । राव रंक सर कै' देखराए' ॥
 रहा न जग अभीत' कर' चीन्हा । वध नी वैर अजा' मुत लीन्हा ॥
 नीर खीर सों होइ निरारा । कठै नियाई' वार' कै खारा' ॥
 पुत्र' अवीत करै जो काऊ । शील' न राखै करै नियाऊ ॥
 देस देस कै पतियाँ आवै' । सो नीके' निन वांचि मुनावै' ॥
 सुना' अनीति कीन्ह जो काहूँ । वांचि मंगार्व वाह' पिछाहूँ' ॥
 बुद्ध वार कहूँ यह ठहराई । बैठै' साह आप' होइ न्याई' ॥
 जिन्ह' जाकों जैसो दुखहोई । विनवै जाइ न वरजै कोई ॥

दोहा—ज्यो तन के सुधि जिउ धरै, त्यों जग कै सुधि ताहि ।

चाटी दुखी जो' पाव' तर, सोउ' सुनै सो' साहि ॥१५॥

दोहा—१४—१—मदिल (स०) । २—है मई (का०) । ३—चलहं (स०) । ४—
 उनै (स०) । ५—जनु (का०) । ६—पहि, (का०) । ७—सह (स०) । ८—दवै
 (स०) । ९—मिलाही (स०) । १०—तिन्ह (स०) । ११—वंखट्टु (स०) । १२—सलल
 (स०) । १३—पिवन्ह (स०) । १४—रवद (स०) । १५—रिभान (स०) । १६—
 पिछले जब चोका पुने (का०) । १७—पावै (का०) ।

दोहा—१५—१—गाए (स०) । २—देखराए (स०) । ३—पियाई (का०) । ४—
 कर (का०) । ५—दिपराई (का०) । ६—अनीत (का०) । ७—करि (का०) । ८—
 अज्या (का०) । ९—तपाइ (का०) । १०—वारि (का०) । ११—घारा (का०) । १२—
 गुतर । (स०) । १३—शील रापय (का०) । १४—आवहं (स०) । १५—नेगी (का०) ।
 १६—मुनावई' (स०) । १७—सुनत (का०) (का०) । १८—वाँहि (का०) । १९—पछाहूँ
 (का०) । २०—बैठि (का०) । २१—अव (का०) । २२—नियाई (का०) । २३—
 जिसि (का०) । २४—जु (का०) । २५—पाइ (स०) । २६—सोउ (स०) । २७—
 सिर (का०) ।

धरमराज परजा सुख पावा । देस देस सब सुव्रम बसावा ॥
 सुख सों करै किसान किसानी । बौड़ सो वांट देइ राजधानी ॥
 राज अंस सो बाढ़ न लीजै । परजहि^३ अघ वचै सों कीजै ॥
 परजा घर आनंद बधाई । भूखा एक^४ न सब अघाई ॥
 अपने भाग दुखी जो कोई । तार्कै सुधि संभार पुनि होई ॥
 वरध^५ बीज भख^६ सब तिन्ह^७ दीजै । जब तार्कै उपजै तब लीजै ॥
 निरभै वनिज करै व्यापारी । लावन साज रहे मग डारी ॥
 चोर जगत महं दिष्टि न आए । जिन चोरीं सब चोर चोराए ॥
 राज नीति सब कहं सुख दाई । जग सुख सो उद्यम^८ करि^९ खाई ॥

दोहा—देखि जगत सबही^{१०} सुखी, सुखहू पायो सुख ॥

दुख अति^{११} सुख सों^{१२} दुखी होइ, समुंद पार^{१३} गयो दुख ॥१६॥

दाता कहियत एकै सोई । ता सरवर^१ कहि और न कोई ॥
 एक वार तिहि^२ सों जिन मांगा । पुनि^३ भर^४ जनम न काहू खांगा ॥
 जे मंगप टूकन^५ कै मांगा । तिन घन भरहि^६ रतन कै मांगा ॥*
 जे^७ मंगत घन घर^८ घर डोलै । सो दर पग न^९ घरै विन डोलै ॥
 जे मंगत चीरन्ह कै जोरा^{१०} । तिन्ह^{११} कै कनक चीर कै जोरा ॥
 जे^{१२} मंगत^{१३} चने^{१४}* कर चूनू । खाहि सो मुक्त^{१५} चिनी^{१६} कर चूनू ॥
 लीन्ह^{१७} जो सदावरत कै दाना । दीन्ह^{१८} अघ^{१९} सदावरत कर दाना ॥
 असेप^{२०} मान दान जग दीन्हा । मंगत जन दाता सब कीन्हा ॥
 जिन दानन^{२१} हातिम जग जाना । दीन्ह साह मंगन^{२२} ते दाना ॥

दोहा—साहजहां दातार उर, घरै पतार दुराइ ।

दधि मुक्ता तऊ^{२३} ना वचै देइ^{२४} कढाइ लुटाइ ॥१७॥

दोहा—१६—१—हन (स०) । २—परजन (स०) । ३—त्यों (कां०) ।
 ५—वरद (स०) । ६—भूख (कां०) । ७—तिहि (कां०) । ८—उद्यम (स०) ।
 ९—कर (स०) । १०—सब मुख (कां०) । ११—तार्कै (कां०) । १२—दुखी दुखी
 (कां०) । १३—दिख न सका तिहि दुख (कां०) ।

दोहा—१७—१—सर बढ (स०) । २—सर (स०) । ३—तिन (कां०) ।
 ४—फिर (कां०) । ५—लोकन (कां०) । ६—फिरहि रतनग (स०) । ७—फिरि भ्रांतनि
 लगि (कां०) जा (स०) । ८—दर दर (कां०) । ९—हरै (कां०) । १०—चोरा (स०) ।
 ११—तिहि (कां०) । १२—जिन्हन (स०) । १३—मिलत (स०) । १४—चूनी
 (कां०) । १५—मुक्त (कां०) । १६—चूनी (कां०) । १७—लेहि (कां०) । १८—
 देहि (कां०) । १९—जु (कां०) । २०—अघ तक (स०) । २१—दातन (कां०) ।
 २२—मंगत (कां०) । २३—नै संचै तौ (कां०) । २४—दिए (कां०) ।

* जो मंगले टुकड़ा मांगते थे उनकी स्त्रियाँ रत्नों से मांग भरने लगीं ।

श्रव गुरु देव केर गुन गाऊं । रंग विहारी^१ जिन कर नाऊं ॥
 श्री वरना सी कथा उज्यारी । जग^२ जानए ज्यों रंग विहारी ॥
 आदि नगर लहोर जिन्ह^३ नाऊं । जनम भूमि उन्हकै^४ तिन्ह^५ ठाऊं ॥
 छत्री^६ ककर जात कहाई । भय्या चारहु^७ भल देसाई ॥
 पहलै कहियत नांव बहोरा^८ । कसन बहोरे^९ नांव बहोरा^{१०} ॥
 थोरी वैस बहुत मति धरै । सिद्ध साधु कै सेवा करै ॥
 दयावंत^{११} दुखी पर दुखी । देगि न सकै अतोधिहि^{१२} भूखी ॥
 धरमी धरम पंथ पग धारै । कथा आरता गुने^{१३} विचारै ॥
 रहै पवित्र भजन सों कामू^{१४} । नुमिरन करै सदा हरिनामू^{१५} ॥

दोहा—साधु सिद्ध^{१६} संगत करै, साधुन सों व्यवहार ।
 सुन^{१७} न नकहि समूझा चहै, आत्म रूप विचार ॥१८॥

नित प्रति प्रात उठै जस^१ भानू । जाइ सजित^२(सरित)जल करहि^३दानानू ॥
 बालक तहां सरौ पुनि खेलै । लिपटै^४ भिड़ै^५ दंड मिलि पेने ॥
 तिन्ह^६ कौतुक छिन मन बहरावहि^७ । नित प्रति तहें देवल जो^८ आवहि^९ ॥
 देवल पाइ बालक सुख पावै । अधिकी कौतुक कर दिखरावै ॥
 एक दिन देखत हुतै तगाभा । सिद्ध एक आवा उन^{१०} पाता ॥
 अद्भुत भेख बरै अविगती^{११} । सूफी^{१२} श्री न सेवटा जती ॥
 सन्यासी पुनि कहा न जाई । ब्रह्मचर्य^{१३} गति जाइ न पाई ॥
 जंगम कहा न जाइ न जोगी । खट दरसन सों^{१४} भेख वियोगी ॥
 माथै^{१५} तिलक हाथ जपमाला । सीगी गरै^{१६} कांध^{१७} मृगछाला ॥
 मन कै सुरति पीउ सों लागी । अम मिटि गयो संका सब भागी ॥

दोहा—पलक न लागै आंखिन^{१८}, माखी निकट न जाइ ।

श्री^{१९} न अंग परिछाहीऊ, अवर भूमि^{२०} सो पाई ॥१९॥

दोहा—१८—१—रंगभरी (स०) । २—जानै (का०) । ३—जिहि (का०) ।
 ४—तिनकी (का०) । ५—तिन्ह (का०) । ६—छतरी (स०) । ७—चारि पुनि (का०) ।
 ८—विहोरा (का०) । ९—विहोरे (का०) । १०—विहोरा (का०) । ११—सभा की
 प्रति मे यह अंश त्रुटित है । १२—आत्मा (का०) । १३—सोहं (स०) । १४—साधु
 (स०) । १५—सुनहि शिष्य विद्याचर है (का०) ।

दोहा—१९—१—जव (स०) । २—सलिल (का०) । ३—करैहि (का०) ।
 ४—लिपटहं (स०) । ५—फिरहं (स०) । ६—तिहि (का०) । ७—भरमावहं (स०) ।
 ८—काति सागर जी की प्रति में वह शब्द नहीं है । ९—जू आवहि (स०) । १०—
 अन्यासा (स०) । ११—अवगती (का०) । १२—सोपहि और न सेव राजतै (स०) ।
 १३—ब्रह्मचरण (स०) । १४—सुन (स०) । १५—माथन (स०) । १६—करै
 (स०) । १७—कांध (स०) । १८—आंख न (स०) । १९—माखै (स०) । २०—श्री
 न अंग पउ छाही (का०) । २१—भुई (स०) । * चैना = एक प्रकार का निकृष्ट दान्य ।

इन वह पुरुख दिष्टि महं आना । देखत सिद्ध पुरुख पहचाना ॥
 सिद्ध पुरुख इन्ह तन पुनि पेखा । भई परस्पर देखी देखा ॥
 तब इन देवल गोद सो काढी । हिय मै पीत दरसन तें बाढी ॥
 हंस कै पुरुख हाथ गहु लीन्ही । लै रंचक अपनै मुख दीनी ॥
 कर जो रहे इनके मुख डारे । डारत बुद्धि किवार उघारे ॥
 कै चेला चल भय गुरु आगे । ए गुरु के पीछे उठ लागे ॥
 एक वचन पूछा तिहि ठाऊं । कही गुरु तुम आपन नाऊं ॥
 कहा अचित नाम सुन मोरा । रंग बिहारी राखौ तोरा ॥
 कहि सुबचन पुनि दिष्टि न आवा । पुरुख जहां कर तहां समावा ॥

दोहा—उनही घरी कृपा भई, दया कीन्ह गुरु देव ।

आतम रूप लखा प्रगट रहा न अंतर भेव ॥२०॥

ततखन और दसा होइ गई । जीवत मुक्ति परापत भई ॥
 सो अंजन नैनन गुरु दीन्हा । जासों अलख निरंजन चीन्हा ॥
 प्रगट असूक्त रूप निज सूक्ता । बूक्ता चहिय मरम सो बूक्ता ॥
 हुती जो रजु विषधर कै मानी । सो अव निज रुचि कै रजु जानी ॥
 मिटा भरम भय निरभय भयऊ । हुता जो जीव सीव होइ गयऊ ॥
 कै घिउ महेव गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुत जेवरि टूटो ॥
 तन मिरतग सो रहा न नाता । अमर आत्मा सो मन राता ॥
 दिष्टि दरब भूठा कै जाना । आतम अविनासी पहचाना ॥
 हुता जो और और मति खेला । गुरु भा छिनक एक महं चेला ॥

दोहा—माया मही मिलाप स्यौ, धिव जु भएउ दधि जीव ।

सतगुरु फेरि मथानि मन, काढि दिखायो घीव ॥२१॥

दोहा—२०—१—मै (कां०) । २—उन (कां०) । ३—द्योल (स०) । ४—तैं (कां०) । ५—काढ़े (कां०) । ६—ते ताके सनमुख भये ठाढ़े (कां०) । ७—फल (कां०) । ८—लीन्हे (कां०) । ९—दीन्हे (कां०) । १०—रहि (स०) । ११—डारी (स०) । १२—बिरह कुवार ओखारी (स०) । १३—भागु (कां०) । १४—पाछे (कां०) । १५—उठि (कां०) । १६—बूक्ता वचन जो अज्ञा पामों (स०) । १७—कहो कही (स०) । १८—कहसि (स०) । १९—वचन (त०) । २०—वही (कां०) । २१—घड़ी (कां०) । २२—करी (कां०) । २३—उत्तम (स०) । २४—प्रघट (स०) ।

दोहा—२१—१—चितवत (स०) । २—प्रापत (कां०) । ३—वावचन (कां०) । ४—हुती सुरुचि (कां०) । ५—पातै (कां०) । ६—अति निज रुचि की रुचि जातै (कां०) । ७—सेव (कां०), सोइ (स०) । ८—कहा और मोह (स०) । ९—हित (स०) । (कां०) । १०—मरतक (स०) । ११—करि (कां०) । १२—मोहि (कां०) । १३—सी (कां०) । १४—मुनि कांति सागर जी की प्रति में नही है । १५—संकर (स०) । १६—देखा (स०) । मही = मठा, छांछ । जेवरि = रस्सी ।

जागति कला भई जग जानी । रंग विहारी सिद्ध बखानी ॥
 वचन^१ सिद्ध जो कहै सों होई । अविचल वचन न विचलै कोई ॥
 जासों कृपा दिष्टि सी^२ हेरै । अमर करहि^३ तिन्ह^४ मरन निवेरै^५ ॥
 जिन केतक^६ भूले समुझाए । केइयक^७ पंथी^८ पंथ लगाए ॥
 तिन्ह^९ के सरन जाइ जिन लीन्हा । जान ध्यान पदवी तिन्ह^{१०} दीन्हा ॥
 जद्यपि^{११} आप पै आप समानां । सिमिट^{१२} जोति मिलि प्रगटिहिराना ॥
 पै गुरु^{१३} जप तिन्ह की जो वानी । बीज मंत्र ठहराइ बखानी ॥
 सो सुनि संत^{१४} पंथ में आवै । जो आवै सो अमर पद पावै ॥
 पंथ प्रतापवंत उजियारा । जिन्ह नै गहा सो रहा न वारा* ॥

दोहा—गुरु अचित को पंथ जग, बहु जल तरनी नाव ।

पहुंचन हार जो पार को, सो राखै तहं पाव ॥२२॥

तिन्ह कै सिख कायथ भटनागर । स्याम दयाल ज्ञान गुन सागर ॥*
 गोद हते जब बाल अयाने । तवही सों दिच्छा महं आने ॥
 माथे हाथ धरा गुरु देवा । कै अति^१ कृपा लगाई सेवा ॥
 आयसु भा^२ एहि^३ सिक्ख हमारा । होइ^४ है भगत^५ जगत उजियारा ॥
 ते अव महापुरुष विज्ञानी । मुख ऊचरै^६ ज्ञान निधि^७ वानी ॥
 जिन्ह^८ को नाम^९ लिएं दुख जाही^{१०} । दरसन^{११} किएं तजि पाप पराही ॥
 पा^{१२} परसै सन्देह न कोई । निसचै ज्ञान परापत होई ॥
 जो काहू गुरु^{१३} सवद सुनावै^{१४} । ताहि^{१५} तेहि^{१६} छिन अलख लखावै^{१७} ॥
 मोहि तिन्हहि^{१८} यह^{१९} पंथ लगावा । कृपा कीन्ह गुरु^{२०} जाप सिखावा^{२१} ॥

दोहा—भूले भटके^{२२} बांह गहि, मारग दियो लगाइ ।

लोहा कंचन कै लियो, पारस पग परसाइ ॥२३॥

दोहा—२२-१—सिद्ध वचन (स०) । २—कर (स०) । ३—करन्हं (स०) ।
 ४—तिहि (का०) । ५—निवेरहं (स०) । ६—एक (का०) । ७—कए (स०) ।
 ८—कृपंथी (स०) । ९—तिनको (का०) । १०—तिहि (का०) । ११—अव जद्यपि
 ते आप समानै (स०) । १२—सुमति जोत मिल आप हिरानै (स०) । १३—ले गुरु
 जपतीं तिह की वानी (का०) । १४—सृष्टि (का०) । *यह चौपाई और दोहा का० प्रति में
 नहीं है । *इस चौपाई के पश्चात् का० प्रति में निम्नलिखित दोहा और चौपाई और है—

दोहरा—स्यामदियाल लघुवेस मै, पायी गुरु पसाव ।

वचन सुनत गुरुदेव के, भयो सुद्धता भाव ॥

चौपाई—जन्म भयो तिन्ह कौ जब जानी । तवही ते गुन रूप सुजानी ॥

दोहा—२३-१—निज (का०) । २—भया (स०) । ३—इह (का०) । ४—हूँ है
 (का०) । ५—भक्ति (का०) । ६—उच्चारै (स०) । ७—बुध (का०) । ८—जिहि
 (का०) । ९—नाव (का०) । १०—जाई (का०) । ११—पापहिं के पर पाप हिराई
 (का०) । १२—पाप नसै (का०) । १३—कर (स०) । १४—सुनावन्ह (स०) । १५—
 ती (का०) । १६—तिन्है (का०) । १७—लखावन्ह (स०) । १८—तवही (का०) ।
 १९—इह (का०) । २०—कर जाप (स०) । २१—सुनावा (का०) । २२—तिन्ह
 की (का०) ।

सूरदास निज नाउं वताऊं । गोरधनदास पिता कर नाऊं ॥
 कंबू^१ गोत माछिर्ल^२ तासू । कलानूर^३ पुरखन कर वासू ॥
 तात^४ हमार^५ तहां सों आवा । पूरव दिसा कोऊ^६ दिन छावा ॥
 नगर लखनऊ वड़ा^७ सो^८ थानू । रुचिर^९ ठौर वैकुण्ठ समानू ॥
 मेरो जनम यहै^{१०} ठां भयऊ । कलानूर^{११} कवहूँ^{१२} नहि गयऊं ॥
 जद्यपि हीं अबहूँ परदेसा । पै नित प्रति मुमिरां मो देसा ॥
 जैसै पंथी वसै सराई । महूँ विदेस रहीं^{१३} तिन्ह^{१४} नाई^{१५} ॥
 आदि ठौर विसरा^{१६} मै^{१७} नाहीं । सांई सदा रहै मन माहीं ॥
 मुमिरन करीं नाम हर स्वासा । मग जो विवि पुरवै सो आसा ॥

दोहा—विन निज दया दयाल कै, देस न पहुंचा जाय ।

जव लग सांई बांह गहि, लेइ न देइ पहुंचाय ॥२४॥

एक दिवम^१ मोरे मन आई । भारत पढै लाग चित लाई ॥
 तेहिके^२ परव पढ़त जव आवा । नल की कथा खोंच हिय लावा ॥
 मुना जो नर नारी कर पेमू^३ । विसरा^४ देह गेह^५ कृत नेमू^६ ॥
 मुनि^७ मन डार पात^८ फन^९ आवा । विरह^८ वृक्ष इन्हन^९ जनु लावा ॥
 विकल भयी तन छूट कचाई^{१०} । विखधर डसै लहर जनु आई ॥
 मन मोरै तन कै मुख खोई । नींद जाइ अन्त^{११} पर सोई ॥
 तृखा मिरान न मार्ग नीरा । भूख अवाइ बैठ होइ तीरा ॥
 पावक पुंज भयो तन मोरा । पेम^{१२} पौन घर घर भकभोरा ॥
जिन्ह^{१३} कै पेम कथा म^{१४} जारा । वन ते^{१५} जिन्ह भेली सो भारा ॥

दोहा—कथा अगिन होइ^{१६} हिय परी, वर^{१७} रुई ज्यों देह ।

जो जल नैन न डारते^{१८}, भई हुती^{१९} जरि खेह ॥२५॥

दोहा २४-१—केवोह (कां०) । २—माछलू (कां०) । ३—कलानीर (कां०) ।
 ४—पिता (कां०) । ५—हमारो (सं०) । ६—कोऊ (सं०) । ७—वड़ा (कां०) ।
 ८—अस्थानू (कां०) । ९—अक्षर (कां०) । १०—तिहूँ (कां०) । ११—कलानीर
 (कां०) । १२—कवहूँ (सं०) । १३—वसूँ (कां०) । १४—तिह (कां०) । १५—
 माहीं (कां०) । १६—विसरन (सं०) । १७—मोहि (सं०) ।

दोहा २५-१—दयाम (कां०) । २—नेह को (सं०) । ३—विसरी (कां०) ।
 ४—कार हिय कृत (सं०) । ५—मुन (सं०) । ६—वात (सं०) । ७—डुल (सं०) ।
 ८—वृक्षक (सं०) । ९—भूईं जानो (कां०) । १०—कपटाई (सं०) । ११—उतहीं
 (कां०) । १२—प्रेम पवन (कां०) । १३—जिहि की (कां०) । १४—हीं (कां०) ।
 १५—तेहि जिहि सहै सुभारा (कां०) । १६—हो (कां०) । १७—परी ईं जों देह
 (कां०) । १८—धारते (कां०) । १९—भेड होइ (सं०) ।

प्रेम^१ वैन मन मैं पुनि आई । दबी अगिनि यह दियो^२ जगाई ॥
 पेम^३ उसास पान^४ सो वारुं । बार विरह वाती^५ घृत डारुं ॥
 प्रगट^६ करुं ज्वाला जग जानै । जो प्रेमी^७ सुनि कै सुख मानै ॥
 पेम वीज लै पीव लगाऊं । रकत सीच फुलवारि बनाऊं ॥
 अनवन^८ वरन पुहुप उपजाऊं । अलि पेमी^९ जन तिन्हिहि^{१०} रिभाऊं ॥
 एहि^{११} विधि^{१२} पेम खान^{१३} हिय^{१४} खोलूं । अविध^{१५} अमोल बोल नग तोलूं ॥
 विरह वेद बानी मुख आनूं । सानि प्रेम सों पेम बखानूं ॥*
 औ^{१६} उर^{१७} भाठी मद^{१८} पेम चूआऊं । नल कै कथा नु नल कै लाऊं ॥
 ऐसो पेम मयी मधु ढारो^{१९} । जासीं दिया^{२०} पेम मग वारो ॥
 जा तन लागि जान परि सोई । अन जानत कों दुख न होई ॥०
 जिन्हकै वात चाव उपजावै । जो सन कहै सो उन कहि होइ जावै ॥

दोहा—पेमी पीउनहार^{२३} जे, चाखत खिन छकि जांहि ।
 एक पियाला फिरि^{२४} पिवै, दूमर^{२५} देहि उंचाहि ॥२६॥

एक संहस सतसठ सन अहा । संवत सतरह सै चौदहा ॥
 कै अरंभ तव कथा बखानी । कीन्ही^१ प्रगट पेम निधि^२ बानी ॥
 नल दामन^३ का^४ पेम बखाना । भया^५ मिलाप सोयंवर ठाना ॥
 कलजुग नल सों जुवा खेलावा । धन हराइ^६ वनवास देवावा ॥
 औ वन मै विछुरे नर नारी । पुनि मिलाप ह्वै भए एक ठारी ॥
 जुवा खेल जीता पुनि राजू । आइ जुरा सब वहै समाजू ॥
 भारथ मै जो कथा बखानी । आदि अंत बानी महं आनी ॥
 वात वात मै^७ जुगति बनाई । कथा पुरान मय^८ कै^९ दिखराई ॥
 बहुत ठौर निज अरथ दुरावा । सब^{१०} काहू पै^{११} जाइ न पावा ॥

दोहा—बहुत लोग बोहित चढे, दवि^{१२} पर आवै जांहि ।

मुक्ता^{१३} पावै मरजिया, धसि^{१४} खोजै ता मांहि ॥२७॥

दोहा २६-१—वैस (कां०) । २—घोंहं (कां०) । ३—प्रेम (कां०) । ४—
 पवन (कां०) । ५—पानी (कां०) । ६—प्रघट (स०) । ७—जो अलाव (स०) । ८—
 पेमै सिक (स०) । ९—आनी (स०) । १०—प्रेमी (कां०) । ११—तिहि (कां०) ।
 १२—इहि (कां०) । १३—मिस (कां०) । १४—कथा (कां०) । १५—जिय
 (कां०) । १६—अवध (स०) । १७—बोलू (स०) । १८—ऊ (कां०) । १९—उर
 (स० की प्रति में नहीं है) । २०—मधि (कां०) । २१—घारों (कां०) । २२—दया
 (स०) । २३—पीवनहार (कां०) । २४—भर (कां०) । २५—दोऊ बहुरि अमदाहि
 (स०) ।

दो० २७—१—केथी (कां०) । २—धुनि (कां०) । ३—दामनि (कां०) ।
 ४—करि (कां०) । ५—भयो (कां०) । ६—हेराइ (स०) । ७—महं (स०) ।
 ८—जी (स०) । ९—की (स०) । १०—जा (कां०) । ११—पर (कां०) । १२—
 वध पुरानोहि जान्ह (स०) । १३—मुक्त सो पावइ मरजिया (स०) । १४—जो घस
 (कां०) ।

कै आरंभ कथा अब गाऊं^१ । जैसे^२ सुनी^३ वरनि सुनाऊं ॥
 कहत^४ कि अहा छतरपति राजा । ऊंचे^५ पाट^६ राज जिहि^७ छाजा^८ ॥
 राजा नल प्रगटेउ जग नाऊं^९ । नगर उजैन राज कर ठाऊं^{१०} ॥
 तिहि^{१०} मंडल तस और न कोई । छतर पाट^{११} पति^{१२} एकी सोई^{१३} ॥
 राना राव सीस सब नावै । वचन मानकर सीस चढावै ॥
 जे वड^{१४} पापी डरन्ह भुराहीं । परजहि^{१५} करै हथेरहि^{१६} छाहीं ॥
 सूर समान तेज जग माना^{१७} । उपना^{१८} सीतल^{१९} इंदु^{२०} समाना ॥
 सांचा सांत रूप रस वारै^{२१} । राज करै सत धरम विचारै ॥
 धरम विचार न छाड़ै काऊ । राखत^{२२} धरम सीस किन जाऊ ॥

दोहा—वडो^{२३} धरम निधि राजा, पंडित सब गुन पूर ।

तेज दया कर सर वर^{२४} खज्ज^{२५} दान मति सूर ॥२८॥

श्री^१ अति रूपवंत उजियारा । मानी काम लीन्ह अवतारा ॥
 जिन्ह^२ मुख रूप कहै^३ तिहि^४ नीका । नल मुख रूप रूपमुख फीका^५ ॥
 करै न कोउ^६ रूप सरि तातै^७ । घट^८ जनु घट लिखि दीन्ह विधातै ॥
 सूर क्रांति वरनी^९ मुख जोती । पै^{१०} सूरह मुख जोति न ओती^{११} ॥
 नैनहि^{१२} जोति जरै रवि देखै । सीतल होहि^{१३} हेम^{१४} तव पेखै ॥
 सूरह देखि लोभाइ न कोई । इन्ह^{१५} देखै सो दरसन^{१६} होई ॥*
 जो गति^{१७} नैनन की रवि ताकै^{१८} । सो गति^{१९} छिन^{२०} ताकै^{२१} मुख याकै^{२२} ॥
 पुरुष नारि जाके^{२३} चित परा । फिरि भरि^{२४} जनम न चित सों टरा ॥
 ब्रह्म रूप जग हीय^{२५} समाना । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ॥

दोहा—जे^{२६} रजवारै अन वरै, सुनि^{२७} सोभा वैराग ॥

अनल वरन नल वरन लग, वरन लगै^{२८} होइ^{२९} आग ॥२९॥

दो० २८—१—कानू (स०) । २—जैसे सुनि (स०) । ३—सुवर्ण (कां०) ।

४—कह्या कि (कां०) । ५—पात (स०) । ६—जिन्ह (स०) । ७—भाहा (स०) ।

* यह चौपाई कां० प्रति में नहीं है । ⊙ यह चौपाई स० प्रति में नहीं है ।

८—जानो (कां०) । ९—थानो (कां०) । १०—तिन्ह (स०) । ११—पति (स०) । १२—तव (कां०) । १३—होई (कां०) । १४—जे वरयातै दुरन्ह घडाही (स०) । १५—परजै (कां०) । १६—हथेर पुनि (कां०) । १७—जाना (कां०) । १८—उपमा (स०) । १९—सिथल (कां०) । २०—मंद (स०) । २१—मारै (स०) । २२—राखव (स०) । २३—बुद्धि (कां०) । २४—वर सवर (स०) । २५—दान खरग (स०) ।

दो० २९—१—ऊ (स०) । २—जिहि (कां०) । ३—कीन्ह (कां०) । ४—तिहि (कां०) । ५—तीखा (स०) । ६—कोई (स०) । ७—वातै (स०) । ८—खट जिन खट (स०) । ९—वरनै (स०) । १०—सर (कां०) । ११—ऊती (स०) । १२—तनही (कां०) । १३—होन्ह भसमपति (स०) । १४—तिहि (कां०) । १५—दरसी (कां०) । १६—राति (स०) । १७—देखै (स०) । १८—गत (स०) । १९—इन (कां०) । २०—याकै (कां०) । २१—ताकै (कां०) । * यह चौपाई कां० प्रति में आठवीं है । २२—ताकै (कां०) । २३—फिर (स०) । २४—हीये (कां०) । २५—जे उजियारी सुनि अमृत (कां०) । २६—विन सोभा वैराग (कां०) । २७—लगी (कां०) । २८—हूँ (कां०) । §§ हेम = हिम, वरफ, पदमावत २।१

पेमी पेम पंथ पग राखै । जव तव पेम वचन मुख^१ भाखै ॥
 पेम दिया देखै जिहि^२ वरा । तहं^३ पतंग होइ चाहै परा^४ ॥
 चलै जो कहूं पेम रस वाता । सुन खिन पीर^५ होइ खिन राता ॥
 लोनी^६ वात जो मन मे आवै । फिर फिर दारंवार कहावै ॥
 सुनि^७ पिछलो पेमिन^८ कै कथा । ताहि^९ मुनै एक होइ अवस्था ॥
 भूरै^{१०} भकै रुदन पुनि करै । विकल होइ तर^{११} भुइं पुनि परै ॥
 विद्यमान पेमी हृइ^{१२} जाई । कथा पेम^{१३} हृइ हिये समाई ॥
 राग रंग सों अधिक^{१४} पियारु । निस दिन गुन चरचा व्योहारु ॥
 एक गुनी आवहि^{१५} एक जाही । एक सेवा^{१६} महं^{१७} रहै सदाही ॥
 ते आतम जिन पेम गुन बूझा । मरै न जी लग अमर न सूझा ॥*

दोहा—पंडित कविता^{१८} वतकहा, कावन^{१९} गुनी अनेक ।

सदा सभा चरचा करै, अक्षर अथ विवेक^{२०} ॥३०॥

एक दिन सभा बैठ हुत^१ राजा । गुनी जनन कै जरै^२ समाजा ॥
 संगति^३ सभा पंडित सब आए । गायन गंधरप बहुत^४ बोलाए ॥
 तेऊ^५ सब सेवा महं^६ जेते । औ नूतम (? नूतन) आए पुनि केते^७ ॥
 सब गुनियै^८ आपन गुन काढा । भइ रस भगन सभा रस वाढा ॥
 तिन्ह^९ महं पेम वात चलि परी । चलि^{१०} कै जाइ रूप पर धरी ॥
 वह कत रूप होइ उजियारी । सोरह^{१२} कला संपूरन नारी ॥
 सबै^{१३} कहा वह रूप विसेपा । सिंगल^{१४} दीप कही^{१५} जिन्ह देखा ॥
 सप्त दीप महं^{१६} और न दूजा । सिंगल^{१७} दीप रूप सरि^{१८} पूजा ॥
 ओहि^{१९} दीप महं^{२०} पदमिनि होई । अंतहि^{२१} अवली सुनी न कोई ॥

दोहा—औ पुनि कछु अंतर नही, रांक राय^{२२} का भूप ।

घर घर अबला पदमिनी, सो पुनि रूप अनूप ॥३१॥

दोहा ३०-१-मन (स०) । २-जिन्ह (स०) । ३-तिहि (कां०) । ४-वरा (स०) । ५-पेर (कां०) । ६-नूतन (कां०) । ७-निस विछलै (स०) । ८-प्रेमहि (कां०) । ९-ताहू पर इक होइ (कां०) । १०-भाखै भवै सदन (स०) । ११-तरफन तन (स०) । १२-रोइ (स०) । १३-जीय मै जाइ (स०) । १४-बहुत (कां०) । १५-आवै (कां०) । १६-सेव (कां०) । १७-मै (कां०) । यह चौपाई कां० प्रति मे नहीं है । १८-गीता नित कथा (कां०) । १९-गाइन (कां०) । २०-अनेक (स०) ।

दोहा० ३१-१-बैठिअत (स०) । २-जुरी (कां०) । ३-संगन (स०) । ४-सबै (कां०) । ५-एतौ (स०) । ६-मै जिते (कां०) । ७-किते (कां०) । ८-गुणीयन (कां०) । ९-तिहि रस (कां०) । १०-चलि पुनि (कां०) । ११-धौं किति (कां०) । १२-सोरहै किरण संपूर्ण (कां०) । १३-सबहि कहा कि (कां०) । १४-संगल (स०) । १५-कहीं (कां०) । १६-मै (कां०) । १७-सकल (स०) । १८-रस (कां०) । १९-उन्हहि (स०) । २०-पदमन जो होइ (कां०) । २१-इतिनी (कां०) । २२-तन (कां०) ।

भाटिन एक अनूप^१ सुहाई । गायन चतुर अपूरख आई ॥
 तिन^२ उठि विनी^३ कीन्ह सिर^४ आगै । बोली वचन पेम रम पागै ॥
 महाराज निसर्च यह वाता । मंठि न जाड वातु^५ निज वाता ॥
 सिंगल दीप होई पदमिनी । और दीप^६ उपजत नहि मुनी ॥
 पै करता जो सिरजन हारा । वाकी^७ गति अनि अपरंपारा ॥
 जो सिरजा चाहै वह^८ साईं । सिरजै मुकता ताल तलाई ॥
 तिन करतार एक पदमिनी । जिन अंगन^९ वरनत^{१०} कवि गुनी ॥
 जंबू दीप माहं उपजाई । सुनी न कहीं^{११} देखि हीं आई ॥
 प्रथम महें^{१२} सुनि सांच न जानी । जब सो छवि^{१३} परग्यी तव मानी ॥

दोहा—विद्यमान अजहूँ सो बहि, कन्या दक्षिण मांहि ।
 वर संजोग पै आजु लीं, और वरै^{१४} पुनि नाहि ॥३२॥

नगर एक कुंडनपुर नाऊं । जगत^१ मांभ^२ उपमा किहि^३ लाऊं ॥
 महाराज मै एही^४ भेखा । जंबू दीप सकल^५ फिरि देखा ॥
 देस देस की^६ गति हीं जानीं । नगर नगर की रूप बखानीं ॥
 पै जस कछु वह नगर सुहावा^७ । दूजा और दिस्टि^८ नहि आवा ॥
 जिह^९ सोभा ब्रैकुंठ बखाना । वही^{१०} नगर एही^{११} उनमाना^{१२} ॥
 रुचिर^{१३} और खनीक^{१४} विसेखी^{१५} । कहै^{१६} न वनत वनै कत देखी ॥
 भीमसेन तिह^{१७} नगर नरेसू । सो राजा वह ताकर देसू ॥
 छत्रधार तिहि^{१८} मंडल सोई । ता^{१९} सरवर कर और न कोई ॥
 ताके घर उपजी सो^{२०} वारी । विधना पदमिनि कै^{२१} औतारी ॥

दोहा—ग्री पुनि ताके जनम कै, कथा कहीं^{२२} विस्तार ।
 सिद्ध^{२३} पुरुष कै वचन सों, भा^{२४} ताकर औतार ॥३३॥

दोहा० ३२—१—सरूप (का०) । २—तिन्ह उथ (स०) । ३—विनू (का०) ।
 ४—सुर (स०) । ५—वातननिजु आता (का०) । ६—देस (स०) । ७—ताकी (का०) ।
 ८—सो (का०) । ९—आग (का०) । १०—वरनै (का०) । ११—कहुँ (स०) ।
 १२—महुं (का०) । १३—आंखिन देखी (का०) । १४—परी विन नाहि (का०) ।

दोहा० ३३—१—जग (स०) । २—अदिष्ट (स०) । ३—किन (स०) । ४—
 तो इन्ह पेखा (स०) । ५—सर्वै (का०) । ६—कै (स०) । ७—अनूपा (स०) ।
 ८—दिपत (स०) । ९—जिन्ह (स०) । १०—वह (का०) । ११—तिन्हहीं (स०) ।
 १२—अनमाना (स०) । १३—उचर (का०) । १४—अनेक (का०) । १५—वसेखी
 (का०) । १६—कहै वन वनै गति विन देखी (का०) । १७—तिन (स०) । १८—
 तिन्ह (स०) । १९—तासर वढ कन्ह (स०) । २०—वह (स०) । २१—की (स०) ।
 २२—वड़ी (का०) । २३—महा (का०) । २४—भया (स०) ।

पद्मिनि चाहि^१ वाढ़ एक करा । कर अंगुरिहि^२ अमृत^२ रस भरा ।
 जो पखार मिरतक मुख घालहि^३ । जी^४ उठि ठाढ़ होइ ततकालहि^५ ॥
 जनु^६ विधि अमी छाप कर डारी^७ । कै न सकै सरि दूसर नारी ॥
 इक पदमिनि उर^८ अंत्रित भरी । धौ^९ किहि^{१०} जोग दर्ई^{११} अवतरी^{१२} ॥
 महाराज मुख जोति निकाई । कहि न जाइ^{१३} देखत बनि आई ॥
 जनु^{१४} असौज पन्यों ससि ऊवा । तासों^{१५} ऊंच कांति कर डूवा^{१६} ॥
 यह अचरज कि^{१७} वह पद्मिनी । महाराज अवलौ नहि सुनी ॥
 पहुंचै कंवल तिहूँ पुर वासा । जग भा^{१८} भौर भवै^{१९} तिहि^{२०} आसा ॥
 सुनि^{२१} सोभा सब जगत लोभाना । धौ^{२२} काके कर चढै निदाना ॥

दोहा—जगत मरजिया पेम दधि^{२३}, मुक्ताहल^{२४} सो तीय ।

धौ^{२५} को पावै लै^{२६} तिरै, को बूई^{२७} दे जीय^{२८} ॥३४॥

सुन धन^१ मुख ससि जोत अंजोरा । राजा कै^२ मन भयो^३ चकोरा ॥
 कंवल वास मधुकर जनु पाई । अरवराइ^४ चाहै उड़ि जाई ॥
 मन तिहि^५ कथा सुनत^६ खिन डोला । गाहक रूप चोंप सों वोला ॥
 कह भाटिन वह नगर सुहावा । तै जग^७ मै जो अदिस्ट बतावा ॥
 कौन रूप वह नगर विसेखा । जो तै अदभुत^८ कांति जग देखा ॥
 कैस^९ ठौर कैसा^{१०} अस्थानू । कर मोसों निज नगर बखानू ॥
 औ^{११} वह भीमसेन जो राजा । कस मनुख्य कस राज समाजा ॥
 ताके घर जु कही तै वारी । रूप सरूप पदमिनी नारी ॥
 ताकी जनम कथा कह कैसै । जस^{१२} तै सुनी वरनि^{१३} निज तैसै ॥

दोहा—चोंप देखि भाटिन चतुर, बोल उठी कुहकाइ ।

अव^{१४} हौ नगर कथा कहौ^{१५}, सुनो^{१६} राज चितलाइ ॥३५॥

दोहा ३४-१—चाह (स०) । २—अंकुरहं (स०) । ३—घाल (स०) ।
 ४—जिन (स०) । ५—ततकाल (स०) । ६—जिन (स०) । ७—वरी (कां०) ।
 ८—ओ (कां०) । ९—धुन (स०) । १०—कन्ह (स०) । ११—देइ (स०) ।
 १२—उतरै (स०) । १३—जात (स०) । १४—जसु (स०) । १५—तामों (स०) ।
 १६—डूवा (कां०) । १७—कै (कां०) । १८—भया (स०) । १९—भुई (स०) ।
 २०—तिन्ह (स०) । २१—सुनि (कां०) । २२—वहं (स०) । २३—दिढ (स०),
 दधि = समुद्र । २४—मुक्ताराइ सो पीव (कां०) । २५—वहं (स०) । २६—तैतरै
 (स०) । २७—डूवे (स०) । २८—जीव (कां०) ।

दोहा ३५-१—धुन (कां०) । २—का (कां०) । ३—भया (स०) । ४—अवर-
 राइ (कां०) । ५—तिन्है (स०) । ६—सुनै कहि (कां०) । ७—जु जगतहि मांझ (कां०)
 ८—साच कहू जिस विधि तै (कां०) । ९—कैसे (स०) । १०—कैस (स०) ।
 ११—औध (कां०) । १२—जिस (कां०) । १३—वर्ण (कां०) । १४—वरनू
 (कां०) । १५—कहू (कां०) । सुन्ह (स०) ।

जो वह नगर नियर^१ कै आई । पुहमि^२ पेम मय देइ^३ दिखाई ॥
 अस कछु वरमवंत अस्थानू । सर्वाहि^४ जाति उपजै हर^५ ध्यानू ॥
 जहां जु सिस्टि दिस्टि में आवै । सोई जनु उपदेश बतावै ॥*
लागे^६ विरिछ नगर चहुं पासा । जानु^७ पेमी जन जगत उदासा ॥
पिय^८ कै पेम गड़े^९ होइ गाढ़े । तिन्ह ही^{१०} व्यान एक पग ठाढे ॥
 ज्यों ज्यों पेम अगिन तन जारै । कै पतभार ठूठ कर डारै ॥
 त्यों त्यों होहि^{११} पेम मदमाते । काढै पात अगिन रंग राते ॥
 जो पुनि जरै बहुल^{१२} तन भरै^{१३} । डार डार फुनगा फुल^{१४} परै ॥
 पाकै पाकि पाकि^{१५} सब गिरै^{१६} । तऊ^{१७} न पेम लहुरा सों टरै ॥
 सकल एक पानिप को चहै । पर काजें नित ऊने रहै ॐ ॥

दोहा—ते तरुवर मनु^{१८} इमि कहै, ते विरजे^{१९} जग माहि^{२०} ।

सीउ वूप आपुन^{२१} महै, कर और पर^{२२} छाहि ॥३६॥

दोहा ३६-१—नेरभा (कां०) । २—भीम (स०) । ३—देहि (कां०) । ४—
 सेवत जात (स०) । ५—हरि (कां०) । ६—लागे जो विरछ (स०) । ७—जानू पेमी
 जगत उदासा (कां०) । ८—भुभुकै (स०) । ९—खरे (कां०) । १०—तेहूँ (कां०) ।
 ११—होहूँ (स०) । १२—फूल (कां०) । १३—फरै (कां०) । १४—फर (कां०) ।
 १५—भाग (स०) । १६—करै (स०) । १७—टूटहि पेम धरा सो टरै (कां०) ।
 १८—जिम (कां०) । १९—वरने (कां०) । २०—माहूँ (स०) । २१—आपान (स०) ।
 २२—परि (कां०) । * यह चौपाई केवल कां० प्रति में है । ॐ कां० प्रति में यह चौपाई
 नहीं है । ऊने = झुके हुए ।

फर तिनके जु विरिछ पुनि पेखे । तेऊ उपदेसी^२ सब देखे
 आदि^३ वचन विनवै अत्र सारे । करव^४ न क्रोध गरव हमङ्कारे ॥
 कटहर^५ कहै देखि^६ पिउ बोही^७ । हिये^८ ग्यान कोवा^९ जिन्ह^{१०} होही ॥
 वड़हर^{११} कहहि^{१२} मरम^{१३} तिन जाना । मधुर अमल जिन भेद न माना ॥
 नरियर कहै^{१४} लखै^{१५} पिउ^{१६} सोई । ज्यों^{१७} तन अलग गिरी^{१८} जिय होई ॥
 जामुन^{१९} कहै मरन औ^{२०} जामन^{२१} । ताको मिटै^{२२} कंत^{२३} मंह^{२४} जामन^{२५} ॥
 महुआ टपक दिखावै^{२६} रोई । मात^{२७} मोह^{२८} मद यह^{२९} गत^{३०} होई ॥
 खिरनी कहै देह यह^{३१} खिरनी । चेतो^{३२} बहुत^{३३} खरी^{३४} सो करनी^{३५} ॥
 अमली^{३६} कहै मोहि मधु^{३७} अमली^{३८} । जागि नीद मटी^{३९} पिउ सो मिली ॥

दोहा—ढिग^{४०} ढिग निवकौरी फरी, जो देखी^{४१} वन मांहि ।

कह^{४२} बोवै नर नीव जे, आम^{४३} कहां सो खांहि ॥३७॥

दोहा-१—निरख (स०) । २—उपदेसै (स०) । ३—ऊंचे विन वह अंवर सारी
 (स०) । ४—गर्व न करो गर्व (कां०) । ५—हिमगारी (स०) । ६—कथर (स०) ।
 ६—देखिउ (स०) । ७—उनही (स०) । ८—हंसहि (स०) । ९—गोवा (स०) ।
 १०—जिहि होहि (कां०) । ११—वधिर (स०) । १२—कहहि (स०) । १३—मर्म
 (कां०) । १४—कहै (स०) । १५—पिय (कां०) । १६—जो (स०) । १७—करै तन
 (स०) । १८—जामनु (कां०) । २०—उर (स०) । २१—जामनु (कां०) । जामन=
 जन्म लेना । २२—मती (स०) । २३—कंथ (कां०) । २४—मै (कां०) । २५—जामनु
 (कां०) । जा मन=जिसका मन । २६—देखावहं (स०) । २७—भांति (कां०) ।
 २८—मोहि (कां०) । २९—इहि (कां०) । ३०—गति (कां०) । ३१—इह (कां०) ।
 ३२—चेतन (स०) । ३३—वैहर (कां०) । ३४—घरी (कां०) । ३५—घरनी (कां०) ।
 ३६—अंवली (कां०) । ३७—मद (कां०) । ३८—अमली (कां०) । ३९—मीठी मै
 अमली (कां०) । ४०—घिग घिग (स०) । ४१—देखै तिन (स०) । ४२—कहो
 (कां०) । ४३—अंव (कां०) ।

जुर वैठै पंछी तिहि^१ साखा । बोलहि^२ सर्वै^३ पेम^४ रस भाखा ॥
 पांडुक^५ पेम वैन^६ गुहरावै^७ । एक जग^८ एकै^९ तूं रट लावै ॥
 चातक देइ^{१०} प्रीतम मै^{११} जीऊ । निस वासर कूकै^{१२} पिउ पीऊ ॥
 तोतहि^{१३} और वचन न सुहाई^{१४} । भीटुहि^{१५} भीटुहि रटिना लाई ॥
 महरि^{१६} जो^{१७} पेम दाह दहदही^{१८} । तिहि^{१९} दुख सदा पुकारत^{२०} रही ॥
 मोरहि^{२१} निपट पेम दुखदाई । निसि दिन मुएउ^{२२} मुएउ^{२३} चिल्लाई ॥
 कोकिल विरह^{२४} जरी भई कारी । कुहू^{२५} कुहू सव दिवस^{२६} पुकारी ॥
 समुझि^{२७} न परै कहै जस सूवा^{२८} । जनों^{२९} कहै जग सेंबर भूआ^{३०} ॥
 लखि न जाइ^{३१} मैना मुख वैना । पै जु^{३२} कहै तूही^{३३} प्रभु मैना ॥

दोहा—और^{३३} घने पंछी तहा^{३४}, गिनत कहां लीं जाउं ।
 सवही^{३५} कहै^{३६} पेम^{३७} सों, लेहु^{३८} धनी को^{३९} नाऊं ॥३८॥

दोहा ३८-१—तन (स०) । २—बोलहूँ (स०) । ३—सर्वहि (स०) । ४—
 प्रेम (स०) । ५—पांडुक (कां०) । ६—वहिस (कां०) । ७—कहरावै (स०) । ८—जक
 (कां०) । ९—एक (स०) । १०—दे (कां०) । ११—महुं (स०) । १२—कूकहं (स०) ।
 १३—तू तिन (स०) । १४—सुहाए (स०) । १५—वहै तौं नही वहै रट लाए (स०) ।
 १६—मिहर (कां०) । १७—जु (कां०) । १८—रही (स०) । १९—तिन (स०) ।
 २०—पुकारै दही (स०) । २१—मोरो (स०) । २२—म्यों म्यों चिल्लाई (कां०) ।
 २३—विरहै (कां०) । २४—कुहूँ कुहूँ (कां०) । २५—द्योस (कां०) । २६—समझ
 (कां०) । २७—सोरा (स०) । २८—चीन्ह (स०) । २९—खूवा (कां०) । ३०—जाहं
 (स०) । ३१—जिन (स०) । ३२—यहै पट (स०) । ३३—और कहै (कां०) । ३४—
 जहां (स०) । ३५—सर्वे (कां०) । ३६—कहौं (स०) । ३७—प्रीतम (कां०) । ३८—लेही
 (कां०) । ३९—कर (कां०) ।

भरे^१ सरोदक ताल तलावा । कहि न जाइ कछु तिन्हक^२ वनावा ॥
 जानहु^३ पेमी पेम सिखावै^४ । पेम अवस्था प्रकट दिखारवै^५ ॥
 जल उज्जल निर्मल जनु^६ मोती । रहहि^७ समाइ ग्रह्य उर जोती ॥
 अति गंभीर थाह^८ कछु नाहीं । मन कर मरम^९ दुरा मन माही ॥
 चहुं दिसि^{१०} पाकी^{११} पार बनाई । पाक पेम जनु मिटी कचाई ॥
 जद्यपि पेम हिलोर^{१२} उठावै । उमंग अन्नु^{१३} जल दुरन^{१४} न पावै ॥
 नीरज नैन पेम रंग राते । पुतरी भंवर^{१५} मीत मदमाते^{१६} ॥
 जो पुनि कहीं नैन दुई^{१७} गिनै । नीरज घने^{१८} न वरनत वनें ॥
पिउ^{१९} छवि दरसन चाव जो भयऊ । सब तन नैन मई होइ^{२०} गयऊ^{२१} ॥

दोहा--श्री पुनि तहा जो^{२२} खग वसहि^{२३}, जान सीख^{२४} तिन पाहं ।

पाखन^{२५} जल वीधै^{२६} नही, सदा रहै^{२७} जल माहै^{२८} ॥३६॥

दोहा ३६-१—भरइ (स०) । २—तिहि (का०) । ३—जानू (का०) । ४—
 सिखावह (स०) । ५—देखावहं (स०) । ६—जस (का०) । ७—हिये समाइ
 रही केहु जोती (का०) । ८—ताह (स०) । ९—मर्म (का०) । १०—दिस
 (का०) । ११—ताकी (का०) । १२—हिलो (स०) । १३—आंस (स०) ।
 १४—ढरन (स०) । १५—चवरं (स०) । १६—मधुमाते (का०) । १७—
 दुई (का०) । १८—कहै खनै न (का०) । १९—पिय छव दरस चाव जव
 भयी (का०) । २०—ह्वै (का०) । २१—गयी (का०) । २२—जु (का०) ।
 २३—वसै (का०) । २४—सिखाई न त्याहि (का०) । २५—पाखं (का०) ।
 २६—वीधइ (स०) । २७—रहै (का०) । २८—माहि (का०) ।

मढ^१ मंडप साजे^२ चहुँ पासा । तहां सिद्ध साधक^३ कर वासां ॥
 विप्र ब्रह्मचारी अनगनिं । जती जो जैनमती^४ ते कहे ॥
 जोगी जंगम कर विसरामा^५ । सूफी सन्यासी दस नामा ॥
 कोऊ जपा जपे^६ आराधे^७ । कोऊ तपा तपे^८ तप साधे^९ ॥
 कोऊ अष्टांग^{१०} जोग मै^{११} उरभै । कोऊ उरभि पाइ निज^{१२} सुरभै ॥
 कोऊ^{१३} विज्ञानी^{१४} पुरुष संजोगी । कोऊ ज्ञान के खोज वियोगी ॥
 तिनकर दरसन^{१५} जाइ जिन पावा । जनु^{१६} अठसठ तीरथ ह्वै^{१७} आवा ॥
 मन मिलतइ^{१८} निरमल होइ जाई । छाड़ि देइ सब चंचलताई ॥
 जग बंधा सो बंध कह जानै । और आपुहि बंध कै मानै ॥

दोहा—ज्यों चितवत^{१९} खिन सूर्य कै, कमल सुमन^{२०} विगसाहि ।

त्यो^{२१} साधुन^{२२} कै दरस गुन, ज्ञान नेत्र खुल जाहि^{२३} ॥४०॥

दोहा ४०—१—मधु (स०) । २—साजे (स०) । ३—साधक (स०) । ४—
 ओ जहे मुनि कै धने (कां०) । ५—विसरामा (स०) । ६—जपे (स०) । ७—आराधे
 (स०) । ८—तपन (स०) । ९—साधे (स०) । १०—अष्टांग (स०) । ११—महि
 (स०) । १२—तिज (स०) । १३—कोई (कां०) । १४—विज्ञान (स०) । १५—
 दरस (कां०) । १६—जन आठहु (स०) । १७—होइ (स०) । १८—मलीन (कां०) ।
 १९—धन सूरज को कमल (स०) । २०—सो पुनि विकसाहं (स०) । २१—त्यों
 (स०) । २२—साधन (कां०) । २३—जांह (स०) । * यह चौपाई कां० प्रति में
 नहीं है ।

* मध्यकालीन साहित्य में लगभग अठसठ तीर्थों की संख्या प्रसिद्ध हो गई थी
 (देखिए पदमावत, ६०४।२) ।

पैड पैड पर कूवा व वाई । सर्वाहि लाई घाट बंधाई ॥
 देखै जाइ जो तिनकर भेसू । जानहुँ करहि घरम उपदेसू ॥
 बोल उठै जव नियरै जाई । आगू देखि चली रे भाई ॥
 हमली अस्थिरता मन आनहुँ । तजि अभिमान खेहँ तन सानहु ॥
 माया द्वार देहँ जिन तारा । मारगँ छोड़िँ घरउँ भंडारा ॥
 जो जाचक आवँ तिन्ह दीजै । हम जल ज्यों कछु अटक न कीजै ॥
 ज्यों ज्यों कटै बढै त्यो पानी । घरमँ सांत उमड़ै अतिवानी ॥
 अन कढ नीर गधायलँ होई । छियाँ छिया बोलहिँ सब कोरै ॥
 छिनँ महुँ विनसिँ जाइ जो काया । माटी माँज मिलै चलँ माया ॥

दोहा—इनिँ माया सब जगँ ठगा, ताहिँ टगँ सो कोइ ।

पंथहिँ पाईये नीर ज्यों, जाकै अटकँ न होइ ॥४१॥

दोहा ४१-१—पैद पैद (स०) । २—वापँ (स०) । ३—सहस (कां०) । ४—घटा
 (कां०) सभी की प्रति मे यह शब्द नहीं है । ५—बढाएँ स०) । ६—तिहिकर (कां०) ।
 ७—जानहँ करहँ (स०) । ८—उठहँ (स०) । ९—नेरै जव (कां०) । १०—आगी (स०)
 ११—गेह (स०) । १२—देहि (कां०) । १३—मार्ग (कां०) । १४—छोड़ (कां०) ।
 १५—घोहु (कां०) । १६—आवँ (स०) । १७—लो (स०) । १८—धर्म (कां०) ।
 १९—प्रमदह (स०) । २०—अतिवानी (कां०) । २१—गढाइल (कां०) । २२—चहाचहा
 (कां०) । २३—बोलै (कां०) । २४—मै (कां०) । २५—वांस (स०) । २६—जल
 (कां०) । २७—इन (स) २८—जगथ का (स०) । २९—माइथकी पुनि सोइ (स०) ।
 ३०—पंथ वायें कै नीर ज्यों (स०) । ३१—अटक (स०) ।

पनिहारी देखीं^१ मृग नैनी । गज गामिनि श्री कोकिल वैनी ॥
 पहिरैं चीर सोभा^२ तन भांती । राइ मुनिहि^३ की ज्यीं अस पांती ॥
 लेजू पात कहै वा हाथैं । नैनन्ह पानी कलसा मार्य ॥ *
 निपट लाज सी आवहि^४ जाहीं । पाइन^५ दिष्टि^६ मुरत^७ घट माहीं ॥
 जो कोई सखी नैक^८ दृग फेरै । सूधी^९ दिष्टि वांक^{१०} कै हेरै ॥
 मिल सब सखी ताहि समुभाविहि^{११} । जनु^{१२} परदेसिन^{१३} पंथ वताविहि^{१४} ॥
 बल चेतहु^{१५} घट महै^{१६} मन देहू^{१७} । वांकी दिष्टि^{१८} सूध कर^{१९} लेहू^{२०} ॥
 माथ बोझ वाट रपटीली । रपट परै दुख होइ छवीली ॥
 जो घट फोरि जाहि^{२१} घर छूछे । का पुनि कहै^{२२} कंत^{२३} कै पूछे ॥

दोहा—रपट फोरि घट खोइ जल, त्रिन पानी विललाहि^{२४} ।

पुनि धीं कव आवा चढै, कव कुम्हार कहै^{२५} जाहि ॥४२॥

दोहा ४२-१—देखा (स०) । २—सो भातै भांती (कां०) । ३—मोर्नयन कै (स०) । * यह ची० 'कां०' में नहीं है । ४—आवै (कां०) । ५—पायन (स०) । ६—दृष्ट (स०) । ७—मुरत (कां) । ८—नीक (स०) । ९—सूफी (स०) । १०—वंग (स०) । ११—समुभाविहं (स०) । १२—जन्ह (स०) । १३—प्रदेशी (कां०) । १४—वतावन्ह (स०) । १५—चेतो (कां०) । १६—मै (कां०) । १७—देहो (कां०) । १८—दृष्ट (स०) । १९—कै (कां०) । २०—लेहो (कां०) । २१—जाह (स०) । २२—कहहु (स०) । २३—कंत जब पूछै (स०) । २४—विललाहु (कां०) । २५—कै जाहु (कां०) ।

फरी^१ अपूर अमी फरवारी^२ । फर^३ फर लटकनई^४ तिहि^५ डारी ॥
 तिन्ह^६ कै गति कछु वरनि^७ न जाई । सब फर^८ उपदेगी^९ गुण्णवाट^{१०} ॥
 नारंग विनव^{११} पेमी सोई । फाक फाक जाकर हिय होई ॥
 कहै दिखाइ^{१२} दरार यनारा । सो पंमी जा हिये^{१३} दरारा ॥
 विनव^{१४} सेव सेव^{१५} प्रभु सोई । जाके^{१६} सेव^{१७} रात मुप होई ॥
 नीवू^{१८} कहै^{१९} नुरस^{२०} घट माही । पै आपा काटे^{२१} विनु नाही ॥
 केला कहै करो^{२२} विस्वासा । फिर फरव^{२३} की घरी न आसा ॥
 वैर कहै यह वैर न पावहु^{२४} । जिनि आपा काटे^{२५} उरभावहु^{२६} ॥
 किसमस कहै अजाम अपैऊ^{२७} । जाने करम^{२८} पी^{२९} जीवन सेऊ^{३०} ॥

दोहा—गल^{३१} गल कहै जो^{३२} पिउ^{३३} विरह^{३४}, गल^{३५} गल गाल देह ।

सोई धन पिय^{३६} गल मिलै, रलै रलीने नेह ॥४३॥

दोहा ४३—१—फिरै (स०) । २—भरवारै (न०) । ३—फिर फिर (स०) ।
 ४—लटकनयन (स०) । ५—तव डारै (स०) । ६—तिहि के (कां०) । ७—वर्ण
 (कां०) । ८—फिर (स०) । ९—उपदेगी (कां०) । १०—विनवह (स०) । ११—
 दुखाइ (कां०) । १२—हिये (स०) । १३—विनवह (स०) । १४—सेवहि (स०) ।
 १५—जाकी (स०) । १६—सेवा (स०) । १७—निवू (कां०) । १८—कहाँ (सा०) ।
 १९—सरस (कां०) । २०—ग्रिहै (कां०) । २१—फिर ले कै घरी (स०) । २२—पावो
 (कां०) । २३—काटीं (स०) । २४—उरभावो (कां०) । २५—अवीयऊ (स०) ।
 २६—कर्म (कां०) । २७—सों (स०) । २८—सेवऊ (स०) । २९—गुल गुल (स०) ।
 ३०—जु (कां०) । ३१—पिव (कां०) । ३२—विरहै (कां०) । ३३—गुल गुल काली
 (स०) । ३४—पिउगुल (स०) ।

नगर निकट फूनीं फुलवारी । धन माली जिन सौंच संवारी ॥
 जनु^१ सब पुहप पैम अनुरागी । वैरागी^२ उपदेश^३ विरागी^४ ॥
 करना कहै अंत जो मरना । विन हरि भजन वंध सब करना ॥
 कहै सिंगार हार तन छारा । का सिंगार भर^५ आवसि हारा ॥
 वेला कहै समुक्ति^६ हो^७ हेला । कहो^८ न अनबेले^९ इहि^{१०} वेला ॥
 लाला कहै लाल तन मूना^{११} । पैम दाग^{१२} उर^{१३} दाग विहूना ॥
 सोसन कहै अजहु^{१४} घर लीये^{१५} । समुक्ति^{१६} सोसनी सोसन लहिग^{१७} ॥
 कहै नेवारी सो^{१८} पिउ^{१९} प्यारी । जिन सेवा लागि नींद निवारी ॥
 सोई वात सुदरसन कहै । सेवा सजग^{२०} सो दरसन लहै ॥

दोहा—चम्प चमेली केवड़ा, कहै^{२१} दूरि नहि^{२२} पीउ^{२३} ।

ढूढ़ि लेउ^{२४} हम वास ज्यों, घट घट सोई जीउ^{२५} ॥४८॥

दोहा ४४—१—जिन (स०) । २—वैराग (का०) । ३—उपदेशहि (का०) ।

४—वैरागी (का०) । ५—पहिरावस (का०) । ६—समझ (का०) । ७—ही (स०) ।

८—गहो (का०) । ९—अनबेले (का०) । १०—वह (स०) । ११—सोना (स०) ।

१२—दाह (म०) । १३—बोर (का०) । १४—समझ (का०) । १५—कई (का०) ।

१६—श्याम चुरन सिर (का०) । १७—भई (का०) । १८—सू (का०) । १९—पीव

(का०) । २०—सूजक सू (का०) । २१—कहै कि (का०) । २२—न (का०) ।

२३—पीव (का०) । २४—लेहि (का०) । २५—पीव (का०) ।

पुनि^१ वह^२ नगर दिस्टि महें^३ आवा । सुवह वसा^४ औ नीक^५ सुहावा ॥
 उंचे^६ ठौर जानु कैलासा । उंचे^७ मदिर लागु^८ अकासा ॥
 ईंट^९ गिलाव दिस्टि नहि आवा । सब पर उज्जल चून लगावा ॥
 सेत^{१०} सेत दीजहि एक सारी । होइ जुन्हैया^{११} निसि अधियारी ॥
 मानो^{१२} रूपे गिरै^{१३} पहारी^{१४} । कोर कोर सब छोल उतारी ॥
 तिहि^{१५} ऊपर चौवार^{१६} अटारी । दिस्टि पसार न जाहि^{१७} निहारी ॥
 नीक^{१८} झरोख वने^{१९} चहुं पासा । इंद्र धरै वैठन^{२०} की^{२१} आसा ॥
 झलकै कनक कटाव संवारा । जनु अकास झलकै निसि तारा ॥
 ते मंदिर^{२२} दीखै^{२३} इन^{२४} भेखा । जनु वैराग करै^{२५} उपदेसा ॥

दोहा—ऊंचे मदिर देखि^{२६} जनु जनि^{२७} जिउ^{२८} करहु^{२९} गुमान ।

छार ढोइ डेरी करै, संऊ^{३०} थिर न^{३१} निदान ॥४५॥

भीतर जाइ नगर जो देखा । मानुस^{३२} सर्वाहि विचित्र सो रेखा ॥
 अदला^{३३} अति लोनी^{३४} उजियारी । मनी मैन साचै सब^{३५} ढारी ।
 धरमी लोग^{३६} धरम^{३७} व्यवहारु । नाहि^{३८} अधरम^{३९} धरम अधिकारु ॥
 घर घर प्रतिमा^{४०} सेवा पूजा । पूजा^{४१} प्रथम काज तव दूजा ।
 सुचि सो सदा पवित्र रहाही । धरम क्रांति पाई मुख माहीं ॥
 पुन्य दान बहुतै^{४२} पुन होई । घर घर सुखी दुखी घट कोई ॥
 टोल टोल मह^{४३} वनी^{४४} अथाइ^{*} । चन्दन लपटी^{४५} रहहि सदाई^{४६} ॥
 पंडित वैठै^{४७} कथहि^{४८} पुरानूं । वरनाहि आतम रूप^{४९} गियानूं ॥
 वैठइ^{५०} आइ पुरुष विजानी । समभै^{५१} सुनै^{५२} उठै जस^{५३} वानी ॥

दोहा—हाथ सवन कै^{५४} सुमिरनी, सदा भजन सों काम ।

औ जो^{५५} मिलै^{५६} तासो^{५७} कहै, सुमिरो साधो^{५८} राम ॥४६॥

दोहा—४५—१—जो (स०) । २—जो (कां०) । ३—मै (कां०) । ४—
 विसारो (स०) । ५—नैकु (कां०) । ६—ऊची (कां०) । ७—जान (स०) । ८—
 ईंट कलाई (स०) । ९—स्वैत स्वैत देपहि टंकसारी (कां०) । १०—चह्नाई (कां०) ।
 ११—मांह (स०) । १२—कीरि (कां०) । १३—पहाड़ी (स०) । १४—तिल्ल
 (स०) । १५—जो वार (स०) । १६—जाहं (स०) । १७—तिनहि (कां) । १८—
 रहे (कां०) । १९—वैठे (कां०) । २०—कर (स०) । २१—निस छटकै (स०) ।
 २२—मंद्र (कां०) । २३—देखन्ह (स०) । २४—इहि (कां०) । २५—करहं (स०) ।
 २६—दिख (कां०) । २७—जिन (का०) । २८—जीय (कां०) । २९—करो (कां०) ।
 ३०—सो (कां०) । ३१—नाहि (कां०) ।

दोहा—४६—१—मानसवै (कां०) । २—अवमां (कां०) । ३—बोलै (कां०) ।
 ४—जनु (कां०) । ५—लोक (कां०) । ६—धर्म (कां०) । ७—नाहं (स०) । ८—अधर्म
 (कां०) । ९—प्रथमहि (स०) । १०—सेवा किये (स०) । ११—पुनि बहुतै (कां०) ।
 १२—मै (कां०) । १३—वने अठाही (सं०) । १४—लीयी (कां०) । १५—सदाई
 (कां०) । १६—वैठिय (स०) । १७—पढै (कां०) । १८—रुम गयानूं (स०) ।
 १९—वैठे (कां०) । २०—समुजि (स०) । २१—सनेह (स०) । २२—जनु
 (कां०) । २३—कह (स०) । २४—जु (कां०) । २५—मिलै (कां०) । २६—
 कांसों (स०) । २७—साधूनाम (स०) । * अथाई = वैठक ।

नगर छोड़ि^१ वैठी^२ पुनि^३ वेसा । करि^४ करि रुचिर रिभावन भेषा ॥
 सारी मुरग हरी रंग^५ आंगी । अति भीनी^६ जानहु^७ उर नांगी ॥
 प्रगट^८ कंवल^९ कुच देहि^{१०} दिखाई । निरखत^{११} मन मधुकर ह्वै^{१२} जाई ॥
 सुमन हार अरु^{१३} सोंवै^{१४} भीनी^{१५} । नाद^{१६} नृत्ति^{१७} गुन परम प्रवीनी ॥
 आभूपन पुनि वने जड़ाऊ^{१८} । अंग अंग गति भाव^{१९} रिभाऊ ॥
 माया रूप धरै अति मीठीं । मोहन मंत्र^{२०} वसै^{२१} तिन^{२२} दीठीं ॥
 जो चित दे चितवै^{२३} उन मांहीं । चितवत^{२४} चोर लेहि^{२५} तिहि पाहीं ॥
 तिन सो उरभि^{२६} घने गंठ^{२७} खोवा । औ^{२८} दे^{२९} सोस हाथ पुनि^{३०} रोवा ॥
 मिले मोहि^{३१} माया अविकारी । हाथ भाड़ि^{३२} होइ^{३३} गरु^{३४} भिखारी^{३५} ॥

दोहा—लटी वेस्वा^{३६} जनु यी^{३७} कहहि माया^{३८} वधी न कोइ ।

या वंदन^{३९} विध जगत तै, गयो^{४०} आव कहँ खोइ ॥४७॥

दोहा ४७—१—छोड़ि (स०) । २—वैठे (स०) । ३—वन (का०) । ४—
 कर कर (स०) । ५—उर (का०) । ६—छीनी (स०) । ७—जानो (स०) ।
 ८—प्रघट (स०) । ९—कमल (का०) । १०—दीन्ह (स०) । ११—देखत (का०) ।
 १२—होइ (स०) । १३—ओ (स०) । १४—सोंद (स०) । १५—हिय री
 (स०) । १६—नांद (स०) । १७—निरत (स०) । १८—जराऊ (का०) । १९—
 भया (स०) । २०—नेत्र (का०) । २१—वसै (का०) । २२—तन (का०) ।
 २३—देइ चतुर वह आंहा (स०) । २४—चित चितवत (स०) चितवित (का०) ।
 २५—चोरहि तिन्ह पाहा (स०) । २६—उरज कीन्ह (का०) । २७—वित (स०)
 २८—ओ (का०) । २९—देइ (स०) । ३०—वहु (स०) । ३१—मोघ (स०)
 ३२—भार (क०) । ३३—उठि (का०) । ३४—चले (का०) । ३५—बिखारी (का०)
 ३६—तय वेसा मनु (स०) । ३७—इमि (स०) । ३८—माया वढो (स०) । ३९
 याही वीध विधि जगत (स०) । ४०—कयो गये गंठ (स०) ।

आगे चलि देखी जो हाटा । दुहु^१ दिनि हाट बीच बड़ बाटा^२ ॥
 तिही^३ वाट जग आवै जाई^४ । हाटन हाट विसाहु^५ विहाई^६ ॥
 एक बनोटा^७ सेवा नाग^८ । एक धनी पर बार समागै ॥
 जहाँ बनोटा^९ वैठ^{१०} हाटा । धनी वैठ^{११} ऊपर कै^{१२} पाटा ॥
 सीवा होइ सो^{१३} सब लिख लेई^{१४} । हाट उठै^{१५} नेवा कै^{१६} देखै ॥
 कोऊ^{१७} बढे लाभ फल पावै । कोऊ^{१८} प्रभागे^{१९} मूर गवावै ॥
 जो आपहि^{२०} थारे^{२१} वरवारा । अपने महज^{२२} करांह^{२३} व्योपारा^{२४} ॥
 तिन^{२५} कहँ पूछनहार न कोई । धनी बनोटा आपन्ह^{२६} सोई ॥
 हाटन हेरि कहै जग^{२७} वैदू । पावा जान करम^{२८} गति^{२९} भेदू ॥

दोहा—कर्महि^{३०} जानु बनोटा, धनी^{३१} मु जाना मान ।

हाट^{३२} जगत अरु^{३३} काया, वाट सु^{३४} आपन जान ॥४८॥

हाटन साज दिस्टि इमि आवै । ज्यो^{३५} अदिगता जगत दतावै ॥
 प्रथम जो देखि^{३६} जोहरिन माही । जाति बिना एही नग नाही ॥
 घर थैली जो^{३७} वैठि परखिया । रूपा^{३८} एक अनेक रूपैया ॥
 तहाँ सुनारहटा^{३९} जा^{४०} देखा । कंचन एही^{४१} किकेक^{४२} द्विसेखा ॥
 जर जर जरी^{४३} आभरन^{४४} धरै । एकहि^{४५} कुशन गद्य नग जरै ॥
 पुनि जो पसरहट जाय निहारी । हाट हाट भहै^{४६} वैठ^{४७} पंभारी ॥
 पुनि खंडसार^{४८} परी^{४९} जां^{५०} दोठी । एकै^{५१} ऊउ हाट नव मोठी ॥
 आगे चलि^{५२} वजाज जो हेरे^{५३} । एक मूत्र निज बस्थ घनेरे ॥
 पुनि जो दिस्टि गंधी^{५४} तिन^{५५} होई । विन सुवासना^{५६} वस्त^{५७} न कोई ॥

दोहा—देखि दरीवा फुलहटी^{५८}, यहै^{५९} जान जिउ^{६०} होइ ।

प्रगटि^{६१} दुरा रंग वास ज्यो^{६२}, घट घट एकै सोई ॥४९॥

दोहा ४८-१—दोहुं (स०) । २—बाढा (का०) । ३—तिनहि (स०) । ४—जावै (स०) । ५—विसाहि (का०) । ६—त्रिकावै (स०) । ७—बनोटा (स०) । ८—बनोटा (स०) । ९—वणजहि (का०) । १०—वैठि (स०) । ११—की बाटा (का०) । १२—सू बोह लिखि (का०) । १३—लेऊ (स०) । १४—उठी (का०) । १५—कहि (स०) । १६—कोई रहै (का०) । १७—कोई (का०) । १८—प्रभागी (का०) । १९—आपन (स०) । २०—घोरे (स०) । २१—सहिज (का०) । २२—करै (का०) । २३—व्योहारा (का०) । २४—तिहि कहि (का०) । २५—आपहि (का०) । २६—जस वैदू (का०) । २७—कर्म (का०) । २८—कट (का०) । २९—करमठ (स०) । ३०—धरै सा (स०) । ३१—हाथ (स०) । ३२—उर (स०) । ३३—सू (का०) । ३४—बनोटा = वणिकपुत्र

दोहा ४९-१—जनो हूँ एकता (का०) । २—बनावै (का०) । ३—देख (का०) । ४—जु वैठ परखिया (का०) । ५—रूप (का०) । ६—सुनारपता (स०) । ७—तिन (स०) । ८—एक (का०) । ९—गति (का०) । १०—जरियन (स०) । ११—अभरन (स०) । १२—एकह (स०) । १३—मै (का०) । १४—वैठ (का०) । १५—खड़साढ (स०) । १६—पुरि (का०) । १७—जो (स० की प्रति मे नही है) । १८—एकहि (का०) । १९—चल (स०) । २०—हेरी (स०) । २१—गाढ़ (स०) । २२—तन (का०) । २३—सो वासना (स०) । २४—वसत (स०) । २५—फूलती (स०) । २६—इही (का०) । २७—जीय (का०) । २८—प्रघटि (स०) । २९—जु (का०) ।

मानिक^१ चीक जाइ^२ जो देखा । चहुँ ओर कौतुक बहु^३ पेखा ॥
 कतहुँ होइ^४ वेद^५ उच्चारा । कतहुँ पँवरिया पढै^६ पवार^७ ॥
 कतहुँ नाद नृत्त गुन होई । कतहुँ स्वाँग वनाव^८ कोई ॥
 कतहुँ वैद वनावै^९ पुड़ी^{१०} । कतहुँ जड़िया^{११} वेचहिं^{१२} जड़ी^{१३} ॥
 कतहुँ जुरे^{१४} गाररु मंत्री । कतहुँ जंत्र^{१५} वजावहिं जंत्री ॥
 कतहुँ साँप नियँ सँपहेरा^{१६} । कतहुँ चित्र^{१७} लिय वैठ चितेरा ॥
 कतहुँ गनकहिं^{१८} पत्र निकारी । कतहुँ असवैया^{१९} असवै डारी^{२०*} ॥
 कतहुँ ठगनि ठगावै कोई । कतहुँ गजरहट^{२१} पाखँड होई ।
 कतहुँ चेटक मन हर लींहा । कतहुँ नट^{२२} नाटक गुन^{२३} कीन्हां ॥

दोहा—ते कौतुक जन^{२४} इमि कहै, मन^{२५} तिन रंग न राँच ।

हमलीं अवही अस्त^{२६} रवि, उठा देखि यह^{२७} नाँच ॥५०॥

दोहा ५०-१—माणक (का०) । २—जाय (स०) । ३—इहि (कां) । ४—
 होवे (स०) । ५—वेदा चारा (स०) । ६—पढहं (स०) । ७—पुंवार (कां०) ।
 ८—वनआवा (स०) । ९—वनावहं (स०) । १०—वरी (कां०) । ११—जरैया
 (कां०) । १२—वेचे (कां०) । १३—जड़े कार रद (स०) । १४—चित्र वनावै चित्री
 (कां०) । १५—साँपेरा (स०) । १६—चित्री वै? (कां०) । १७—कंकन पुतरी (स०) ।
 १८—असिया असवय (स०) । १९—दारी (स०) । २०—कचरहट (स०) । २१—
 नित (स०) । २२—गन (स०) । २३—जिमि (कां०) । २४—कि तन मन अंग न राच
 (कां०) । २५—अवही अदरव (कां०) । २६—इह नाच (कां०) ।

* असवैया = आसेव करने वाला, भूत प्रेत हरने वाला, आसेविया, जिसे मखदूम
 भी कहते हैं । असिया = आसेव, भूत वाधा । कहीं हदस करने वाला आसेविया भूतवाधा
 उतार रहा था ।

भीतर नगर राजगढ़ गाढा^१ । जनु पहाड़ चहुं दिस गढ़ि^२ काढा ॥
 नेऊं^३ पर आदि नाग सों पूरा । लै^४ अकास पर धरे कंगूरा ॥
 सहँसर^५ मन की^६ सिला लगाई । धौं^७ गढ़यरि^८ किहि काढ चढ़ाई ॥
 तरहर खाँव^९ खोह अस कीन्हा । धौं कयैक^{१०} वर्ष लवि न चीन्हा ॥
 सप्त पतार सोत खनि^{११} काढा । निकसि नीर ऊपर ली वाढा ।
 चहुं दिसि चारीं पंवरि दुआरा । तिन्हहि लागि पुनि लोह किवारा ॥
 कुंड सजलहि^{१२} भरे गढ माही । उमड़ि^{१३} नीर^{१४} तहँ^{१५} नदी बहाही ॥
 अलग लगाव कहूँ^{१६} कछु नाही । ज्यो आतम काया गढ माही ॥
 जो^{१७} तिन्ह लगे^{१८} वज्र कर गोला । जनी^{१९} वज्र पर लाग गिलोला^{२०} ॥

दोहा—जनु^{२२} गढ़ कहै कि समझ^{२३} नर, तू गढ़पति गढ़ नाहि^{२४} ।
 ज्यों मोसों गढ़पति अलग^{२५}, जद्यपि^{२६} मोही^{२७} माही ॥५१॥

दोहा ५१-१—काढा (स०) । २—घड (कां०) । ३—पवन पुरा नाग सों पूरा (कां०) । ४—लेइ (स०) । ५—सहस्रै (स०) । ६—कै (स०) । ७—वहं (स०) । ८—गढ परि खंड गाढ (स०) । ९—.....नोह खोह अस घना (स०) । १०—वहं केतक बरखन खन वना (स०) । ११—खिन (कां०) । १२—सजीवन (स०) । १३—अमद (स०) । १४—न (कां०) । १५—तिहि (कां) । १६—कही (स०) । १७—ज्यो (स०) । १८—तिहि (कां०) । १९—गलै (का०) । २०—जिन (स०) । २१—कलोला (स०) । २२—जन (स०) । २३—समुझि (स०) । २४—माहि (स०) । २५—सदा (स०) । २६—जानत (कां०) । २७—मोहिये (स०) ।

बड़ी^१ पंवरि पर ऊँच दुआरा^२ । तिहि^३ ऊपर वाजै घरियारा^४ ।
 चेतन पुरुष वैठ^५ घरियारी । घरी घरी तिन^६ साध^७ उतारी ॥
 पल छिन^८ अंतर होन न पावै । जबहि^९ भरै तबहि^९ ढरकावै ॥
 ढार मार फिर लेकै घरै । एकहि^{१०} घरी माझ पुनि भरै ॥*
 जब मारै घरियार^{१०} पुकारै । समझहि^{११} घरी फिरत^{१२} खिन मारै ॥
 तौ लौ कुसल^{१३} जौ घरी न पूजी । जब पूजी तब वात न ढूजी ॥
 आवै भरी^{१४} घरी ज्यों आऊ । मीत^{१५} चेत चेतो रे बटाऊ ॥
 जिन जानो^{१६} कि घरी यह टरी । यह^{१७} जानहु अबलौ नहि भरी ॥
 का भा^{१८} घरी एक^{१९} जो टरी । पै^{२०} निदान डूवै जब^{२१} भरी^{२२} ॥
 जब वह समै आइ नियरावै । सुमिरन विन कछु काम न आवै ॥*

दोहा—जग भौ^{२३} जल काया घरी^{२४}, प्रौघ^{२५} घरी^{२६} सो आव ।

पूजत आवै छिनहि छिन, चेत^{२७} न जन्म गवाँव ॥५२॥

दोहा ५२-१—बड़े पौर (कां०) । २—द्वारा (कां०) । ३—तिन्ह (स०) ।
 ४—घरबारा (स०) । ५—वैठ घरवारी (स०) । ६—जन (स०) । ७—साधु (स०) ।
 ८—तिल (कां०) । ९—जवै (कां०) । *यह चौपाई स० प्रति में नहीं है । १०—घरवार
 (स०) । ११—समुझौ (स०) । १२—भरत (स०) । १३—कुसर (स०) । १४—
 भरत (कां०) । १५—नोच जीत चितवु उर बटाऊ (स०) । १६—जानइ कि घरे यह
 (स०) । १७—तेही छिन डूवै जब भरी (कां०) । १८—भय (स०) । १९—भरी
 (कां०) । २०—पुनि (कां०) । २१—कौं (कां०) । २२—घरी (कां०) । * कां०
 प्रति में यह चौपाई नहीं है । २३—वहु (स०) । २४—घड़ी (स०) । २५—अवोघ
 (स०) । २६—बड़ी (स०) । २७—अजहं चेतन न गवाँव (स०) ।

राज दुवार^१ जाइ^२ जो देखा । बड़े भूप नाहिन^३ कछु लेखा ॥
 बंधे^४ गयंद मेरु हुत^५ भारे^६ । वरन^७ स्याम काजर हुत कारे ॥
 काया बड़ी^८ सबल बलवंता । कोउ न मत्त^९ कोऊ मदमंता ॥
 चारों ओर द्रिस्टि इमि आई । जानी कारे^{१०} मेघ^{११} उनाई ॥
 जो बल करहि^{१२} मेरु मल डारहि^{१३} । गढ़ पेलहि^{१४} सै^{१५} नीवं उपारहि ॥
 गहि^{१६} तरवर^{१७} सै^{१८} मूर उछारे^{१९} । चूरहि^{२०} डार आरि^{२१} मुख डारे^{२२} ॥
 इक सादुर^{२३} सूघे इक^{२४} खोटे । माते रस^{२५} सी होहि न^{२६} मोटे ॥
 जो^{२७} पुनि माते करहि^{२८} हठई^{२९} । आव कोस लीं मनुष^{३०} न जाई ॥
 आंकुस कै^{३१} कुछ आन^{३२} न मानहि । चरखी वेल^{३३} फूल कर जानहि^{३४} ॥

दोहा—गाजहि^{३५} खड़े^{३६} गुमान सों, भरै खेहे^{३७} लै देह ।

मनु^{३८} इमि कहै गुमान का, जो निदान तन खेहे^{३९} ॥५३॥

दोहा—५३-१—द्वार (कां०) । २—जाय (स०) । ३—नाहि (स०) । ४—
 बडे (स०) ५—हत (स०) । ६—भारी (कां०) । ७—वर्ण (कां०) ८—वली (स०) ।
 ९—मत्त (स०) । १०—कारी (स०) । ११—घटा (स०) । १२—करे (कां०) ।
 १३—डारहं (स०) । १४—पीलन्ह (स०) । १५—सैनन उवारहि (कां०) । १६—
 कहि (स०) । १७—तरवर (कां०) । १८—सू (कां०) । १९—उचारहं (स०) ।
 २०—चूरन्ह (स०) । २१—छार (कां०) । २२—डारहं (स०) । २३—सायर (स०) ।
 २४—एक (स०) । २५—रसहं (स०) । २६—नहि (स०) । २७—सो (स०) ।
 २८—करैहि (कां०) । २९—हत्याई (स०) । ३०—सन्मुख को जाई (स०) । ३१—
 की (कां०) । ३२—मनैहि न आनहि (स०) । ३३—फूल वेल छूटै तव (कां०) ।
 ३४—हानहं (स०) । ३५—गाजहं (स०) । ३६—खरे (कां०) । ३७—फिरन
 कहियलै देह (स०) । ३८—जनु (कां०) । ३९—खेहि (कां०) ।

तुरी^१ जो समुंद तिरहि^३ इक हेला । सहयक^३ बांधे चरहि^५ तवेला ॥
 देस देस के नाना रंगा । रूपवंत पूरन सब अंगा ॥
 और तहाँ^५ पर और^३ बलानै^६ । चढै सुजन^७ जानहि पहिचानै ॥
 जानहु अधर रहै भुइं^८ पाऊँ । जब चंचल हो होहि चलाऊँ ॥
 सांस लेत जानो^{१०} उड़ि^{११} जाही^{१२} । चावुक^{१३} अस्थिर कहां रहाहीं ॥
 बिनहि^{१४} दिखावै कौतुक आछै । छाड़ै चलै पीन देइ पाछै ॥
 जहाँ चढैया^{१५} मन दौरावा । पहिलै^{१६} तहाँ पाव पहुँचावा ॥
 जो चंचल पुनि चाल चलाई । जनु जल महँ^{१७} कोसा दुरि^{१८} आई ॥
 नैक^{१९} निडोल^{२०} डोल^{२१} तिन्ह^{२२} डालै । मनहुं^{२३} चले^{२४} चढि^{२५} उड़न^{२६} खटोलै ॥

दोहा—चपल तुरै^{२७} जनु इमि^{२८} कहै, मनको^{२९} चपल चलान ।

भला नाहि^{३०} इनहीं^{३१} गुनै^{३२}, हम पर परा पनान ॥५४॥

दोहा ५४-१—टरैं जो (स०) । २—टरैं एक (स०) । ३—सहंसनि बाधी (का०) । ४—चरहं (स०) । ५—तिहा (का०) । ६—और पलाने (का०) । ७—सो निज न जाहं पहिचानै (स०) । ८—भय (स०) । ९—होइ (का०) । १०—चाहै (स०) । ११—उड़ (स०) । १२—जाई (स०) । १३—छीरे (स०) । १४—कहै देखावह (स०) । १५—ध्यान जो मन (स०) । १६—पहिलहं (स०) । १७—मैं (का०) । १८—दुर (स०) । १९—नीक (स०) । २०—निडोल (का०) । २१—होइ (का०) । २२—निहि (का०) । २३—जनों (का०) । २४—चलहि (का०) । २५—चढ (का०) । २६—उड़िन (का०) । २७—तुरी (का०) । २८—इम (का०) । २९—कि मनको (का०) । ३०—नाह (स०) । ३१—एहीं (का०) । ३२—कहै (का०) ।

नीके^१ नीति^२ बैठ जो राई । जुरी कचहरी^३ सिस्टि^४ उनाई ॥
 जग कर लेख जोख^५ तंह^६ होई । रहै संजूती^७ निवहै सोई ॥
 राज^८ अंस जिमि जिउ^९ कर राखा । तिन्ह^{१०} कौ^{११} मंद न काहू^{१२} भाखा ॥
 भा^{१३} निरवार^{१४} बंदि^{१५} नहि परा । खेम कुमर^{१६} गा^{१७} अपने घरा ॥
 निज मूरख कछु^{१८} लंपट कीन्हां । विफर^{१९} गर्व करि आपु न चीन्हा ॥
 राज त्रास जिन^{२०} दीन^{२१} विसारी । भयो भूल मन आज्ञाकारी ॥
 सो पछताइ रहा सिर नाई । सब^{२२} सठ^{२३} आपन^{२४} कड़ी^{२५} बंधाई ॥
 बांधा^{२६} वदि गिरह महँ डारा । मेना गरै^{२७} लोह घरियारा^{२८} ॥
 दिन^{२९} दिन दड होइ नहि छूटा । गुनैह कीन नीक कै कूटा ॥

दोहा—देख कचहरी को चलन, इह सिच्छा जिय होइ ।

जो मन बांधै अपना, ताहि न बांधै कोड ॥५५॥

देखी राज सभा उजियारी । इंद्र सभा जनु इंद्र संवारी ॥
 रहे बसाय अगर कस्तुरी । कै सुवास इंद्रासन पूरी ॥
 नीचै पाट पटंवर डारा । बैठे तहां जुहारि जुहारा ॥
 ऊंचे राज पाट रजि^१ साजा । तहँ पर बैठ पुहमपति^२ राजा ॥
 औ पुनि निकटवरत जु कहावै । मन वच क्रम सेवा मन^३ लावै ॥
 भीतर जाइ जुहारहि सोई^४ । बाहर खड़े श्रीर जे^५ कोई ॥
 सेवा सन्मुख सोई^६ पियारा । बंकहं^७ तहां नाहि^८ पैसारा ॥
 तिन्ह कर विनती विनवै^९ करिहै^{१०} । आयमु होइ सो उत्तर देहै ॥
 जो कुछ होइ सो आयसु होई । विन आयनु कर सकै न कोई ॥

दोहा—राज सभा गति देखि कै, यहै जान जिउ होइ ।

जो सेवग^{१०} सेवा सजग, सदा हजुरी^{११} सोइ ॥५६॥

दोहा—५५—१—नेगी (कां०) । २—नीव (स०) । ३—कचहरी (कां०) ।
 ४—सृष्टि (कां०) । ५—जेख (कां०) । ६—तिहि (कां०) । ७—सचीते (स०) ।
 ८—राजा (स०) । ९—जी (कां०) । १०—तिहि (कां०) । ११—कहि (कां०) ।
 १२—किनहूँ (स०) । १३—भय (स०) । १४—निरवाखा (कां०) । १५—बंद
 (कां०) । १६—निहि (कां०) । १७—कुगर (कां०) । १८—गय (स०) । १९—
 लंपट मन कीना (कां०) । २०—हिय भर गरव का आपु न चीन्हां (स०) । २१—
 जिय (स०) । २२—देह (स०) । २३—सुनि (कां०) । २४—साथ (स०) । २५—
 आपनु (स०) । २६—गुदी (कां०) । २७—बाध बाध गर्व मे डारा (कां०) । २८—
 करहि लोहि (कां०) । २९—करवारा (स०) । ३०—दंडन दंड (स०) । ३१—कहे (स०) ।

दोहा—५६—१—रज साजा (स०) । २—भीमपत (स०) । ३—जिउ (स०) ।
 ४—होई (कां०) । ५—जन (कां०) । ६—वही (कां०) । ७—अटकहि (कां०) ।
 ८—कहाँ (स०) । ९—नीव कराही (स०) । १०—ते पावह जे तय करहं (स०) ।
 ११—राख भागे जिउ सोइ (स०) ।

वने राज मन्दिर अति लोने । चित्र कटाव कीन्ह सव सोने ॥
 लागे कंचन खंभ जराऊ । कहि न जाइ छातिहि कर भाऊ ॥
 कतहूँ रतननि सुरज संवारा । कतहूँ वने चांद श्री तारा ॥
 तहां रैन जो दिया न होई । परगट दिवस कहै सव कोई ॥
 इक मन्दिर साज दरपना । दरपन चाहि चमक चौगुना ॥
 कोऊ खन कोऊ चीखना । कोऊ सतखन बहु विधि वना ॥
 नदी घाट लै सव महँ आनी । छातहं उतर गिरै भुंड पानी ॥
 जो देखी तिन्ह कर अंगनाई । भरी हौद फृनी फुलवाई ॥
 छिटके सुमन सुरंग सुवासा । जानों विद्यमान कैलासा ॥

दोहा—ते मंदिर जनु इमि कहै, ये कैलास निवास ।

ते पावै जे तप करै, खट ऋतु वारह मास ॥५७॥

मंदिर राजमती पटरानी । रूपवंत श्री मति परधानी ॥
 सेज सिंगार राज गृह सोई । सीत न श्रीर साल जिहि होई ॥
 कहि न जाइ तिहि रूप निकाई । चंदहू ते मुख जोति सवाई ॥
 छवि दधि वदन कवल चक्ष फूले । पुतरी भंवर उड़न गति भूले ॥
 देख सरूप अपछरा जरहीं । नर नारी सरवर कत करहीं ॥
 अति भुकुमार हार उर भारू । पुहुपवास कै पान अहारू ॥
 सज्या सुमन केर जो परी । चह चह उठी अंग मह अरी ॥
 कहली कहीं सुमति जस धरै । वेद गरंथ प्ररथ सव करै ॥
 श्री पतिवरता पिउ मह जीऊ । ताहू जीऊ देड पुनि पीऊ ॥

दोहा—देखि सुगतिता नारि की, इहि मति पावै जीउ ।

पतिव्रत उर धारै जो धनि, तेहि उर वारै पीउ ॥५८॥

दोहा—५७—१—इहि (कां०) । २—काटि (कां०) । ३—करै (स०)
 ४—भम (स०) । ५—जिहि के (कां०) । ६—कै (कां०) । ७—पावत जे । ८—
 करन्ह (स०) । ९—राख भूजिय आस (कां०) ।

दोहा—५८—१—घर (कां०) । २—तिन्ह (स०) । ३—उड़न (कां०)
 ४—भुराही (कां०) । ५—कराहीं (कां०) । ६—सुकुवार (स०) । ७—
 (कां०) । ८—सेजां (स०) । ९—करी (कां०) । १०—चुभ चुभ (कां०) । ११
 उठै (कां०) । १२—मै (कां०) । १३—अरै (कां०) । १४—वहु (स०) । १५
 मै (कां०) । १६—ता तन कै जिउ को पिउ जीऊ (स०) । १७—यह (स०) । १८
 हित (स०) । १९—पतिव्रता उरधार वन (कां०) ।

राजा रानी के रंग राता । कवल^१ वास मधुकर जनु माता ॥
 गाढी प्रीत प्रतीत पियारु । दिन दिन होइ नेह अधिकारु ॥
 सारस कै^२ जोरी^३ ज्यों^४ दोऊ । सहि^५ न सके छिन^६ एक विछोऊ ॥
 ज्यों चकवी चकवा दिन माही । त्योई^७ रैन रहै इक ठाहीं^८ ॥
 सदा समीप रहै सुख मानै^९ । जनम विछोह न कवहुँ^{१०} जानै ॥
 काम समुद्र मर्थ मिलि दोऊ । पै^{११} तिहि^{१२} रतन न निकसै कोऊ ॥
 वरस बीत औ वीतत^{१३} जाही । राजा कै संतति^{१४} कछु नाही ॥
 वारी बालक कछु न होई । रानी^{१५} बांभ कहै सब कोई ॥
 कुटुंब लोग सब मिल चरचाही^{१६} । का सुख भोग पुत्र जो^{१७} नाही ॥

दोहा—रैन जगत व्यौहार मै^{१८}, कारज सरै न कोइ ।
 जौ^{१९} लों गृह गृहस्थ कै, दीपक पुत्र न होइ ॥५६॥

भये सब हितू राज^{२०} कह लागू । सो^{२१} कछु करौ चलै जिहि^{२२} आगू ॥
 करो उपात्र पुत्र जिहि होई । रानी और विवाहो कोई ॥*
 जनम सुफल पुत्र^{२३} जिहि होई । पुत्र विहून होइ न कोई ॥
 इहि जग स्थिर^{२४} रहै न नाऊँ । औ^{२५} वह जग नाहिन^{२६} पुनि ठाऊँ ॥
 वही गृहस्थ पुत्र जिहि होई । पानि न देइ पुत्र विनु कोई ॥*
 दरद औ पुत्र जगत जीवन पत । सत घरम सों होत मुकुत कत ॥†
 आनंद कंद पुत्र घर माही । बालक विन कतहूँ सुख नाही ॥‡
 सरवन पुत्र हुता तौ काधे । कांवर लियै फिरा सत बांधे ॥
 कीन्हेसि मात पिता कर^{२७} सेवा । को अस पुत्र विना सुख देवा ॥
 भागीरथ गंगा लै आवा^{२८} । किन किन काज पुत्र नहि^{२९} आवा ॥
 पुत्रहि^{३०} सौ पूजहि सब स्वारथ । पुत्र न होई तो जनम अकारथ ॥

दोहा—गृह^{३१} गृहस्थ कै पुत्र सम, निधि^{३२} दूसर नहि कोइ ।

पुत्र विना पत इत न उत, अपत दोऊ^{३३} जग होइ ॥६०॥

दोहा—५६—१—कमल (कां०) । २—की (कां०) । ३—जोरे (सं०) ।
 ४—जनु (कां०) । ५—सह (सं०) । ६—पल (सं०) । ७—त्योते (कां०) ।
 ८—एक थाही (सं०) । ९—माहा (सं०) । १०—कववू (सं०) । ११—पय (सं०) ।
 १२—तिहि (सं०) । १३—वीतजु (कां०) । १४—संपति (कां०) । १५—रानीहं
 (सं०) । १६—चरच कराहीं (सं०) । १७—ज्यो (सं०) । १८—महं (सं०) ।
 १९—ज्योलों (सं०) †

दोहा—६०—१—राजहिहि (कां०) । २—जो (सं०) । ३—जिन्ह (सं०) ।
 ४—विन पुतर न होई (सं०) । ५—अस्थिर (सं०) । ६—ओहूँ (कां०) । ७—नाहीं
 (कां०) । ८—की (कां०) । ९—धावा (कां०) । १०—किह कै पुत्र काज नहि आवा
 (कां०) । ११—सुत सत सै (सं०) । १२—निधि गृहस्थ गृह पुत्र सम (कां०) । १३—
 दूसर और न कोइ (कां०) । १४—दूहूँ (कां०) ।

*ये चौपाइयाँ केवल 'कां०' प्रति में हैं । † ये चौपाइयाँ 'कां०' प्रति में नहीं हैं ।

राजा करि विचार मन बोला । वचन सतोल^१ अडोल^२ अमोला ॥
 करनहार करतार^३ जो कोई । जो कछु होइ सो तासों होई ॥
 मारै यही टेक मन आई । करै सो करता आपु न^४ भाई^५ ॥
 कीन^६ न चहै तो खाक न कवहीं । दीन चहै तो देव^७ अवही ॥

नाहित सत विचरै गति नाहीं । सत मत^८ गत तानीं (है) जाहीं ॥
 यह^९ जो कहीं मूढ़ मति नाही । लिखो पुरान गरथे मांही ॥
 जो कोउ जीन^{१०} आस जिय धरै । प्रभुही^{११} साँप उपाव न करै ॥
 कै परतीत अस्थिर^{१२} मन राखै । पुरन^{१३} होइ वेद अस^{१४} भाखै ॥
 औ यह^{१५} टेक तवही^{१६} थिर रहै । विधना काज कीन्ह जव^{१७} चहै ॥

दोहा—नातरु कठिन^{१८} प्रतीत यह^{१९}, कर न सकै सब कोइ ।

जा पर क्रिपा दयाल की^{२०}, ताही सो पै^{२१} होइ ॥६१॥

राजा टेक आनि^१ मन माही । काहू केर^२ कह्या^३ न अनाही^४ ॥
 बोल सो बोल ओर^५ पहुँचावा । मन अडोल कै^६ फिर न डुलावा ॥
 जदपि हितु लोग कह हारे । टेक अंक^७ लिख हृद न टारै ॥
 करम^८ अंक जो लिखै लिलाटाँ । वेड^९ उतार धरै हिय पाटाँ ॥

औ पुनि करम लिखा निज^{१०} साँई । जस कीन्हेंसि विनु^{११} लिखा न होई^{१२} ॥
 वचन बूट^{१३} उर ठीर लगावा । तिहि प्रतीत पानी पहुँचावा ॥

मनसा मूर अचल ठहिराई^{१४} । पर्ण^{१५} कर पेड़ बंधा अघिकाई ॥
 सत साखा फैली^{१६} चहुँ ओरा । हरि है^{१७} ध्यान हरे भये डोरा ॥
 भा अव^{१८} तरुन फूर फर आवा । कस न फरै सत विरछ लगावा ॥

दोहा—माली सत धर विरछ जड़, साँच सो^{१९} बहु फर लेइ ।

जो सेवै सत संग^{२०} तरु, कस न सो फिर फर देइ ॥६२॥

दोहा—६१—१—अस्थूल (स०) । २—अदोल (स०) । ३—कर्ता (का०) ।
 ४—अपुन (स०) । ५—विहाई (प०) । ६—कीन्ह चहै तो पांगन कीन्है (कां) ।
 ७—दीन्ह अभीन्है (कां०) । ८—अत्रु मित्र दोऊ पर चांही (कां०) । ९—औ पुनि इहू
 (कां०) । १०—आस जिय मर्हि (कां०) । ११—प्रभु पर रापि (कां०) । १२—स्थिर
 (कां०) । १३—पूजै आस (कां०) । १४—इम (कां०) । १५—इहि (कां०) ।
 १६—बैठा (कां०) । १७—जो (कां०) । १८—कथन (स०) । १९—इहि (कां०) ।
 २०—कह (स०) । २१—पर (कां०) ।

दोहा—६२—१—कीन्ह (कां०) । २—कीर (कां०) । ३—कहा (स०) ।
 ४—नाहीं (कां०) । ५—ओर (स०) । ६—कियो (स०) । ७—एक (कां०) ।
 ८—मानों कर्म अंक जु (कां०) । ९—आड (कां०) । १०—पुनि (स०) । ११—
 पुनि (कां०) । १२—कोई (कां०) । १३—पू उठ उ अरथावर (कां) । १४—थिर
 आई (स०) । १५—अन कर पेड़ बंधा नद काई (स०), पर्णकर वेद बंधा निध गाई या
 वर्ण कीर विध बंधा न काई (कां०) । १६—पकेरे (कां०) । १७—कै (कां०) । १८—
 वतरुन वीर पर (स०) । १९—सर्व फल (कां०) । २०—सजक नर (कां०) ।

एक द्योस सुधरी जब आई । काहू नेगी^१ वात चलाई ॥
 कहा कोस चार इक ठाऊँ । वन मे जहां न मानुख नाऊँ ॥
 नदी तीर इक मढी वनाई । दमन रिखीसर तहाँ बसाई^२ ॥
 आसा नाऊँ नरी के तीरा^३ । बजर^४ भाइ वैठ्या तिहि^५ नीरा^६ ॥
 ध्यान विना तिन काज न कोई^७ । जीनेसि पांचा हारेसि दोई ॥
 ध्यानहि ध्यान देह सुधि खोई । आप हिराड रह्या होइ सोई ॥
 मौनी रहै सदा घट बोलै । जो बोलै तो ग्यान निधि खोलै ॥
 जासहुं दया दिस्टि कर हेरै । जनम जनम के दोख^८ निवेरै ॥
 दरसन किए^९ पाप सब^{१०} जाही । पग^{११} परसै^{१२} संताप विनाही ॥

दोहा—प्रगटे पाप करा करम^{१३}, पाप करे पुनि^{१४} जाहि ।

पाप करै इन^{१५} पुरुष ते, प्रगट न होहि विलाहि ॥६३॥

राजहि सुनि यह वात सुहाई । कहा^१ चली दरसन^२ कहं^३ जाई ॥
 ऐसो सिद्ध पुरुष जो सुनीजै^४ । उनहि^५ सम चल दरसन कीजै ॥
 तिनही^६ काल मन माहँ^७ जो आई । चला छतरपति कीन्ह चढाई ॥
 चल तिहि नदी नियर^८ जब आवा । राजा छत्र चवर^९ वरजावा ॥
 कतक लोगऊ हट बैठारा । वाहन छाड़ि पाइ मग धारा ॥०
 दोउ सेवक लीन्हैसि संग लाई । सनमुख^{११} मढी ठाढ़ भा^{१२} जाई ॥
 सिद्ध पुरुष तिहँ वैठ अकेला । आपहि गुरु आपहि चेला ॥*
 तारै लाइ रहा मन^{१३} माही । सुरत न कोऊ और^{१४} धुन नाही ॥
 जब ठाढ़े वीती बड़ि वारा । आंखि खोल तब सहज निहारा ॥†

दोहा—हेरत छिन^{१५} राजा लपकि^{१६}, पाइ^{१७} गहे सिर नाइ ॥

सिद्ध पुरुष पुनि कृपा करि^{१८}, माया लीन^{१९} उठाइ ॥६४॥

दोहा ६३-१ नीकी (स०) । २—रहाई (का०) । ३—नीरा (स०) । ४—
 पूर (का०) । ५—होइ (का०) । ६—तीरा (स०) । ७—होई (का०) । ८—दुष
 (का०) । ९—देख (का०) । १०—मिच (स०) । ११—पापहि के पर पाप हिराहि
 (का०) । १२—‘स०’ प्रति में इस स्थान पर कोई पाठ नहीं । १३—विन (का०) ।
 १४—अर न प्रगटै (का०) ।

दोहा ६४-१—कह्या कि (का०) । २—दर्श (का०) । ३—कहि (का०) ।
 ४—सेजै (स०) । ५—अवश्य तिनो (का०) । ६—तिहि (का०) । ७—मैं (का०) ।
 ८—कछु (का०) । ९—तीर (स०) । १०—छोर परधावा (का०) । ११—चल सन्मुख
 खिन (का०) । १२—भयाई (स०) । १३—तन (का०) । १४—आवै जाहीं (का०) । १५—
 लियै (स०) । १६—लुपक (का०) । १७—पाव (स०) । १८—कैं (स०) । १९—
 यह चौपाई ‘स०’ में नहीं है । * यह चौपाई ‘स’ में नहीं है—
 यह चौपाई ‘स०’ में नहीं है ।

राजा कै अधीनता^१ देखै । कीन्हैसि^२ मया^३ विसेख विसेख^४ ॥
 कै आदर बैठक ढिग दीर्ना^५ । श्री मनुहार बहुत विधि कीनी^६ ॥
 राजा रिखि^७ दयाल जब जाना^८ । बोला विनय^९ वचन मुख आना ॥
 नाथ कौन गति होइ हमारी । साईं सों नहि नैकु^{१०} चिन्हारी^{११} ॥
वीं^{१२} वह कौन पुरुष करताइ । जिन जिउ दीन कौन संसार ॥
 का तिहँ रूप कहाँ तिहँ वासा । हम सों दूर कि हम ही^{१३} पास ॥
 श्री पुनि कछु अपनी सुवि नाहीं । वीं^{१४} हम कित आये कित जाही ॥
 आदि^{१५} कहँ हुते^{१६} कहँ अब भये । जीरन^{१७} हुते कि उपजे नये ॥
 कछु न समुझि परै निज वाना^{१८} । झूठी माया सों मन राता ॥

दोहा—हम से मूमा^{१९} मरजिया, कित जन्म^{२०} जग माहि ।

माया ही के मद मगन, नाच नाच^{२१} मर जाहि ॥६५॥

सिद्ध कहा राजा सुन^{२२} मोसो । निज यह मरम कहीं हीं तोसों ॥
 जो मुनि समुझि वान उर धारेसि । अगम वस्तु^{२३} कहँ^{२४} सुगम निहारेसि ॥
 साईं एक^{२५} वहै सब ठाल । गुन ताके तोहि चिन्ह सुनाळ ॥
 स्थिर निर्गुण अतन^{२६} अभेपा । चरम दिस्टि सों जाइ न देखा ॥
मुक्त^{२७} न बद्ध सहज परकासा । ज्यों देवसि^{२८} सब ठाँव अकासा ॥
 घट अघट अंतर कछु^{२९} नाही । सिमट^{३०} समाइ रहा सब माही ॥
 सोई सब खेलन कर खेला । ग्रीर न संगी आप अकेला ॥
 ये बहु खेल जो देहि दिखाई । चेतन सब महँ^{३१} रहा समाई ॥
 ता^{३२} विन करनी^{३३} कछु न होई । गुन श्रीगुन तिन्ह^{३४} लगै न कोई ॥

दोहा—ऐसे^{३५} सब रंगन सुना, पै^{३६} वह अपनै रंग ।

जो निज वाकी निरंग रंग, तासों भयो न भंग ॥६६॥

दोहा ६५-१—अवस्था (का०) । २—माया (का०) । ३—दीही (स०) । ४—
 कीहीं (स०) । ५—निरख (का०) । ६—विनू (का०) । ७—निवृक (स०) । ८—
 जुहारी (का०) । ९—धुन मोहि (स०) । १०—सो (स०) । ११—धुन (स०) ।
 १२—श्री (का०) । १३—कहाहि क (स०) । १४—जियरन होतक (स०) । १५—आता
 (स०) । १६—मोसे मरै कै (स०) । १७—ग्राए (स०) । १८—कोळ (स०) ।

दोहा-६६-१—कह (स०) । २—लेत (का०) । २—गम (स०) । ४—
 वहै एक (स०) । ५—अपन (कां), अविन (स०) । ६—निकट न मध्य (का०) ।
 ७—दीप सों इहि मुन्न अकासा (का०) । ८—पुनि (स०) । ९—चेतन सम समान
 (स०) । १०—मं (का०) । ११—तिहि (का०) । १२—करै (का०) । १३—वोह
 (का०) । १४—दोसै (स०) । १५—पय (स०) ।

[The text in this section is extremely faint and illegible.]

श्री १०००
१०००
१०००
१०००

१०००
१०००
१०००
१०००

अरु^{१३} व्योहार करम सुन मोसों । जानि सुपात्र कहीं^{१४} हों तोसों ॥
 तोहि दयाल दीन्ह वड़ राजू । तोहि^{१५} अस का बहुतन कर राजू ॥
 चीन्हक^{१६} चलेसि धरम पग धारें । राज करेमि सत वर्म^{१७} विचारें ॥
 होइ न दुखी राज^{१८} महं^{१९} कोई । राव रंक सुख मानहि दोई ॥
 राजा जब नियाव पर आवै । मील छांडि कै सत्त दिहावै ॥
 राव रक मरवर कै जानै । समुझि दूध पानी निज छानै ॥
 राजहिं^{२०} यह वूझहिं तहिं^{२१} वारा । कस नियाव^{२२} कीन्हैसि ससारा ॥
 जो रंकहि वरियार मतावै । तिहें^{२३} पलटै^{२४} राजा दुख पावै ॥
 राव रंक जिन्ह कर उपराजा^{२५} । तिन्ह^{२६} कं तैस रंक तस^{२७} राजा ॥

दोहा—राव रंक परजा सबै, राजा सब कर^{२८} सोइ ।
 यह सपने कै राज पै^{२९}, गरव करो जिन कोई ॥६६॥

कहे^{३०} अर्माय^{३१} वचन सुखदाई । पुनि कछु सिद्ध पुरुष मन ग्राई ॥
 हुलसि हाथ भोरी में^{३२} डारे । चार सुपक^{३३} फल सरस निकारे ॥
 तीन सदाफल एक जभीरे । अति सुंदर रस भरे रसीरे ॥
 डारे रहसि^{३४} नरेस कै भोरे । कह इच्छा पूरी^{३५} भइ तोरे ॥
 भए कृपाल वै अंतरजामी । दीन दयाल जगत कर^{३६} स्वामी ॥*
 जाही^{३७} तं परतीत निज आनी^{३८} । वचन विरछ, सीचा पुनि^{३९} पानी ॥
 सो तह^{४०} फूल फरा फल पाके । पै^{४१} फर तोहि मिलै ये ताके ॥
 तीन पुत्र जोधा बलकारी । वारी एक जगत उजियारी ॥
 चारों बुद्धिवंत वड़ भागी । साधु सुसील धरम अनुरागी ॥

दोहा—परमारथ स्वारथ सहित, सिद्ध सुधार^{४२} सँवार ।
 रहसि नरेस विदा कियो^{४३}, चल्पी कलेस^{४४} निवार ॥७०॥

१३—ओ (का०) । १४—कैहत हुं (का०) । १५—तिहि अर (का०) ।
 १६—जिहि (का०) । १७—मत (स०) । १८—देश (का०) । १९—में (का०) ।
 २०—राजहि तौहि पूछै (का०) । २१—तिन्ह (स०) । २२—न न्याव कीन (का०) ।
 २३—मुन (स०) । २४—पलटन (का०) । २५—अपरजा (स०) । २६—तिहि
 (का०) । २७—तिहु (का०) । २८—को (का०) । २९—पर (स०) ।

दोहा—७०—१—कहिए (स०, का०) । २—अमी (स०, का०) । ३—मुंह
 (स०,) । ४—सपक (म०) । ५—रहिस (का०) हंसि (स०) । ६—पूरण
 (का०) । ७—गुर (का०) । ८—जापर (स०) । ९—ग्राई (का०) । १०—वर्ण
 पाई (का०) । ११—त्रिफूल (का०) । १२—ते फिर (स०) । १३—बिलगारी (स०) ।
 १४—सिधार (स०) । १५—भयो (स०) । १६—लेश (का०) ।

बाहर मढी निकसि' जब आवा । कटक^३ लोग गम्मुख^१ ह्वै धावा ॥
 फर फर^४ बहु फरहिरा उठाये । गज तुरंग मुख आगन आये ॥
 रहस तुरै पैरा^५ धर पाऊ । चढा निरंद^६ बढा चित चाऊ ॥
 आनंद भरा न अंग अमाई । दूनो जग कहै' कीन्ह^७ कमाई ॥
 रण अस जीति नगर कहै चला । चौगुन बढै रूप छवि कला ॥
 आइ वार जब कीन्ह उतारा । तत खन जाइ मंदिर पगु धारा ॥
 आवा जहाँ वैठि पटरानी । विहँसा^८ देखि बहो विहँसानी ॥
 चारों फर भोरे महँ^९ नाए । श्री तिन^{११} के^{१३} गुण बरन सुनाए ॥
 सुनि रानी विलसी मुख सागर । रतन मिले मुख भेस^{१२} उजागर ॥
 दोहा—निज निहचै विस्वास कर, कीन्हैसि रहस बढाव^{१४} ।

मनो^{१०} पुत्र आजहि भयो, अस वाढो^{१५} नित चाव ॥७१॥

जब रानी भा^१ मुख अधिकारु । उठि मंजन क^२ कीन^३ सिगारु ॥
 सजि वारह सोरह धनि बनी । मुंदर अधिक रूप रंग सनी ॥
 भई निस^४ समो केलि कर भयऊ । विहंसत कंत गेज पर गयऊ ॥
 भर अंकवन गह कंठ लगाई । रहस दसन धन बीज^५ दिवाई ॥
 उपजी काम घटा^६ दुहुं शोरा । मिल भए एक उठै धनघोरा ॥
 श्रमजल^७ बूंद भूमक जहँ परी । पिक वनी चातक रट करी ॥
 नेवर मोर ऊँच कुहकाहीं । छुद्रघंट^८ भीगुर भनकाही ॥
 पौन हिलोर उठै भकभोरा । भूलहि दोऊ केलि हिंडोरा ॥
 मानहु^९ प्रकट आव^{११} चौमासा । चुवन छत^{१२} भए आरु जवासा ॥

दोहा—तरुनी जोवन समुद महँ, नाभि सीप जिहि भांत ।

स्वाति बूंद आवा चहै, हुलस^{१३} हिरदै भै सांत ॥७२॥

दोहा—७१—१—निकल (स०) । २—कटक (स०) । ३—ओहित वैठावा (स०) । ४—फिर हर नीह फिरहरा (स०) । ५—प्राण (स०) । ६—निरानंद (स०) । ७—की (का०) । ८—कियस समाई (स०) । ९—विहस (का०) । १०—ले (का०) । ११—तिह (का०) । १२—कर (स०) । १३—सहिस (का०) । १४—वधाव (का०) । १५—जानहु (का०) । १६—जिय वाढा (का०) ।

दोहा—७२—१—भयो (स०) । २—'का' मे नही है, कइ (स०) । ३—कीस (स०) । ४—तिस (का०) । ५—बीज (स०) । ६—कथा (स०) । ७—अमि जल भूमक भूमक तिह परै (का०) । ८—पिक चावै वनी चात्रग रट करै (का०), पग वनी चातर रति करी (स०) । ९—छदर कंठ (स०) । १०—माभ (स०) । ११—आयो (स०) । १२—जितहि जरै है (का०), जबत छुर भए (स०) । १३—हंस (स०) ।

सीपी स्वाति बूंद जव पावा । विघना जल सों मोति उपावा ॥
 रानी गर्भवति जव^१ सुनी । आनंद कीन्ह हुलसि^२ सब दुनी ॥
 पुनि पूरन जव भए दस मासू । पुत्र जन्म भा बढा हुलामू ॥
 गावै जुरि^३ मिलि सखी बधाई । थारहिं मोति निछावर आई ॥
 गनिक^४ आइ सो^५ धरी विचारी । ह्वै^६ है राज पाट अधिकारी ॥
 होइ लाग मुख रहस^७ बधावा । धरि^८ निसान भंडार लुटावा ॥
 बंधू^९ हितू टीका लै आए । जे आए पहिराइ^{१०} वैठाए ॥
 भई पुनि छठी धरावा नाऊ । तेइ^{११} दिवस न्योता सब काऊ^{१२} ॥
 कनक थार सब लाग जिमाए । पुनि सो^{१३} थार भंडार न आए ॥
 दोहा—राव रंक बंधू हितू^{१४}, जिन जेवां^{१५} ज्योंनार ।
 आइमु^{१६} भा लै जावही^{१७}, कनक^{१८} जगऊ थार ॥७३॥
 दुसरे वरप बहुरि^{१९} फिर रानी । गरभवंत भइ सवही जानी ॥
 दसएँ माम पुतर भा^{२०} आना । भा^{२१} तम रहस जो पहल बखाना ॥
 तिसरं पुत्र जन्म पुनि लीन्हा । तैसोइ^{२२} आनंद तिन्हकर^{२३} कीन्हा ॥
 तीन पुतर हुते^{२४} जो होने । तीनों सुन्दर सरस^{२५} सलोने ॥
 बड़ा सो बाध पेजनी पाऊ । चलै देखि बाढ^{२६} चित चाऊ ॥
 तुतरी बात कहै अति मीठी । हिया सराय चढै जव पीठी ॥
 मंभला^{२७} धरत^{२८} वुटेनु^{२९} आवै । गूं^{३०} गा करै सुरस उपजावै ॥
 नन्हका^{३१} परा पालने भूलै । आनंद होइ देख मन फूलै ॥
 अहा जो पुत्र विन धर अंधियारा । कृपा कीन्ह प्रभु भा उजियारा ॥

दोहा—राज गिरह सुखमय^{३२} भयो, गयो कलेस सब^{३३} दूर ।

यहै^{३४} खाग^{३५} सुख महै^{३६} हुती^{३७}, वही दीन विधि पूर ॥७४॥

दोहा—७३—१—भा (स०) । २—देग महि (कां०) । ३—निरमल (स०) ।
 ४—गनकहि (कां०), गनकहं (स०) । ५—मु (कां०) । ६—होइह (स०) ।
 ७—रहिम (कां०) । ८—डर (स०) । ९—बधुहिजू (कां०) । १०—फिर
 आय (स०) । ११—नीर्ये (स०) । १२—गाऊ (कां०) । १३—मु (कां०) ।
 १४—हलो (स०) । १५—जीवा (कां०) । १६—आइसमा (कां०) । १७—गावही
 (कां० स०) । १८—रतन (कां०) ।

दोहा—७४—१—श्रीर (कां०) । २—भै (स०) । ३—भै (स०) । ४—तैस
 (कां०) । ५—तिहि (कां०) । ६—भये हुते जू (कां०) । ७—सर्व (कां०) । ८—
 उपजै जिय (कां०) । ९—मजिला (स०) । १०—धनर (कां०) । ११—वटनियो
 (कां०) । १२—कान कान कहै (स०) । १३—नन्हा परै (कां०) । १४—पुत्रहि (कां०) ।
 १५—जो (कां०) । १६—दुख (स०) । १७—इही (कां०) । १८—खानिक (स०) ।
 १९—मै (कां०) । २०—हुते (स०) ।

चौथे गरभवंत भइ रानी । भा^१ तन कनक दुआदस वानी ॥
वस्त्र^२ ओट दीपक जन्^३ वारा । भा^४ इमि भांत गात उजियारा ॥
 छीन घटा^५ ज्यो सुरज समाई । घटा सजोत देइ दिखराई ॥
 तैसे^६ गरभ माझ वढ^७ वारी । भइ तिह^८ जोति मात उजियारी ॥
 ज्यों ज्यों चंद्र दिनह^९ दिन वाढै । त्यों त्यों अंग जोन्ह^{१०} दुति काढे ॥
 जब दिन पूज जनम भा तासू । निस महें^{११} भयो दिवस परकासू ॥
 दिया जोति देखत लज गई । जनु रवि किरन प्रकासक भई ॥
 भुइँ^{१२} पर चाद उवा जनु आई । जोत अकास दीन्ह दिखराई ॥
 देख जोत पून्या ससि घटा । कत यह और चंद्र परगटा ॥

दोहा—वहै सोच सोचत भक्त^{१६}, परा स्याम उर अंग ।

अजहं प्रगट सो दाग हिय, जग^{१५} जो कहै कलंक ॥७५॥

दोहा—७५—१—भय (स०) । २—विस्तर उवत दीप (स०) । ३—जसै वारु
 (का०) । ५—भय (स०) । ६—भीने पट (का०) । ७—तेते (स०) । ८—विध
 (का०) । ९—तिन्ह (स०) । १०—दिनै (का०) । ११—जोति दिव्य (का०) ।
 १२—ग्रह (का०) । १३—भै (स०) । १४—भुक्त (का०) । १५—जगत जु कहित
 (का०) ।

वीती रैन सूर परभातै^१ । निकसा तवहि^३ हुता रंग रातै ॥
 निरखत खिन वारी उजियारी । पीर^२ भयो तन पारत^४ पारी ॥
तिहि^५ की खटक ग्राज लीं मानै । जव निकसै^६ तव सो^७ गत ठानै ॥
जानीं^८ गहन कौन गुण परै^९ । रवि वह रूप मुरत^{१०} जव^{११} करै^{१२} ॥
 देखत^{१३} स्याम केस तिहि^{१४} सीसा । कीन्ह चहै जनु तिहि^{१५} की रीसा ॥
 तन^{१६} कारोंछ^{१७} लगाइ दिखायै । वहै देख जग गहन बताव^{१८} ॥
 चंद्र गहन तैसों^{१९} पुनि होई^{२०} । राहू^{२१} दोस देहू जिन कोई ॥
भा^{२२} तिहि रूप सदा तन^{२३} राहू । एकाहि दाग एक कहं दाहू ॥
 रूप देह^{२४} धर जनु ग्रीतरा^{२५} । रहै^{२६} न ग्रंत रूप कै करा^{२७} ॥
 ताकी छवि कहं कौन बखानै । ओहि कहं जो दरसै सो जानै ॥*

दोहा—इहि सरूप वारी भई, रूप रूप तिहि रूप ।

रूप रूप कहं उपम वह, वा मुख रूप अनूप ॥७६॥

दोहा—७६—१—परभाती (का०) । २—बैठ (का०) । ३—प्रेम (का०) ।

४—परी तयारी (स०) । ५—तिनकै (स०) । ६—निकलै (स०) । ७—केस (स०) । ८—जानहं कहन (स०) । ९—परी (का०) । १०—सरस (स०) । ११—चित्त (स०) । १२—फरी (स०) । १३—देखी (स०) । १४—तिन्ह (स०) । १५—तिनकै (स०) । १६—तिहि (स०) । १७—कारयो नछ (स०) । १८—उताव (का०) । १९—एसै (स०) । २०—सोई (का०) । २१—राहहि (का०) । २२—भै तिन्ह (स०) । २३—तिहि राहू (का०) । २४—दंभ (का०) । २५—तन (का०) । २६—वहै (का०) । २७—की कारा (का०) ।

*यह चौपाई 'का०' प्रति में नहीं है ।

छठी रैन भा^१ छठी बधावा । नीए^२ दिवस पुनि नावं धरावा ॥
 वदन रूप दुति दामिनि करा । इन्ह^३ तँ नावं दमंती घरा^४ ।
 सेवा रहै धाइ दो चारी । सीचहि दूध राज की^५ वारी ॥
 ज्यौ ज्यौ वढै चांद लों वारी । त्यौ त्यौ होइ अधिक उजियारी ॥
 भई जव^६ पाच वरख महें^७ वारी । सुदिन विचार पढ़न बैसारी^८ ॥
 पंडित केतिक दिनन^९ पढावा । पुनि विन पढा अरथ सब^{१०} आवा ॥
 पढ़^{११} विचित्र पंडित ह्वै आई । लागि गरंथ अपढे^{१२} अरथाई ॥
 पुनि पंडित जिन्ह^{१३} अरथ न^{१४} पावै । खोज ज्ञान^{१५} सो ताहि बतावै ॥
 पंडित चेटा^{१६} भा^{१७} चटसारी^{१८} । गुरु^{१९} हुइ उलट पढावा वारी^{२०} ॥

दोहा—अब ऐसी पंडित भई, जे पंडित तिहि देस ।

देखि बुद्धि ता नारि की, सबन^{२१} कीन्ह आदेस ॥७७॥

महाराज अब सोई वारी । नारंग फरी होइ रखवारी ॥
 धौ अस भाग लाग किहि माथा^२ । ते नारंग आवै^३ जिन्ह^४ हाथा ॥
 भई संजोग तरुनि ह्वै आई । दुइज पूज पून्यो दिखराई ॥
 पूरण भई^५ सोरहो करा । अंग जोन्ह दुति मुख निरमरा ॥
 निरखत वदन नैन सियराही । ससि मुख^६ अमी सु अवरन मांही ॥
 पर ससि पहें^७ सर जाय न करी । वह तो कलंकी यह निरमरी ॥
 ओ ससि दिवस एक निस^८ होई । यह जस अहै सरवदा सोई ॥
 पुनि जो राहु ससिकर दुखदाई । सो इन्ह^९ कै नित सरन रहाई ॥
 जीन^{१०} अमावस हिय^{११} ससि डरै । सो भइ^{१२} छाह पाय तर घरै ॥

दोहा—एही^{१३} लाज लजाइ मनु^{१४}, भा^{१५} पून्यो ससि छीन ।

जे ताके दुख दाय रिपु^{१६}, ते याके^{१७} आधीन ॥७८॥

दोहा—७७-१—भै ((स०) । २—तैई (का०) । ३—तैसो नाम (का०) ।

४—परा (का०) । ५—कै (स०) । ६—ज (का०) । ७—मै (का०) । ८—पैसारी (का०) । ९—वर्ष (का०) । १०—सो पावा (स०) । ११—पुनि (स०) । १२—पढी (का०) । १३—जिहि (का०) । १४—बुतावै (का०) । १५—इहि अपनां तिहु लागि सुनावै (का०) । १६—चिता (स०) । १७—भया (स०) । १८—चितसारे (स०) । १९—करहुइ (स०) । २०—भारी (का०) । २१—तिन्ह (स०) । २२—सर्वाहि (का०) ।

दोहा—७८-१ हाता (स०) । २—आवहं (स०) । ३—जिहि (का०) । ४—भई सु (का०) । ५—एक जेति मुख ससि (का०) । ६—मनु (स०) । ७—पै (का०) । ८—एक घोस (का०) । ९—तस (स०) । १०—उपाउ मिससरण (का०) । ११—जोन (का०) । १२—भये (का०) । १३—इहि (का०) । १४—इनहीं (स०) । १५—जनु (का०) । १६—भयो (स०) । १७—भीन (का०) । १८—'का०' मे नही है । १९—ताके (का०) ।

मेरे जान तिहूँ पुर माहीं । ताके रूप और धनि नाही ॥
 दुतिय नास्ति^१ एको जग प्रानू । कहि न जाय तिहि^२ रूप वग्नानू ॥
इन्दर^३ आदि तिनके अपछरा । सबको मन ताके मन हरा ॥
 नैन समुद्र^४ रतन जिन हेरा । होइ मन मीन^५ भेष तिन्ह केरा ॥
 जो पुनि गौर^६ मीर सां हेरे । कटिया^७ वरनि छूट किन्ह^८ केरे ॥
 दिष्टि बढी तो दौर^९ जन दीन्हैसि^{१०} । भपकत^{११} पलक डोर पुनि लीन्हैसि ॥
 भापसि^{१२} बसनी हरां^{१३} विछाई । जियत मुए पुनि छूट न जाई^{१४} ॥
 तरफ तरफ जिउ दीन तपाना^{१५} । इन्ह जारा^{१६} पर कहाँ छुटाना^{१७} ॥
 को अस जौन हेरि पुनि^{१८} हेरा । आप हिरावा मो जिन हेरा ॥*

दोहा—जो पुनि कवहु^{१९} अकास तै^{२०}, हेरे नैन फिराइ ।
 सर्व देव होइ किलकिला, गिरा^{२१} चहे^{२२} तहँ राइ ॥७६॥

दोहा—७६-१—नागत (स०) । २—तिन्ह (स०) । ३—इंद्रलोक जिहि की (कां०) । ४—तिहि को (कां०) । ५—समुद्रहि जन जिन (कां०) । ६—नैन विहस (कां०) । ७—कूर मूर (कां०) । ८—कितना (कां०) । ९—कह केरा (कां०) । १०—दो जन (कां०) । ११—दीनस (कां०) । १२—भपकत (कां०), चमकत (स०) । १३—चाहिस (स०) । १४—जरानन छाई (कां०) । १५—पाई (कां०) । १६—निवाना (स०) । १७—चारां (कां०) । १८—छुटाना (स०) । १९—फिरावा (कां०) । *जिन हेरा सो आप हिरावा (कां०) । २०—किधों (कां०) । २१—तिन (स०) । २२—करा (स०) । २३—अछ टहराई (कां०) ।

तिहि' का रूप कितनहैं घट व्यापा । भूला जगत देव मुन आपा ॥
जग मैं जीउ न जानी कोई । जग विन जीउ जीउ एक सोई ॥
सभा सभा महैं वहै कहानी । मुख मुन इही' प्रेम धुनि वानी ॥
जगत पतंग लैं चाहै परा । जहाँ वदन' दीपक वह वरा ॥
जगत' आस' राखै मन माही । धी' किहि' कै पूजै' किहि' नाही ॥
पै निदान पावै' वहै' कोई । जिहि' कै लगन' लखै पुनि सोई ॥
ताके' हाथ प्रेम मद प्याला । धी' केहि देइ करै मतवाला ॥
वाकी रीझ वही पै जानै । धी' केहिका' आपन करै मानै ॥
मिलवो' हाथ काहु कै नाही । सोई मिलै गहै जिन' बाहीं ॥
दोहा—चरन कवल ताकर चढ़ै, जापर होइ दयाल ।
समौ' परै आपन करै, रीझ देइ जमाल ॥८०॥
भाटिन जत्र अचरज यह कहा । मुनि राजा मोहित होइ रहा ॥
श्री सुनि नारि रूप कर भाऊ । लागेनि पेम वान उर घाऊ ॥
इहि' निज अटक खटक जिय परी । नल उर' नारि खोंच होइ श्री ॥
मन पंछी उरभा ओहि लासा । तन' तजि जाइ रहा तिहि' पासा ॥
मुना चहै निज रूप निकाई । मिस ही मिस फिर वात चलाई ॥
भाटिन एक वात कह मोमों । चतुर जान बूझत' हीं तोसों ॥
तैं सो नारि पदमिनि क्यों जानी । कौन कौन अंगनि' पहिचानी ॥
कह नख सिख सिंगार सब' वाका । जिहि' गति जीन अंग तैं ताका ॥
जौली' निज सरूप न मुनीजै । तौली' मन भरमक न पतीजै ॥
दोहा—नाथ जो मनरथ को रथी', श्री' स्वारथि पुनि सोइ ।
तऊ' सोच समझै विना, मन' परतीत न होइ ॥८१॥

- दोहा—८०-१—तिन्हक (स०) । २—घट घट (का०) । ३—मैं (का०) ।
४—वटै (स०) । ५—वहै (का०) । ६—जगत (स०) । ७—अस (का०) । ८—
धुनि (स०) । ९—किन्ह (स०) । १०—पहुंचै (का०) । ११—किन्ह (स०) ।
१२—पाइहि (का०) । १३—सो (का०) । १४—जिन्ह की (स०) । १५—
लिख लिखनी (का०) । १६—लागे (स०) । १७—धुनि (स०) । १८—धुनि (स०) ।
१९—किहि का (कां), का कहं (स०) । २०—कै (का०) । २१—मिलाय (का०) ।
२२—जिह (का०) । २३—समै (का०) ।
दोहा ८१-१—भय (स०) । २—ओ (का०) । ३—मन तलि (का०) । ४—
पूछी (का०) । ५—अंकन (स०) । ६—धी (का०) । ७—जिन्ह (स०) । ८—जो
लहि (का०) । ९—तौलहि (का०) । १०—रथ (का०) । ११—जो (का०) ।
१२—तौ मुनिज (का०) । १३—जीय (का०) ।

महाराज हिय' संक मिटाऊँ । चारों नारि बखान सुनाऊँ ॥
 एक हस्तिनी एक संखनी । एक चित्रनी एक पदमनी ॥
 पहले कहीं हस्तिनी नारी । जा महँ^३ हस्तिन^३ कै गति सारी ।
अंग सुभर^४ ग्रीवा अति छोटी । हया सो निपट कहै^५ कटि^६ मोटी ॥
 आवै तन गयंद सद वामू । ओ मन खोट धरै विस्वामू ॥
 ओ अहार बहुतै पुनि खाई । अछवाई गति जाइ न पाई ॥
 गज गति चाल ढाल पुनि ताही । चतत पंथ चितवै^७ चहुं खाही^८ ॥
 पिउ रति^९ सुख संतोख न करै । पुरुष पराए पर चित्त^{१०} धरै ॥
 डर अह लाज न मन महँ^{१०} आनै । विन आंकुस कछु संक न मानै ॥

दोहा—जो हठी हठ तव तजै, जव आंकुस सर खाइ ।

मोरै मुरै न मुख वचन, ए हस्तिनी सुभाइ ॥८२॥

दूजै^१ कही संखिनी नारी । सिध सुभाइन सान उतारी^१ ॥
 उर कटि^२ सुभर कहै^३ चीगुनी^४ । ने दोऊ ताही गति बनी ।
 बल विसेस ओ अल्प अहारी । चलै सिध ज्यों चाल तरारी^५ ॥
 राखै दिस्टि नयाइ तराही^६ । रुखे वदन हँसत मुख नाही ॥
 भोजन मास बहुत रुचि मानै^७ । प्रान^८ हनत^९ न संका आनै ॥
 मुख^{१०} मै उठै वसायँध वासू । जैसे बहुत दिनन करि माँसू ॥
रोश्रां होहि जाँव^{११} उर फैली^{१२} । सँक^{१३} न करै गरव गरवीली ॥
 वचन न सहै रोस^{१४} अति घना^{१५} । अपनै सिर पर और न गना ॥
 पिउ^{१६} उर केलि समै नख लावै । रसहूँ मै रिस रोस जनावै^{१६} ॥

दोहा—पर सिंगार देखै दुखी, सिधनि ज्यों गुरराइ ।

अपने ही मुख सों^{१७} मगन, ए संखिनी सुभाइ ॥८३॥

दोहा--८२-१—इहि (का०) । २—मै (का०) । ३—हस्ती की (का०) । ४—

कर पग सबर गरौं (स०) । ५—खीन (का०) । ६—कटु (स०) । ७—माँही (का०) ।
 ८—अति मुखहि (का०) । ९—जिउ (स०) । १०—मै (का०) ।

दोहा ८३-१—सुवारी (का०) । २—गति समर (स०) । ३—खीन (का०) ।

४—चोकनी (स०) । ५—धराही (का०) । ६—ततराहीं (का०) । ७—पराय
 (का०) । ८—हँसति (का०) । ९—मुख (स०) । १०—जा मुख (का०) । ११
 फली (का०) । १२—संग न करै संकर भली (का०) । १३—क्रोध (का०) ।
 १४—क्रीना (का०) । १५—पीव उर समै नप लावै (का०) । १६—जियावै (स०) ।
 १७—मै (का०) ।

तीजै कहूँ चित्रनी^१ नारी । ममिन^२ अंग नाँचे जनु ढारी ॥
 जे जे अंग जान गत^३ गने । मर्व^४ हाँहि ताही विध सने ॥
 वदन चंद तन जोन्ह^५ निकाई । जैसी^६ अपछर तस^७ अछवाई ॥
 महा विचित्र रूप रम भरी । बोलत रसना मीठी खरी ॥
 देखि सो चाल मराल लजाही । लीने भार डीने^८ दोड वाहीं ॥
 छिमावंत रिस रोस न जानै । हंसत^९ मन्वी सवन मन मानै ॥
 भोजन अल्प अस्त दोइ चाखै । पान पुट्टप सोवै रुचि राखै ॥
 पतिव्रत राखि करै पिउ सेवा । पिउ परमेवर^{१०} घरै नहि भेवा ॥
 पदमिनि सों दोइ गुन घटि होई । अर वनाव भाव सब सोई ॥

दोहा—चित्रनि^{११} कुमुदिनि के वरन, अर^{१२} मुवामना अंग ।

पदमिनि राती^{१३} कवैल^{१४} ज्यों, तन मुवास अनि संग ॥८४॥

चौथै कहूँ पदमिनि नारी । पदम सुगंध मूर^१ उजियारी ॥
 कवैल^२ वरन अरु^३ कोमल^४ अंगा । दास लुवुध डोलहि अनि मंगा ॥
 ना अति पातर ना^५ अति मोटी । मध्य भाव सुठि^६ लाव न छोटी ॥
 वदन कांति जनु पून्हों चंदा । सरवर कियै^७ चंद दुति मंदा ॥
 ससि ज्यों सोरह कला^८ संपूरी । पै^९ समि माँहि कलंक अघरी ॥
 ससि महे^{१०} सोरह कला बखानी । पदमिन सोरह अंगनि जानी ॥
 चार अंग दीरघ लघु^{११} चारी । चार नुभर चहुँ^{१२} खीन^{१३} संवारी ॥
 चलै हंस ज्यों चाल मुहाई । बोलै पिक नों लियै मिठाई ॥
 औ अति चतुर कंत चित चोरै । सेवा सों मुग्ध^{१४} कवहुं न मोरै ॥

दोहा—मन सुधा^{१५} भृकुटी कुटिल, नैन चपल^{१६} गति मीन ।

इन अगनि देखी^{१७} सो धनि, सो^{१८} पदमिनि परवीन ॥८५॥

दोहा ८४-१—चतरनी (का०) । २—समल (का०) । ३—अंग (का०) । ४—सर्वहि (स०) । ५—वने (स०) । ६—जोति लगाई (का०) । ७—जस (का०) । ८—तैसै (कां) । ९—दोलहं (स०) । १०—हस्ता (का०) । ११—पराए (का०) । १२—चतुर (का०) । १३—ओ निवासना (स०) । १४—रानी (का०) । क कोमल (का०) । * समिल = सुकुमार ।

दोहा ८५-१ सोरह (का०) । २—कमल (का०) । ३—ओ (का०) । ४—कौवल (स०) । ५—होइ न (स०) । ६—सों (का०) । ७—कीन्ह (का०) । ८—मुख (का०) । ९—करान (का०) । १०—ऊ सतान हियै (स०) । ११—मैं (का०) । १२—लखि (स०) । १३—ज्यों (का०) । १४—कहै (स०) । १५—मन नैक (का०) । १६—सुधा (का०), सोधा (स०) । १७—चंचल (स०) । १८—जु (का०) । १९—मघ (स०) ।

सोरह अंग कहे जे तेऊ । व्योरा कही सुनौ नर देऊ ॥
प्रथम केस दीरघ अति माथां । ग्री^१ दीरघ अंगुरि^२ छवि हाथां ॥
दीरघ^३ रेख ग्रीव तर सोहै । दीरघ नैन मैन मन मोहै ॥

लघु लिलाट दुतिया ससि जोती । ओ लघु दसन दिपहं जस मोती ॥
पुनि लघु कुच जंभरि^४ उनमाना । लघु नाभी मृग खोज समाना ॥
सुभर कपोल रूप रस भरे । सुभर भुजा सांचै जनु^५ धरै ॥
सुभर नितंब देख मन लोभा । सुभर जात्र जिमि^६ कदली गोभा ॥
नासिक खीन^७ वदन पर^८ वीना । खीन^९ अघर जनु कागर पीना^{१०} ॥
खीन^{११} पेट पातर जनु^{१२} पाना । खीन^{१३} लंक ज्यों सिव वखाना ॥

दोहा—पदमिनि पहिचानी सी^{१४} मै, इन अंगनहू^{१५} भूप ।

अव^{१६} वरनो तिहि^{१७} अंगवै^{१८}, अंग अंग के रूप ॥८६॥

प्रथम केस दीरघ घुंघरारे । ठाढै पांय^१ परै अति कारे ॥

कोमल^२ कुटिल वरन सटकारे^३ । सकपकाहि^४ जनु नाग विसारे ॥

जानो मलय^५ अंग पर अरे । लुरहि^६ आपु महें^७ लहरिन भरे^८ ॥

नाग^९ डसहि तऊ प्रान^{१०} न लेही । इन्हें निहारि लोग^{११} जी देहीं ॥

जानहु प्रेम फांद कै^{१२} धरे । तेहि^{१३} उरभि केतक^{१४} मन मरे ॥

अंचर टारि केस जव भारै । दिनहि अछत जग दीपक वारै ॥

दीपक वदन वार जनु धरा । सिमटि^{१५} अंवेरा पाछे परा ॥

धौ^{१६} पूर्ण्या देखत अंधियारी । ढके^{१७} घटै तो करी पैसारी ॥

जव^{१८} वह अघट चंद नहि घटा । तिह^{१९} दुख रोइ पुकारेसि^{२०} लटा^{२१} ॥

दोहा—किर्वा^{२२} वदन वारिज पर, भंवर जुरे बहु^{२३} आइ ।

उठि^{२४} न सकत रस विधि रहे, रहे लुभाइ लुभाइ ॥८७॥

दोहा ८६-१—ग्रीव पुख (स०) । २—अंभरहं (स०) । ३—दीरघ कर
वुन रेख तर (स०) । ४—छत्र (कां०) । ५—जिन (स०) । ६—जनु (कां०) ।
७—कहे (स०) । ८—प्रवीना (कां०) । ९—कहै (स०) । १०—वीना (कां०) ।
११—कहै (स०) । १२—जस (स०) । १३—कहै (स०) । १४—जु (कां०) ।
१५—अंगनजो (कां०) । १६—अघर (कां०) । १७—तिन (कां०) । १८—
टा (कां०) । दोहा ८७-१ पाई नि परिहि निकारे (कां०) । २—कोवल (स०) ।
३—सुठकारे (स०) । ४—सुखपकाहि (कां०) । ५—मिले (स०) । ६—अरहि
(कां०) । ७—मै (कां०) । ८—फरे (स०) । ९—नाका (स०) । १०—परानहु
कटही (स०) । ११—तक जीवन (स०) । १२—भांडकर (स०) । १३—तिनहि
(स०), तिहै (कां०) । १४—कैयक (कां०) । १५—समत (स०) । १६—वोह
(कां०) । १७—त्रह की घटी न किरों विसारी (कां०) । १८—जग (स०) ।
१९—तिन (स०) । २०—फिकारस (कां०) । २१—लुटा (स०) । २२—कदहं (स०) ।
२३—है (स०) । २४—उवद निसक (स०) ।

अर्द्ध वरनौ तिहि^३ माग निकार्ई । जमुना चीर गंग^३ जनु ग्राई ॥
 तिहि पर पैर जाय किन^५ पारा । अहा^५ सो मन डूवै मझधारा^५ ॥
 मुख रवि कर प्रकास जनु भयऊ । तकि^५ निसि हियो दरकि अस गयऊ ॥
 वदन चन्द जनु वैर^५ संभारा । कीन्हेसि खरग राहु ई फारा ॥
 पतरी^५ धार कौध जनु^{१०} कौधा । तर तिहि माग लाग रहे चौधा ॥
 कंचन जानु कसीटी लावा । तिहि ते अधिक भाव दिखरावा ॥
 इह^{११} सोभा सो लोक^{११} दिखाई । जनु निसि पाति जुगनुअन^{११} लाई^{११} ॥
 रूप सुभट जनु खरग निकारा^{११} । सरवर कर चहै तिहि^{११} मार^{११} ॥
 जो^{१०} पुनि मोतिन लड़ि^{११} बैसाई । ज्यों वग पांति घटा यवि^{११} आई ॥

दोहा—नैन चोर^{१०} निधि^{११} वदन छवि, चोर चहत जनु लीन्ह ।

सीस धरोहर^{११} चहर^{११} निस^{११}, मांग^{११} सुरंग^{११} मनु^{११} दीन्ह ॥८८॥

निरख लिलाट भाव जग सोभा । सरगहं^{११} चाद केर^{११} चित लोभा ॥
 मन^{११} तस^{११} होइ राख जिउ ग्रासा । मरि मरि जनम लेहि हर भासा ॥
 सोऊ^{११} एक दिवस तस^{११} होई । दुतिया बहुरि न^{११} पूजत^{११} कोई ॥
 जान गुनिहु^{११} गुन सीस नवावै । जग दुईज कर^{११} दरसन आवै ॥
 सुनी कि तिहि ललाट अस होई । नाहत चंद नवै नहि कोई ॥
 औ पुनि ईस^{११} सीस जो घरा । ममकि चंद मै^{११} भोई वरा^{११} ॥
 नाहत जगत जो ईस कहावहि । सो^{११} का सीस कलंक चढावहि ॥
 जाहि^{११} गुनह^{११} दिनकर दिन जरै । फिर फिर अगिन ताव महं^{११} परै ॥
 ताहि कनक तन वान बढावै । वरन ललाट वरन मकु^{११} पावै ॥

दोहा—जउ मग^{११} जोत ललाट पर, लागै तिलक जराव ।

सुक^{१०} उवा मनु^{११} दुइज मे, अचरज भया^{११} वनाव ॥८९॥

दोहा ८८-१—पुनि (कां०) । २—तिन्ह (स०) । ३—कनक (स०) । ४—
 तिन (कां०), तन (स०) । ५—छाऊ सुमन (कां०) । ६—विचधारा (कां०) । ७—
 मग (कां०) । ८—सरह संवारा (स०) । ९—पत्री (कां०), पुतरी (स०) । १०—जस
 (कां०) । ११—इन्ह (स०) । १२—लवक (स०) । १३—जगतु (कां०) । १४—
 वौहलाई (कां०), लाई (स०) । १५—निसारा (कां०) । १६—तिन (स०) ।
 १७—ज्यो चुनि (कां०) । १८—मांग भराई (कां०) । १९—मड़ (स०) । २०—जु
 (कां०) । २१—रंध्र (कां०) । २२—धरोहर (स०) । २३—छर (कां०) । २४—
 तिस (कां०) । २५—मागुसु (स०) । २६—रंगन (स०) । २७—मम (कां०) ।

दोहा ८९-१—निरप (कां०) । २—घेर (कां०) । ३—मग (कां०) । ४—
 निस (कां०) । ५—सुमर (कां०) । ६—मिस (कां०) । ७—मिलो (कां०) । ८—
 छवि (कां०) । ९—किहि (कां०) । १०—उर (स०), औ (कां०) । ११—ऐस
 (स०) । १२—तिहि (कां०) । १३—करा (कां०) । १४—सोंक लिये (कां०) ।
 १५—जानो (कां०) । १६—किहि (कां०) । १७—तन (कां०) । १८—मग (कां०) ।
 १९—जो जग (कां०) । २०—सोक (स०) । २१—जनु (कां०) । २२—
 भाव (कां०) ।

भृकुटि कुटिल सो वरनि न जाहीं । परवट वीजु^१ वसै तिन माहीं ॥
 उड़ नागिन सावक जिमि^२ आही । चितवन खिन उडि मनहि^३ डंसाहीं ॥*
 जिहि के उसै मंत्र नहि कोऊ । ऐसै कुटिल काल वे दोऊ ॥
 कोटि कटाछ करे इक धरी । जानां लहर लेहि विप भरी ॥
 सहजहि भीह तान जो हेरै । जो हेरै सो होइ अहेरै ॥
 धानुक वदन धनक जनु ताना । जो ताकत मारत तिहि वाना ॥
 एक कटाछ वान जो लावै । रोम रोम तन सहज गिरावै ॥
 अर्जन धनक वान जनु छूटै । छूटै एक सहंस ह्वै फूटै ॥
 अर्जन धनक काल कर घड़ा । रहै काल मूठी नित चढ़ा ॥

×

×

×

दोहा—राम हरा रावन जिहि, कृष्ण हरा जिहि कंस ।

ते वै धनक हु जे मनो, वही धनक कर अंस ॥६०॥

नैन मीन मोहन मद भरे । पे जनु प्रेम पियाला धरे ॥
 तिरछ चलत धूमत मतधारे । जिहि तन ठरहि चहै तिहि मारे ॥
 डोरे अंग तीप अनियारे । नैन कहीं किर्वा मन कटारे ॥
 सरवर रूप कमल तिहि मांही । अलि जनु वैठ वीच गुंजांही ॥
 उठै समुद्र लहर अस दोऊ । तिहि पर पार न पावै कोऊ ॥
 चंचल नैन छीन जनु आही । चीक चपल भय थिर न रहाही ॥
 चारा तिल कपोल पर^१ लरे । द्वे^२ पंजन जानो रिस^३ भरे ॥
भर^४ भर जोर^५ न छूटै^६ काऊ । जद्यपि मुअटा^७ करै वचाऊ ॥
 वाग^८ चपल^९ हय^{१०} मानत नाही । जानहु उछर सरग चढ जांही ॥

दोहा—दीरव अनियारे^१ मुवर^२, सुन्दर विमल मुनाज ।

मुख छवि दधि वारिधि^३ मनो, नैन सरूप जहाज ॥६१॥

दोहा ६०-१—मीव (का०) । २—जनु (का०) । ३—मनहु (स०) । ४—
 दुसाहीं (स०) । *‘स०’ प्रति में इसके पश्चात् की सात चीपाइयाँ, संख्या ६० का दोहा
 और उसके आगे की छः चीपाइयाँ नहीं हैं ।

दोहा ६१-१—मग (का०) । २—मानो वजि खंजन (स०) । ३—रस (स०) ।
 ४—फिर फिर (का०) । ५—जुरहि (का०) । ६—छूटाहि (का०) । ७—सूटा
 (का०), सोता (स०) । ८—ताक (का०) । ९—चल (का०) । १०—हिय (का०) ।
 ११—अति भारी (का०) । १२—भरे (का०) । १३—कोट कटाछ समाज (का०) ।
 १३—ता मध (का०) ।

का वरनी वरुनी अनियारी । वनी घनी कारी^१ कजरारी ॥
 फूले कंवल होइ रखवारी । सिर^२ चहुं ओर वार^३ भये वारी^४ ॥
 काम वधिक जनु खंजन घेरे । खोंचा ठाठ कीन्ह चहुं फेरे ॥
 हूनौ^५ अनी जूझ जनु जोधा^६ । साधि वान ठाढे भये क्रोधा^७ ।
 जो मन तहाँ जाइ सो जूझै । जूझ मुसे^८ कोउ वात^९ न वूझै ॥
 जाकर काल आइ नियराई । ताकर दिस्टि वरुनि पर जाई ॥
 कोउ^{१०} न जिया वरुनी जिन्ह दीठी । अर उर^{११} वान उठ^{१२} चलि^{१३} पीठी ॥
 लीजै काढ लाग जो वाना । ए^{१४} अति अकढ^{१५} कढे ले प्राना ॥
 तन सों निकस^{१६} जाहि पुनि प्राना । तऊ न^{१७} निकसै प्रान ते^{१८} वाना ॥

दोहा—देखै वीधत कथन^{१९} का^{२०}, सुनि वीध्या^{२१} संसार ।

जौने सुनी सो विध रहा, कहि न जाइ विस्तार ॥६२॥

नासिक पीन^१ खरग कै धारा । मन तिहि परत होइ दो फारा ॥
 ससि पर चंप कली जनु राखी । मलय^२ पुहुप घोंहू^३ का साखी ॥
 जो पुनि पहरै फूल जराऊ । कहि न जाइ कछु तिहिकर^४ भाऊ ॥
 सुअटा अधर विव तकि छका । ध्यान^५ रूप रखवारी लगा ॥
 सुवा ओर का वरनी तासू । वह न^६ वास यह पुहुप सुवासू ॥
 जदपि सुवा^७ ओर अति लोनी । तऊ कठोर न तिहि सर होनी ॥
 वह कोमल जनु पुहुप बनाई । पुहुपहुं तै अति कोमलताई ॥
 वन वन सुवा फिरै तप^८ साधै । मुँदि मुँदि आँखिन अलख अराधै ॥
 नासिक वरन ठौर मकु^९ होई । पीर जो^{१०} भयो काट दुख सोई ॥

दोहा—वनी प्रकासक वदन पर, इमि नासिक चित्त चोर ॥

अमी स्वाद मनु^{११} ससि कुतुर^{१२}, कीर^{१३} निकासी ठौर ॥६३॥

दोहा ६२-१—कनी (स०) । २—सुरभो (का०) । ३—तान (का०) ।
 ४—नारी (का०) । ५—द्वितीये (का०) । ६—ओढा (स०) । ७—ओघा (का०),
 जोधा (स०) । ८—भुये (का०) । ९—न्याव (स०) । १०—कोइ न जियाइ परी
 जिहि (का०) । ११—अर (का०) । १२—अपै (स०) । १३—जल (स०) ।
 १४—(का०) । मे नहीं है । १५—आढ (स०) । १६—यह अर्धाली (का०) ।
 मे नहीं है । १७—(का) । मे नहीं है । १८—सो (कां) । १९—कडन (का०) ।
 २०—गा (का०) । २१—बंधा (का०), वेधा (स०) ।

दोहा—६३-१—कहै (स०) । २—तिलकर (का), मलिम (स०) । ३—व
 (स०) । ४—तिनकर (स०) । ५—हंसा मैंन मारै जनु (स०) । ६—निवास तिहि
 (का०) । ७—सोह (स०) । ८—तव (स०) । ९—गम (का०) । १०—वेसर मुफर
 गत दिखराई (का०) । ११—जनु (का०) । १२—पिय (का०) । १३—सूवा (का०) ।

अधर सो अमी भरे रस^१ राने । विन तँवोल रंग सुरंग चुचाते ॥
 कुसुंभ रंग सर कीन्ह न जाई । कहीं मजाठ औप अस पाई ॥
 विव लजाइ जाइ वन^२ फरे^३ । विद्रुम सकुचि समुंद्र महि दुरे ॥
 जस रवि उदै^४ होइ परभाना । ताहू तँ अधरन रंग राता ॥
 पातर निपट पान हुते कीन्हें । फूल हांहि पानन रस भीने ॥
 दूहुं विच रेख सु जाइ न पाई । जनो^५ डाभ मों चारि वनाई ॥
 जनु विद्रुम महं भई दरारा । श्री जोरा^६ सो रही विचधारा ॥
 छीनी^७ लीक भाव अस^८ देखा । कनक^९ पत्र पर इंगुर रेखा ॥
 बोलत अधर जान दांड जाही^{१०} । नाहिं विवि^{११} चीरे^{१२} जनु नाही ॥

दोहा—वदन साज विधि^{१३} देखि छवि, परचो विरह बस जाइ ।

भूनि गयो^{१४} अधरन मनी, चीर न सवचो वनाइ ॥६४॥

वरनि न जाइ दमन दुति भाऊ । विधि^१ जरिया जनु जरै जराऊ ॥
 हीरा छोल छाल जनु गहे । रंगे तँवोल रतन नग चढ़े^२ ॥
 जोहर^३ सुरंग स्याम रंग रेखा । विच विच सीप^४ सो वने विसेखा ॥
 विद्रुम वितान^५ रतन जिमि पहरै । काम जोहरी पांतहि धरै^६ ॥
 बोलत नकु जो देहि दिखाई । त्रिविध चमक चित लेहि चुराई ॥
 विहसत^७ जगत होइ उजियारा । जनु सभि माहं कांध लहकारा ॥
 जाकी दिस्टि परी वह कांधा । नैनन^८ लागि रहै तिन्ह^९ चींधा ॥
 पाहन रतन हांहि सो^{१०} जोती । हांहि सजोत न जोत जो माली ॥
 मेरे जान विहंगि जब बोलै । वहै चमक चपला ह्वै^{११} डोलै ॥

दोहा—देखि दमन दुति रतन दुरि, पाहन रहै समाइ ।

तिन्ह^{१२} लाज चपला मनी, निकसत^{१३} श्री छपि जाइ ॥६५॥

दोहा—६४-१—रंग (स०) । २—विनु (स०) । ३—पहरे (स०) । ५—परे (का०) । ५—गौरावै (स०) । ६—जिन्ह (स०) । ७—श्री वह जुरा सो हियै विच धारा (स०) । ८—चुन्ही (का०) । ९—इमि (स०) । १०—कतक (स०) । ११—नाही (का०) । १२—विन (स०) । १३—दोइ (का०) । १४—यहु (स०) । १५—कियो (स०) ।

दोहा—६५-१—वड़ (स०) । २—वढ़े (का०) । ३—जोगा (स०) । ४—सेत (स०) । ५—जना पर तनु भरे (का०) । ६—नरे (का०) । ७—भानत (स०) । ८—तिनहं (का०) । ९—वहु (का०) । १०—ति (का०) । ११—भइ (स०) । १२—तिहि (का०) । १३—निकस नैक (का०) ।

रसना वेद अरथ कै कीली । औ बोलत कत मधुर रसीली ॥
 वीन तार तिहि सुरहि न पूजा । उपमा जोग और को दूजा ॥
 कहै जो वेद अरथ अरथाई । सुरता सरवन सदा ह्वै जाई ॥
 सरवन^१ वचन अमी होइ परहीं । रोम रोम तन सीतल करहीं ॥
 मुरभी वेल पर्यो जिमि^२ पानी । त्यों^३ तन पुलकि^४ उठै सुनि वानी ॥
 सुनन^५ आस^६ मधुर रस वैन^७ । निकट^८ मिरग होइ उतरे नैना ॥
 पिक सुनि वैन लाज^९ भइ स्यामा । लीन्ह नगर तजि वन विसरामा ॥
 वस्ती बोल न सकै लजानी । वन महँ कुहक सीख सो वानी ॥*
 वकि छकि थकि हारी नही आई । तव निदान लाजहि छपि जाई ॥
 दोहा—स्वांत बूद तिय^{१०} वैन^{११} सुन, चातक मिटी पियास ।

सवन सीप ह्वै अवतरे, वहाँ^{१२} पास तिहँ आस ॥६६॥
 कंवल कपोल गोल अति वने । विमल^१ सुभर सोभा दुति सने ॥
चमकहि वदन^२ देइ दिखराई । चित^३ तहँ चलत रपट पै जाई ॥
 दरपन ओप मांज जनु धरे । तरु जाने^४ चमकत अति खरे ॥
 जनों कंवल दल गेद वनाई । छुए न कोउ अछूत अव ताई^५ ॥
 धी^६ को भागवंत दुनियाही^७ । तिह कांरन अछूत अवताही ॥
 सेव सुरंग प्रेम रस भरे । जनु दाडिम फलसों मिलि फरे ॥
 तिल कपोल वाएँ पुनि परा । तिन तिल जगत तिलन तिन करा ॥
 जिन तिल देख परा तलवेली । तिल तिल तलफत जाइ न छेली ॥
 कहि न जाइ तिन रूप रिभाँना । कंवल वेधि उरभा अलि छौंना ॥
 दोहा—तिल कपोल पर कोटि छवि, कहि न जाइ विस्तार ।

वदन दीप^८ छवि^९ पतंग मन, देखि^{१०} जरा भै छार ॥६७॥

दोहा—६६—१—सुरतन (स०), अवे (कां०) । २—जनु (स०) । ३—यों (स०) । ४—फल (कां०), पुलह (स०) । ५—सुन (कां०) । ६—अस (कां०) । ७—भीना (कां०) । ८—मृग अवतरे निकटुय वीना (कां०) । ९—लजाइ (स०) । * उत्तर पद 'कां०' मे नही है । १०—तिह (कां०) । ११—वन (कां०) । १२—दुहाँ कूल तिन्ह (स०) ।

दोहा—६७—१—सभल (स०) । २—सोभित (स०) । ३—अलव अलक दुनि देह दिखाई (कां०) । ४—चितवन (कां०) । ५—धून चाह तें चीकन खरे (स०) । ६—वराई (कां०) । ७—कुंह (स०) । ८—दुनिया अवताई (कां०) । ९—मुदीप (कां०) । १०—वरनन मनो (कां०) । ११—परत पतंग (कां०) ।

सरवन सीप जनु कनक बनाए । दिपहिँ दीप से वारि घराए ॥
 ससि जनु दुहँ हाथ लै दिया । शिव कुच' पूजन कहँ मन किया ॥
 दुहँ दिस खूँट' जराऊ धरे' । खटकहिँ हिये डीठ जहँ परे ॥
 रतनन जगमगात होइ रहा । जानहु चंपक' चंदहिँ' गहा ॥
 जो सुभाइ अँचर गहि डारै' । ससि दुहँ ओर काँव लहकारै' ॥
 मनि परकास वीरी' उजियारी' । बेनी नाग उगल मनु डारी ॥
 जो मन'° तहाँ दिस्टि मिल गयऊ । डसा सो'° नाग काल बस भयऊ ॥
 सूक'° सनीचर सवन सुहाए । ससि सों वाद करन मिलि'° आए ॥
 तोहि'° तें अधिकहिँ'° हम सुख जोती । तू निसीठ'° हमरे गज मोती ॥

दोहा—मुक्ता'° खूँटी नग जरी, सवन सीपियन्ह'° भाय ।

नग कंचन'° मनु'° भेंट दै, मिले नैन'° करै जाय ॥६८॥

दोहा—६८—१—सेव पंज रस कहि (का०) । २—खोट (स०) । ३—जरी (का०) । ४—चांद (स०) । ५—चंचहि (का०), गच—पचहं (स०) । ६—तारा (का०), हरै (स०) । ७—ललकारै (स०) । ८—पुतरीं (का०) । ९—जनु आई (स०) । १०—बल (का०) । ११—नाग (का०) । १२—सोक (स०) । १३—को (का०) । १४—दुन्ह तौं (स०), घाँ ताहि (का०) । १५—अधिक कि (स०), अधिक क्रिहिँ (का०) । १६—ती सरूप न भयो किह मोती (का०) । १७—खोटें (स०) । १८—स्यां जरे (का०) । १९—सीप यह (का०) । २०—कंचन (स०) । २१—जनु (का०) । २२—जलन (स०) । २३—आइ (स०) ।

पुनि^१ का वरनी^२ चिबुक डिठीना । जिन मिल दीठ फेर नहीं औनां ॥*
 जिन^३ वह देखि सो देखि हेराना । तजि आपा तिहि^४ माहि^५ समाना ॥
 सहज सुभाइ अवन^६ विनु^७ बना । ज्योइ^८ बन्या त्यों जाइ न भना^९ ॥
 एक अनेक रूप होइ रह्या । वह वानिक^{१०} कवि^{११} जाइ न कह्या ॥
 जानहु वदन दीप उजियारा । तिहि तर सिमटि^{१२} रहा अंधियारा ॥
 कैधो^{१३} राहु^{१४} रकत^{१५} ससि चाखा । काढ करेज पाइ तर राखा ॥
 कैधों कवैल कंदला माही । छकि अलि छौन परा मुधि नाही ॥
 कैधों रूप कूप^{१६} रस आसा । पेम दग्ध मन घसा^{१७} पियासा ॥
 किधों पेम पासा^{१८} कर दाऊ । तिहि जग पिउ हारै का जाऊ ॥
 दोहा—चिबुक गाढ^{१९} छवि निधि सदन, ससि उर तारन तोर ।
 तिल^{२०} ता^{२१} माझ^{२२} मनोज मन, घस्यो^{२३} रसिक चितचोर ॥६६॥

दीरघ गिव^१ भायन^२ अस काढी । सुभर^३ पुछार भई जनु ठाढी ॥
 जनु कस^४ वाग तुरी गहि लीन्हा । तमचुर चहै सवद अस कीन्हा ॥
 हिया काढ जनु ठाढ परेवा । कै मुक उचकि^५ भयो फर लेवा ॥
 जनो प्रेम मद भरी सुराही । गहि^६ नवाइ रस लै सो^७ चाही ॥
 सहजहिं कर्यी लटक जो होई । लोट परै देखै जो कोई ॥
 जनु संगीत नाच यह गरा । ग्रीव^८ मान आना अवछरा ॥
 फुनि^९ तिहि ग्रीव परी तर रेखा । घूटत पीक प्रकट सब देखा ॥
 तहा मुकत^{१०} लर छरा जो होई । तरक^{११} भरम राखै सब कोई ॥
 जो ढरि अलक ग्रीव पर आई । सो वनाव निज वरनि न जाई ॥
 दोहा—जनु मयर गहि अहि अलक, देख^{१२} तिलक^{१३} हियथार ।
 परवत^{१४} कुव पूजा करन, चला^{१५} भेट लै हार ॥१००॥

दोहा—६६—१—फुन वरनू वह (का०) । * 'कां०' मे उत्तर पद नहीं है ।
 २—जिहि बी (का०) । ३—अपन (कां०) । ४—फुन (कां०) । ५—ज्योरे (स०) ।
 ६—हना (स०) । ७—वान (कां०) । ८—जिन (स०) । ९—समत (स०) ।
 १०—कैहन (स०), कहन (कां०) । ११—दाह (कां०) । १२—वरकत (कां०) ।
 १३—कोप (स०) । १४—धमा (स०) । १५—वासा (कां०) । १५/१—गां (कां०) ।
 १६—गल (स०) । १७—तिहि (कां०) । १८—वात (कां०) । १९—विहस (स०) ।
 २०—रस छोर (स०) ।

दोहा—१००—१—करयों (स०) । २—भांटा (कां०) । ३—संभर पछारि
 (कां०) । ४—कै जनु तुरी वाग (कां०) । ५—अचक (स०) । ६—डार । ७—
 चाही (कां०) । ८—समझहि ग्रीव (कां०) । ९—गर न्यो (स०) । १०—पुति
 (स०) । ११—निकट अछरा (कां०) । १२—रतन (स०) । १३—रेख (स०) ।
 १४—मुलक (कां०) । १५—टप टप (कां०) । १६—चर्च (कां०) ।

सुभर भुजा साँचै जनु धरै । कुंदन कार मीन मनु पहरे ॥
 कंचन दंड देहि अति सोभा । चीकन इमि कदनी जस गोभा ॥
 सर पीनार करन जव लागी । कं कं वेह मैन हिय दागी ॥
 तिहि दुख निसि दिन अजहुँ पुकारै । आपु पुकारै आपुन हारै ॥
 सुरज क्रांति भुज कवन हथोरै । रात जनो रुहिर सो वोरै ॥
 श्री अंगुरी सब रुहिर चुवाही । बरिन रुहिर न पियत अवाही ॥
 पुनि पहरे ससि नखत अंगूठी । जनु पावक राखसि गह मूठी ॥
 जो जिउ काढ़ हाथ पर लेई । सो तिन हाथन दिस्टि करेई ॥
 पहरे बाहू टाड सलोने । डोलत बाहू डुलै गति लोने ॥

दोहा—देखि सलोनी डुलन गनि, जो डोलन बाहूँ डुलाहि ।

जो अडोल ओँ अडिग जग, डोलहि श्री डग जाहि ॥१०१

हिय सरवर कुच अंगुज करै । संपुट वंधै करै खरै ॥
 निकसत किरन वदन ससि दई । निपट कठोर सकुच होइ गई ॥
 ऊपर स्याम अधिक छवि छाई । ते अलि छीन बैठ जनु आई ॥
 धरै मैन दोड लटू खिर्नाना । ऊपर स्याम लगाइ दिठौना ॥
 ज्यों मनोज पिटिया अत्र तानी । फिरी दुहाई सब तन लाली ॥
 जोवन जोर चढत हिय आवहि । आपु न नवहि जगत कहं नावहि ॥
 निपट अनीति करै जव लागी । बांधे मैन लीन्ह वर आंगी ॥
 वालापनै कीन्ह निकसाई । खोल मंजीर धरे श्रीवाई ॥
 मैन जो पानिप मीच वारी । नारंग फरै भई निकसारी ॥

दोहा—अनख पेम चीगान काँ, हिया खेल मैदान ।

कुच मनोज साजे तहाँ, मनु गति गेद निसान ॥१०२॥

दोहा—१०१—१—डारी (कां०) । २—गरा तै मानो भारी (कां०) । ३—चटकन (कां०) । ४—कदली की अस (कां०) । ५—सिर मुभाइ कर (कां०) । ६—करकै पीठ नैन (कां०) । ७—उरभ (कां०) । ८—उवा नगर सुठ (सं०) । ९—मानो किरण चाद की छूटी (कां०) । १०—हरई (कां०) । ११—नाहि (कां०) । १२—अस अधिक तेउ (कां०) । १३—डोलि डोलि जयं ज हि (कां०) ।

दोहा—१०२—१—दीन (कां०) । २—कीन (कां०) । ३—बैठहि (कां०) । ४—लाई (कां०) । ५—वर सागे (कां०) । ६—अभी पानी धी (कां०) । ७—अलक (कां०) । ८—हिय (नं०) । ९—चाव (सं०) । १०—मात (कां०) ।

पेट पान पातर सुकुंवारू । श्री पानी धन कर अहारू ॥
 देपत सबन सचिक्कनि सोभा । मन चल रपट परे ह्वे लोभा ॥
 रपटत पिन^२ सुभुवंगम कारी । रोमावली उसी^३ हत्यारी ॥
 ताके विप पुनि जिया न कोई । जो उन उसा वसा चल सोई ॥
 जो कदाचि नागिन सों वांचा । ती ठक^४ रूप देखि तिहि^५ नांचा ॥
 जीने^६ ठांविहि त्रिवली वाढी^७ । ऊपर मेरु पयोधर घाटी ॥
 बैठि रहै तिहि^८ ठांवि त्रिसासी । लिपटै^९ वहै नागिन नगवासी^{१०} ॥
 ततखन^{१०} डारि फासी कै मारे । नाभि कुवा गहिरै^{११} गहि डारै ॥
 बहुत हनी^{१२} कुछ सरह^{१३} न हारी । न्याव न वहाँ^{१४} होत बटपारी^{१५} ॥

दोहा—कालिंदी रोमावली, त्रिवली औघट घाट ।

नाभि भंवर मन परयो तहं, कहु निकसै किहि वाट ॥१०३॥

कर^१ जु^२ दीठ पीठ पुनि पाछे । वैरिन^३ उलट चली जनु काछे ॥
 जाके^४ दीठ परी वह पीठी । गिरै^५ पीठ दरसी तिन्ह दीठी ॥
 जो देखे सो पीठ कै जानै । पीठ सन्धप दीठ जग मानै ॥
 बेनी पुनि जो पीठ पै परी । कालिंदी गिर^६ सो जनु^७ ढरी ॥
 कै तन^८ मलय वास तिहि आसा । नाग आइ^९ लिपटे तिहि पासा ॥
 मिले मूल^{१०} माया धन वाढी । सदा सो नाग रहै फन काढी ॥
 सदा कंज^{१०} ताके मुप^{११} मांही । जुगल^{१२} खंज तहां केलि कराही ॥
 निरखि सो बेनी नाग निकाई । नाग पतार दुरै सब जाई ॥
 जद्यपि फनहि काढे दिखरावै । पै ते कंज खंज कहं पावै ॥

दोहा—विप अगोर^{१३} भौहन लिये, मनि^{१४} मानहु^{१५} हरि लीन ।

अहि बेनी के मूर सों, राख सरन जनु दीन ॥१०४॥

दोहा—१०३-०—औपाली (स०) । २—काहन सुभूकन (स०) । ३—उसै (का०) । ४—थकि (का०) । ५—तिन्ह (स०) । ६—जो (का०) । ७—साही (स०) । ८—लेन (स०) । ९—वग- वासी (का०) । १०—ते गुन दुर फांसगी डारै (का०) । ११—घर वर कह (स०) । १२—हठी (का०) । १३—सुघ न सिभारी (का०) । १४—देइ (का०) । १५—बपारी (का०) ।

दोहा—१०४—१—गीर (का०) । २—यह जु (स०) । ३—अपछरा (का०) । ४—करै बैठि (स०) । ५—कर (स०) । ६—मनु (स०) । ७—की तिन मिले (स०) । ८—वसा सो वसा बिसवांसां (स०) । ९—मोद माना मन वाधे (स०) । १०—गंजत के (का०) । ११—मन (स०) । १२—जो कुल (स०) । १३—अकूर (का०) । १४—मन (का०, स०) । १५—माथे (का०) ।

वना लंक तस जाइ न कहा । केहर देखि बैठ वन' रहा ॥
 वसा न पूज' पियर भयी गाता । लागेसि विरह कीन्ह' घर छाना ।
 मसरी करि अहार नित रहै । विखरि वचै विरह दुख दहै ॥
 सब तन रोम रोम त्रिप वसा । तिह अनखन' मानुन' कहं डमा ॥
 चलत लंक लचकै जिमि तागा । जनु दुइ आव वीच' तिह' लाग ॥
 लचे' लंक भूमि पग दिए । छुद्रघंट भनकै कटि' लिए ॥
 निपट खीन' कछु वरनि न जाई । ससि मूठी महं रहा समाई ॥
 मन तहं जात खीन होइ जाई । निज कटि की गति जाइ न पाई ॥
 जीने देख खीन भा मोई । चीन्हिस' जमि लगन जिन्ह होई ॥

दोहा—विधि काहू दीन्हिं नहीं, चारों जुग यह लांक ।
 भरी' साख यह' पांचन, लांक चार को आंक ॥१०५॥

नाभि मो निपट लाज कै ठाऊं । हीं अबला केहि भांति वताऊं ।
 पै जस काछ' काछ भई खरी । नाचा चहाँ लाज कै परी ॥
 मिरग खोज उपमा कित दीजै । जो' कबहुँ कहियै न कहीजै ॥
 जोवन समुद्र सीपि तिहि मांहीं । स्वाति वूंद रस पाइसि नाहीं ॥
 जिन्ह' हत लिये स्वाति कर वूंदा । टिकत' न अजहुँ संपुट मूंदा ॥
 कवल कली पं सुरज न देखा । मुख वाँधे निकसी तिन्ह रेखा ॥
 वों को सुरज भाग को बली । जाके किरन खिलै सो कली ॥
 घों को भवर वीधि रस माने । जीवन जनम सुफल कै जानै ॥
 अति सुवास' ज्यो पुहुप न वासी । पाइ वास अलि भये कैलासी ॥

दोहा—गह' कैलासी कह मिटै, जगत भंवर होइ भूल ।
 वों' काके सेज्यां परै, कवल' कली के फूल ॥१०६॥

दोहा—१०५-१—तव (कां०) । २—पवंज (स०) । ३—भेप (स०) । ४
 लेई (स०) । ५—देई (स०) । ६—आखन (स०) । ७—मानसहिं (कां०) । ८—
 (स०) । ९—नहिं (स०) । १०—चलं जुलंक पुहम (कां०) । ११—गति (कां०)
 १२—कहं (स०) । १३—अनचीन्ह चीन्ह सकस (कां०) । १४—इही (कां०),
 (स०) । १५—तावचन की (कां०) ।

दोहा—१०६-१—काक्ष काक्ष (कां०) । २—जिउ को होन खेर तो कीजै (स०)
 ३—जिहिं हति गई (कां०) । ४—निकट (कां०) । ५—सुवास (स०) । ६—
 (कां०) । ७—बहु (म०) । ८—सुकमन (कां०) ।

सुभर नितब सो कोमल परे^१ । मलियागिरि लोंदा करि धरे ॥
 सोभित जाघ चलत गनि^३ ढली । ऊपर सुभर ढरारी^६ भली ॥
 तिन्ह न पूजियै कदली गाभा^५ । जो सिर पाइ कोन्ह तो^७ का भा ॥
 चाल मराल देखि परहँसे । बसनी छाड़ि सरोवर बने ।
 गज वन^९ मरहि तिसूरि तिसूरी । धुनहि सीस औ डारहि धूरी ॥
 चरन कँवल कोमल अति बने । राने ज्यों मेंहदी रंग सने ॥
 मंजन लागि जल महं जव धरे । जान सो जल जावक ग्रम परे ॥
 रहै पटम्बर^८ पर दिन राती । कै सो ध्यान राजन^९ की छाती ॥
 चमकाहि चूरा अनवट लोनी । सुन विछियनि^{१०} धुनि बोलहि मौनी ॥

दोहा—तिन्ह चरनन उरभा जगत, रहा आस जिय लाइ ।

सो पुनि धौ^{११} का पर धरे, रोज न जानी^{१२} जाइ ॥१०७॥

सुन ससि रूप भूर मन वसा । प्रेम गहन गाईं कर गमा ॥
 केस सुग्रीव फांद ह्वै परै । प्रेम फंद परि बहुरि^१ न टरे ॥
 बेनी नाग कोप धरि खावा । श्रीग^२ अमी मो अघर बनावा ॥
 मुनि दुनिया ससि उआ जिलटू । तिन्ह दरमन कारन भा लाटू ॥
 वाके नैन ज्यो गहे कटारा । लागि हियै महं भये^३ दुमारा ॥
 नासिक खरग घाव उर कीन्हा । औ मूत्र लोन लोन निहि दीन्हा ॥
 दसन^४ भाव बरना जस कौधा । सोई लाग रहा^५ चित चीन्हा ॥
 श्रीउं लटक लोटन मन कीन्हा । भीह^६ भवाय^७ चाक जिउ दीन्हा ॥
 कुच हिय मै डंवर^८ ह्वै परै । है जो कठोर कठिन ह्वै^९ अरे ॥

दोहा—अरुनि वान भृकुटी धनुक, तिन वीधे सब देह ।

त्रिद्यमान दीसै^{१०} प्रगट, रोम रोम महं^{११} बेह ॥१०८॥

दो०—१०७—१—धरे (स०) । २—मिले कार बूँदा कर (स०) । ३—कति (स०) । ४—धरारै (स०) । ५—सोभा (कां०) । ६—नौ गोभा (कां०) । ७—पुनि (कां०) । पिवत्र औ पर (कां०) । ८—राजहि (कां०) । ९—वींछी (स०) । ११—वह (स०) । १२—जानि नहि (कां०) ।

दो०—१०८—१—फुर ना तरै (स०) । २—अदिरवद (स०) । ३—मनु (वा०) । ४—इहै (स०) । ५—दरवान (कां०) । ६—रघाहि हि (कां०) । *इस चौपाई के पश्चात् (स०) प्रति में १३ चौपाई और एक दोहा अधिक है । ये चौपाई और दोहा बाएँ पृष्ठ पर दिए हैं, कृपया ठीक करले । ७—भुवै (कां०) । ८—मुवाइ (कां०) । ९—दम्बर (स०) । १०—भै खरे । ११—यह दीसै (स०) । १२—तन (कां०) ।

राजा प्रवल प्रेम वस भयऊ । अस्वियर मन उदास होइ गयऊ ॥
 राज काज दिन चित्त न लागै । निसि निद्रा विनु' परै न जागै ॥
 तारे गिनत छिपौह सव तारे । छिन न छिपै पुतरी के तारे ॥
 नीद' लाग तिन्हक' मग रोगू । छाड़ दिहेसि घर भेष वियोगू ॥
 जो मन राग रंग महं लार्वै । तिनहू न लगै पेम भरमावै ॥
 कल न परै व्याकुल' भै रहै । काहू सो मन मरम न कहै ॥
 मोचहं मोच जरै दिन राती । जैसे दियो दिया कै वाती ॥
 पुध्या' रही न दीसैं ग्रामू' । दिन दिन बटै लाग तन मांगू ॥
 भा' तन पियर रात जो रहा' । मूरज वदन गहन मनु' गहा ॥

दोहा—जिन्ह'° बट'° वासा पेम को, तिन'° बट रकत न मांस ।

अग्नि तेज दोउ उफनत'°, चुड़'° निकसे होइ ग्राम ॥१०६॥

जद्यपि जीर्णों पार ब्रमाई । तीलों राखेसि अग्नि दुराई ॥
 पै निदान इक दिन अनयासा' । दबी अग्नि उर कीन्ह प्रकासा ॥
 भइ' तन ताप पर चंडा । भय संताप टूट दोइ खंडा ॥
 चित्त न चैन तरफै अतवानी । जैसे मान तपै विनु पानी ॥
 कारै विछू डांक जनु लावा । क वन' मिग्ग फांद मै आवा ॥
 जनु गह बधिक' परेवा डारा । कै लोटन गहि' भुइं उतारा ॥
 अति व्याकुल छिन चैन न पावै' । पल पल पीर प्रवल होइ आवै ॥
 मुख उमांस निकसैं इमि तानी । मनमुख' होइ जरै तिन्ह छानी ॥
 अमुवन परै भार उर आवै । मनी' चूनगर चून बुभावै ॥

दोहा—तन मन अति व्याकुल विकल, छिन न'° होइ विन्नाम ।

चैन'° उमांस तपन भई, मन्दिर भयो हमाम'° ॥११०॥

दो०—१०६-१—पुनि (का०) । २—पिंडहि (का०) । ३—फीक मुख (का०)

४—व्याकुलता रहै (का०) । ५—कविया (म०) । ६—गरामू (स०) । ७—भा।
 मयर (म०) । ८—ग्रहा (म०) । ९—जनु (का०) । १०—जिह (का०) । ११—त
 (म०) । १२ तिह (का०) । १३—उवत (स०), श्रीटकर (का०) । १४—कय
 (म०), वुर्वै (का०) ।

दोहा—११०-१—प्रवलासा (का०) । २—भये तनुती मनु (का०) । ३—भु

मृग फंडक फांद (का०) । ४—तरक (का०) । ५—कहं (स०) । ६—आवै (का०)
 ७—सोंहि (का०) । ८—जानों (का०) । ९—विच्छावै (म०) । १०—विन
 (का०) । ११—पलट (का०) । १२—इमाम (म०) ।

लखि यह परम वैद उठि आवा । पंच जनन कहं आन मुनावा ॥
 राजा अंग रोग कछु नाही । विरह वान सालहि उर माहीं ॥
 तिहि के पीर चैन हरि लीन्हा । अंसर देख मन वावर कीन्हा ॥
 काके बरुनि वान घी छूटे । रोम रोम सगरे तन फूटे ॥
 करहु उपाइ विलंब न लावहु । राजा कह वह मीत मिलावहु ॥
 नाहित कठिन पेम कै पीरा । दिन दोइ मे अति करै अवीरा ॥
 पेम अगिन जीने घट परै । तन मन जार जीवै सी अरै ॥
 जौलौ जोड कहं पिउ त मिलावे । पिउ मुख पानिप पान न पावै ॥
 तौलौ जरत रहै न सिराई । औ न बटै नित होइ सवाई ॥

दोहा—वेगि संभारहु सुधि करहु, राजा तन मन देहु ।
 पल छिन अंजुरी नार ज्यो, छीजत है तन नेहु ॥११५॥

ततखन प्रहत सेन परधानू । आवा तपत हुता जहं भानू ॥
 आइ नवाइ सीस भा ठाडा । समै विचार वचन मुख काढा ॥
 बड़ परताप अखंडित राजू । मन वांछित पुरवै विधि काजू ॥
 तुम्हरै पीरा लगौ हमारै । चप जांती तुम्हरे उजियारै ॥
 जो तै प्रथिमीपति दुप पावा । ओ चल चाल नगर महं आवा ॥
 तुम्हरी विथा नगर कहं व्यापी । नगर कि मनु सब दिवस संतापी ॥
 जो देखे ताको मन गहा । काहू के मुख रक्त न रहा ॥
 जैसे गहन मूरुज जब होई । जगत पियर देपै सब कोई ॥
 काहू के तन मह जोड नाही । जिउ सबको तुम्ह जिब माही ॥

दोहा—ज्यो जसुधा सुत सुरति कहं, गोपी भई अचैन ।
 त्यों तुम सुख सुध स्वाति लागि, सीप भए जग नैन ॥११६॥

दोहा—११५-१—कहि (कां०) । २—ओसु रेप (कां०) । ३—पेम (स०) ।
 ४—जौलहि (कां०), जो लहं (स०) । ५—पीन (कां०), पउ (स०) । ६—तौलहि
 (कां०) तौ लहं (स०) । ७—अंचल (स०) । ८—मेहि (कां०) ।

दोहा—११६-१—परहत (कां०), परघट (स०) । २—आव (कां०), ऊवा
 (स०) । ३—आछत (स०) । ४—आ लगौ (स०) । ५—जगह (कां०) । ६—
 तुम राख (स०) । ७—जगत (स०) । ८—उचला (कां०), ऊचला (स०) । ९—
 जगत मै (कां०) । १०—मै (कां०) । ११—मग (कां०) । १२—सरजधन (स०) ।
 १३—प्रघट जगत (स०) । १४—पीरो (स०) । १५—जसुधा सु सुरति कहि (कां०),
 चदा सत सरप कहं (स०) । १६—काप भये (स०) । १७—नग हीन (स०) ।

विथा होइ सो परघट कीजे । दुरै रोग वाढ़ै तन छीजै ॥
 श्री पुनि रोग जो मनहि समाना । कहैं विना कछु जाइ न जाना ॥
 कही मरम आपन जस आही । सेवक सां न दुराधा चाही ॥
 जो कौन्यों कामनि चित परी । कहो मंगाइ चोहु' इहि घरी ॥
 महाराज आयसु जग आगै । कहं अस जीव जो राखै मांगै ॥
 जो काहू राजा कै वारी । औरै' देस सुनी उजियारी ॥
 ताको रूप सुनत चित गहा । इहो सुगम कुछ चपरि न रहा ॥
 पाती लिखि अरु वेगि पठाऊं । ज्यां के त्यों सुधि' सोधि मंगाऊं ॥
 जो अपछरा दिष्टि महं आई । मंतर सक्ति सां देऊं मंगाई ॥

दोहा—आज राज परताप अस, इन्द्र नवावा माथ ।
 जो चाहै सोई करी, जगत तुम्हारे हाथ ॥११७॥

तिहि उत्तर राजा तव बोला । विरह मरम पोथा गर खोला ॥
 सुन परधान कहीं तो पाहां । जैसी कछु वीती जिउ' माहां ॥
 वह जु एक भाटिन तव' आई । जिन पदमिनि कै कथा सुनाई ॥
 सोई कथा अगिन होइ' परी । तवसां सुलग सुलग सब जरी ॥
 जब लौ धीरज संग पहुंचावा । तीलों तन यह बोझ उठावा' ॥
 अब वह धीरज टूटि भुइं परा । तन निरास निरबल' होइ उरा' ॥
 तातें अब हीं कहीं हंकारी' । बढा विरह डारत मोहि मारी ॥
 जो अरु वेगि होइ नहि मेला । तो जीवन अति' निपट दुहेला ॥
 यहै निदान आइ नियरावा । देह जाइ कै होई मिलावा ॥

दोहा—प्राण बसै चलि मीत पहं, मिलन आस तन प्राण ।
सो' आसा जिहि छिन छुटै, तिहि छिन मरन निदान ॥११८॥

दोहा—११७-१—लेउ (स०) । २—राखस (स०) । ३—उदै (का०) । ४—
 तिहि (का०) । ५—उहावा (का०) ।

दोहा—११८-१—मोहि (का०) । २—जव (स०) । ३—उर (का०) । ४—
 उहावा (का०) । ५—निर्मल (का०) । ६—उरा (स०) । ७—हुकारी (स०) । ८—
 इहि (का०) । ९—पुनि (का०) । १०—स्वांसा (स०) ।

मो सों विनती पै वन आवैं । होइ सो वहै जो पिउ कां भावैं ॥
 ही अधीन धनि दीनता^१ करूं । जिउ ले हाथ पाइ तर घरूं ॥
 पूंजी यहै प्रान हा मोरै । सो कीनो न्यांछावर तोरै ॥
 तोरै पेम प्रान जो जाई । तो यासों पुनि कहा भलाई ॥
 मैं आपा^२ हारा तै जीता । अब तोहि^३ वनै गो तू कर मीता ॥
 जो कौंऊ जा लगि जिउ देई । ताकी मुधि सोऊ^४ पुन लेई ॥
 ओ पुनि यही बात कछु नाही । सब जग जीव देइ तू^५ माही ॥
 जाकों कृपा दृष्टि कर हेरसि । ताही के दुख दाह निवेरसि ॥
 तोरै हाथ बात सब वाला । चहै^६ सो जाहि देइ जैमाला ॥

दोहा—जग जानै वाउर भयो, आप आप वतराइ ।
 ए वाते सब मीत सों, कहा सुरति अति नाइ ॥१२३॥*

जब इहि भाति विकल भयो राजा । बोलै लाग^१ वचन तजि लाजा ॥
 लोग कुटव मीत अनुरागे^२ । चहूं पास समभावन लागे ॥
 राजा तुम सजान^३ सयाने । बुद्धिवान पंडित जग जाने ॥
 कौने मति तुम कहं सिख दीजै । पै जब^४ जीव जरै का कीजै ॥
 पेम पंथ जानहु न सुहेला । और निवारत निपट दुहेला ॥
 जिन पचि मरो राज सुख मानो । कौने काज देह दुख रानो ॥
 जहां पेम तहं भूख न प्यासा । जगत भोग सो करै उदासा^५ ॥
 चलै देस महं हास कहानी । राजन महं होइ हो अपमानी ॥
 धीज धरी मन जिन भरमावो । जन पठाइ पिउ^६ सोव मंगावो ॥

दोहा—विरह घाव^१ उर भूप कै, ताकी मिलन उपाव ।
 धीज वचन ज्यों ज्यों सुनै, लागै घाव पर घाव ॥१२४॥

दोहा—१२३—१—तीया (स०) । २—आयो (स०) । ३—ताहि (कां०) ।
 ४—सोइ पै (कां०) । ५—तव (कां०) । ६—जियै (स०) । * इस दोहे की नीचे की
 पंक्ति 'कां०' प्रति में पहले है ।

दोहा—१२४—१—लोग (कां०) । २—सर आगे (कां०) । ३—सुजान
 (कां०) । ४—अस कहै सोई पै (कां०) । ५—निरासा (कां०) । ६—तिहि (कां०) ।
 ७—गहाव (स०) ।

सुनि राजा सिप वचन दुखारी । प्रेम अगिन चिनगी^१ मुख भारी ॥
 का मोहि सिख्य सीख^२ सिखरावहिं । जरत अगिन तेल जिन नावहिं ॥
 पेम समुद्र अथाह अपारा । तहां परे को काढन हारा ॥
 नदी समाइ जाइ इक ओरा । का सिख बूंद करे तिहिं जोरा ॥
 जत्र उर पेम अनल दी लाई । अंजलि जल छिरकै न मिराई ॥
 पेम पहार अकास उचाहीं । सिख दोना^३ ना ऊपर ताहीं ॥
 श्री^४ तुम पेम खेल नहिं खेला । भए न अजहुं पेम कर चेला ॥
 पेम खेल कर मरम न जानो । भूठे सीखै रुहिर^५ न छानो^६ ॥
 पेमौ सीप^७ दग्ध जिन लाई । अगिन जरा मेके न सिराई ॥

दोहा—मोरे मन^८ अरु जिउ दोऊ, मीत^९ सुरत कर गेह ।

नैक^{१०} स्वांस तन पेम लग, सो तुम काठे देहु ॥१२५॥

जे तुम सर्व सीख मोहि देहू । वचन वचन कर ऊतर लेहू ॥ *
 यहै तुम प्रथम कहे हो हेला । पेम पंथ जानहु न मुहेला ॥
 सो तो सुभक्त तुमहि दुहेला । जिनहं न भयो पेम कर मेला^१ ॥
 उपज न हियै विरह वैरागू । भयो न अगवहं^२ कै पिछलागू ॥
 तिन यह पंथ सुगम करि जाना । जिन्ह कर पेम पंथ मन^३ आना ॥
 हौ सिख सीस चरन कर धाऊं । पैग^४ पैग चल चाव बढ़ाऊं ॥
 बसौं न बीच रैन दिन चलू । तौ लागि जी लागि मीनहिं मिलूं ॥
 ज्यों ज्यों चलूं उमंग त्यों होई । पेम^५ पंथ पर थकै न कोई ॥
 जो तन हार रहै तजि जाऊं । मन पग पिउ मग सों न डिगाऊं^६ ॥

दोहा—पेम पंथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहि ।

कसक^७ करेजै काटहीं, नीर^८ सु नैनन^९ माहि ॥१२६॥

दोहा—१२५—१—जगा (स०) । २—सिपहि (कां०), सीखो (म०) । ३—
 पावो (कां०) । ४—ती (स०) । ५—सिपरहि देपन उपराहि नाई (का०) । ६—उत्तम
 (स०) । ७—रुहर (कां०) । ८—चानहं (म०) । ९—सिपहि (कां०) । १०—मन
 उरभा ओ मीत कै (कां०) । ११—सुरति रही कर (कां०) । १२—निवग (स०) ।

दोहा—१२६—*जयपुर की प्रति में इस चौपाई के आगे छटवीं चौपाई है:—“हीं
 सिख सीस……” । १—चेला (कां०) । २—अवैहि को (कां०) । ३—महं (स०) ।
 ४—वेग वेग कर (कां०) । ५—पेक नाव चढ़ि (स०) । ६—निधि गाऊं (स०) ।
 ७—सकै (स०) । ८—काखहीं (स०) । ९—हीन सों (स०) । १०—नयने तिन
 (स०) ।

पुनि तुम कहा पेम पथ हेला । और निवाहत निपट दुहेला ॥
 पेम पंथ महं और न कोई । उर पिउ^१ और छोर सब सोई ॥
 पेमी पेमहि और न चाहै । यहै नेम^२ गहि और निवाहै ॥
 पेम समुद्र मांझ जो परै । और छोर^३ कर आस न धरै ॥
 चाहै^४ और सो^५ आपन ओरा । और आस तजि भजै^६ पिउ ओरां ॥
 जाकहं नेह देह सों होई । जनम प्रकारथ खोवै सोई ॥ *
 सीसै^७ एक और कैं डारै । तव इहं और आइ पग धारै ॥ *
 पेम खेल महं माथे वाजी । सो खेलै जो इह पर राजी ॥
 यह देखो^८ पुनि अचरज^९ रीता । जो हारै जानहु^{१०} तिन जीता ॥

दोहा—पेम समुद्र अपार अति, नाहि^{११} और नहि छोर ।
 जे बूड़े^{१२} सोई तिरै, यहै पेम दवि^{१३} और ॥१२७॥

पुनि मोहि इह^१ सिच्छा गह आनहुं । जनि पचि मरो राज सुख मानहुं ॥
 किहि विधि होइ राज सुख भाई । जो न मिलै पीतम सुखदाई ॥
 तुम्हरे दिस्टि राज जो^२ आवा । सो न राज यह^३ छरे छरावा ॥
 दुख समूह तुम सुख कै माना^४ । देखो का यह जगत भुलाना ॥
 यह सम्मति जो सपन समाज । तिन्ह कहं^५ भूल कहौ^६ जिन राजू ॥
 छूछे वाजहि राज निसाना । का तिहि पर जिउ धरो गुमाना ॥
 हौ अस राज न मन मै लाऊं । जिहि सुख उरभि मीत विसराऊं ॥
 जो जिउ^७ मांझ मिले पिउ सोई । तौ यह राज कुसल पै होई ॥
 नाहित पेम अगिन तन जारौ । भूठे राज जनम का हारौ ॥

दोहा—हार जनम राजा धनै^८, गए उधांड निसान ।
 ते जीते जेई^९ परै, जूझ पेम मैदान ॥१२८॥

दोहा—१२७-१—प्रेमी और छूर पुनि (का०), उर पिउ छोर सब (स०) ।
 २—प्रेम कहि (कां०) । ३—और छउ की आस न (का०) । ४—जाही (स०) ।
 ५—और सही ओरा (कां०) ६—पहुँचै छोरा (कां०) ।* (कां०) । प्रति में यह
 चौपाई नहीं है । ७—सबही (कां०) ।* (कां०) । प्रति मे इस चौपाई के पश्चात् यह
 चौपाई है:—प्रेम ही और न मागो कोई । मीसी का घर प्रेम न होई । ८—दुखो
 (स०), दुप (कां०) । ९—अचरज है (कां०) । १०—जावै तन (कां०) । ११—
 नातिहि (कां) । १२—बूड़े (स०) । १३—विधि (स०) ।

दोहा—१२८-१—आह (स०) । २—इहि (कां०) । ३—ह्वै (कां०) । ४—
 जाना (कां०) । ५—गहि (कां०) । ६—गहो (कां०) । ७—जिहि (कां०) । ८—
 बने (कां०) । ९—जैवर (कां०) ।

नल-दमन

पुनि तुम यह सिप' वचन वखानीं । कौने काज' देहं दुख सानीं ॥
 का यह देह अमर तुम जानी । जा लागि भयो' पेम अपमानी ॥
 देह निदान जा' कहं आई । भलै जो पेम पंथ महं जाई ॥
 का जीवन जग' पेम विहूना । अछत प्राण तन पंजर सूना ॥
 इहि' के सुख तुम कहं का लाहा । कोटिक' जनम तुमहिं इन दाहा ॥
 वार वार मर मर श्रीतरई । याही देह मोह के वरई ॥
 अपनी जात देह तुम जानी । अजहूं समझी रे अजानी ॥
 जैसे घट पट भीतर न्यारा । तैसें तुम यह' घट मंभारा ॥
 अपना भूले मोहि भुलावहु । पेम छुड़ाइ देह महं' लावहु ॥

दोहा—जो पीतम के पेम साँ, मीठी' हाँती देह ।
 सती' पेम लागि देह कौ, जार न करती खेह ॥१२६॥

पुनि तुम मोहि भास यह' भासा । जहां पेम तहां भूख न प्यासा ॥
 मोरे पेमहि' भूख पियासा । पेम छाड़ि हूजी नहिं आसा ॥
 भोजन भूख पियासहु पानी । ए नहिं भुक्ति' पेम रुचि मानी ॥
 इहै भूख मोहि और न कोई । पेम भूख इहं भूख न होई ॥
 खाएं मै जो बड़ा तन मांसू । सो तन अंत होइ पुनि नासू ॥
 मै मन' अपना सत के घरा । तन साँ निकस पेम जिउ परा ॥
 एहीं भूख जगत सर' नावा । पेम नेम सब कर विसरावा ॥
 का सुख होइ जो भूख न होई । भूख समान सत्रु नहिं कोई ॥
 सो तुम भूख मोर' के जानी । पेम कथा कछु मनहि न आनी ॥

दोहा—जो यह पेम विलास सो, भूख भली निवि होइ ।
 पान रोक अघ्यातमी, भूख न' डारें खोइ ॥१३०॥

दोहा—१२६-१—मुख (स०) । २—राज (स०) । ३—बहै (स०) । ४—
 जाकी (स०) । ५—पर (का०) । ६—वग (स०) । ७—नेह केह (स०) । ८—
 कौतुक (स०) । ९—भया (का०) । १०—मन (का०) । ११—नीकी (स०) ।
 १२—सवते (स०) ।

दोहा—१३०-१—बहु (का०) । २—प्रेम न भूख न प्यास (का०) । ३—भगति
 (स०) । ४—बह इहि नासत (का०), मन अब नामत (म०) । ५—सब (का०) । १—
 मूर (का०) । ७—निवारहं (स०) ।

पुनि तुम मोहि उपदेस बतावहु । जन पठाइ पिड' सोय मंगावहु ॥
 वडी रजाई ऊं व हुवारा । सब कर तहाँ कहीं पैसारा ॥
 करहि द्वार पालक कठिनाई । आयसु' विना पवन न हुराई' ॥
 कै सो जाहि जो ग्याता होई । जिहि' ओ राजहिं भेद न होई ॥
 ग्यातहि' जात' अटक कछु नाही । को बरजै आने घर जाहीं ॥
 कै सो जाहि जिहिं आप बुलार्व । पैम बसीठ होइ' पहुंचावै ॥
 जो जद्यपि पहुंचै उत कोई । ती आवन पुनि उलटि न होई ॥
 हेरि रूप वह' जाइ हिराई । निहिं मिल आपा देइ गवांई ॥
 इहै' कठिन सोध' पिड केरा । कोउ न फिरा जिनहिं मुख हेरा' ॥

दोहा—काहि पठाऊं पीऊ पहं, को^{१३} दो जिउ को होइ ।

एक^{११} जीउ के देइ विनु, पीड^{१४} न पावै कोइ ॥१३५॥

जद्यपि राजा कहं' रामभावहिं । पैम नमूद्र याह नहिं पावहिं ॥
 एक सुनै राजा दस कहै । अमनक' लहर न राखे रहै ॥
 बाढा विरह उपज वैरागा । मन भा भंवर कंवल अनुरागा ॥
 राजा पैम गरथ सुनार्व । का कोउ वारापड़ी पढावै ॥
 जे सब सीख सिखावन गए । पैम कथा सुनि पेमी भए ॥
 सुन पेमी मुख वचन दुखारे । सबही पैम आंसु चख ढारे ॥
 अपनी सीख विसर सब गई । उनटी पैम सीख उन लई ॥
 ज्यों ज्यों राजा करै वखानू' । रोवहिं सुनहिं लाइ मन ध्यानू' ॥
 पैम समूह सभा होइ रही । अक्षु^३ प्रवाह नदी जल वही ॥

दोहा—राजहं समुभावन गए, आए समुझ गवांइ ।

आग बुभावहिं तेल सों, पुनि' तेलहि जरि जाइ ॥१३६॥

दोहा—१३५-१—कै (कां०) । २—अयस (स०) । ३—धराई (स०) । ४—
 जिन्ह उर अजहु (स०) । ५—ज्ञानहि (कां०) । ६—ज्ञात अतक (स०) । ७—विनु
 (कां०) । ८—मन (स०) । ९—इतही कथन (स०) । १०—सुघ (स०), सुद्ध (कां०) ।
 ११—घेरा (कां०) । १२—गुडी (कां०) । १३—जों एक सुद्ध देइ पुनि (कां०) ।
 १४—पंथ (कां०) ।

दोहा—१३६-१—कसि (कां०) । २—लहरै ऊडि न राखी (कां०) । ३—ऐसो
 (स०), अंशु (कां०) । ४—विना धेउ (स०) ।

राजहिं पवन अगिन भा पेमू । भूला सब देह कृत नेमू ॥
 रातहिं दिवस रहै वैरागा । गइ तन सुरत पेम मन लागी ॥
 राज काज सब दीन्ह विमारी । लीन्ह पेम कहै आजाकारी ॥
 जित देखै तित पीड पियारा । ताही रूप तकै संमारा ॥
 आषा विसर वही होइ रहा । ऐसे गहन पेम मन गहा ॥
 सोई जाप जपै हर स्वासा । और छाड़ि दीन्हैसि सब आमा ॥
 जो कछु बात रहा मुख चाहा । बात कहत वह सुरत निवाहा ॥
 बांधी गुड़ी डोर जनु लाई । एकी स्वांस अचेत न जाई ॥*
 का भा कथे जो पेम कहानी । एकी पेम पगे तव जानी ॥

दोहा—मिला जो चाहै पीठ सों, तो पेम करो गहनेम ।
 प्रेमी प्रीतम मिलन काँ, बीच बसीठ सो पेम ॥१३७॥

जो कोऊ जाके रंग रात । सोऊ पुनि ताके मद मात ॥
 जो जिहिं चहै चहै तिहिं सोऊ । एकहिं ताप तपे मिलि दोऊ ॥
 पेम बसीठ एक दुहुँ ओरा । वहै सुरत डोरी कर जोरा ॥
 नाची प्रीन न रहै दुरानी । जिन जामों लाई तिन जानी ॥
 तन यह दिष्टि मात्र ली न्यारा । सो एकइ जो जानन हारा ॥
 श्री पुनि अचल प्रीन जब होई । तव तिनहुं महं भेद न कोई ॥
 लैलै इहां जो रक्त कढावा । वहाँ मजनु कै नैनहि आवा ॥
 अंतर तीली देइ दिखाई । जीनां मे तू बीच कचाई ॥
 तनम भए न अन्तर कोई । तन श्री प्रान सो एकै होई ॥

दोहा—तन सब ताहि अतन महं, अतन सब तन माहं ।
 वहै अतन तव मे भयो, अतन दुतिय पुनि नाहं ॥१३८॥

दोहा—१३७-१—की (कां०) । २—वैह (स०) । ३—कहन (स०) । ४—जोई (स०) । ५—कह्या (कां०) । ६—कड़ी (स०) । ७—जिन (स०) । *'कां०' प्रति में नीचे की चौपाई पहले है । ८—भापै जो प्रेम (कां०) । ९—वकै (कां०) । १०—जानी (स०) । ११—सु (कां०) । १२—कहिं (कां०) । १३—प्रेमै (स०) । १४—प्रेम (कां०) ।

दोहा—१३८-१—ती (कां०) । २—जाविन (स०) । ३—और (स०) । ४—उहां लैलै (कां०) । ५—पै (कां०) । ६—ही के वहि (कां०) । ७—अन्त (स०) । ८—नही (कां०) । ९—सोई (स०) । १०—तव (कां०) । ११—नाए (स०) । १२—मन (कां०) । १३—दुतिय तव नाहं (स०) ।

जद्यपि धाइ चतुर अत खरी । वारी पुनि पटरस' फर फरी ॥
 बोली मुनी धाइ ही वारी । मीठे दूध मीचि तुम पारी ॥
 किहिं कारन मोसों मन मनी । कइ वार्ते करी' कनेली ॥
 अनखातेइ' जानत' ही डरी' । ताजन्ह मरी नोन होइ गरौ ॥
 कही न कोन चूक मै करी । जात कहौ बान चरपरी ॥
 हीं तो साइ खेल ही जानी । और बात मन' कछु न आनी ॥
 धी पूज्यो' ससि किहिं धुमराई । ओ कम घरहर पवन दुराई ॥
 किरन रोकि कारो' कम दीया । जिहिं महं घरई जोवन घीया ॥
 ना चीमास न चातक जानी । ना खंजन न मेघ पहिचानी ॥

दोहा—धाइ मिली तिहिं फून ह्यै, काढा चहै फुनेल ।

वह सुखरी रखी भई, जनु' इन तिलन न तेल ॥१४३॥

जद्यपि वारी वात' वनाई । पै उत' ऐसी खोर खिलाई ।
 तिन जाना कारन भा कोई । दिन कारन यह रुदन न होई ॥
 ततखन गई जहां पटरानी । वंठी राजमती' परधानी ॥
 जाइ जुहार नियर भइ ठाडी । समी' विचार' वात मुख काढी ॥
 रानी कुछ वारी अनभली । रखे वदन रहे कस' मली ॥
 दीपक अछत तेल अरु वातीं । ज्यों धुमराये' भारे' राती' ॥
 जैसे कबल कली संभवारी । ओ कुमुदनि रवि किरन निकारी ॥
 श्री अहार पुनि'° सूछम करई । पान पुहुप पर चित्त न घरई ॥
 श्री मन' पुनि तन मै'२ घट रहै । दूक रही कछु मरम न कहै ॥

दोहा—कै निस सपने मै डरी, कै'३ दिन सांपर ताई ॥

कै तन विथा प्रवट भई, निज कछु जान न जाई ॥१४४॥

दोहा—१४३-१—घट (स०) । २—कहो (का०) । ३—इन पाटी (का०) ।
 ४—वाते (का०) । ५—जहं (का०) । ६—कछु मनहि (का०) । ७—पूज्यो (स०) ।
 ८—का उगस (स०) । ९—जिन (स०) ।

दोहा—१४४-१—कौन्स दुराई (का०) । २—ऐसी इन क्यूं (स०) । ३—राजपती
 (का०) । ४—औसर (का०) । ५—देपि (का०) । ६—गत (न०) । ७—धमगई
 (स०) । ८—फरहर (स०) । ९—हिय राती (स०) । १०—सूछम अति (का०) ।
 ११—सुनि (का०) । १२—मन (स०) । १३—की कई (स०) ।

माता मुनतहि खिन^१ जर गई । चकमक रुई भार जनु दई ॥
 इत बालक पग^२ गइं जो कांटा । सो मां कै आंखिन में आंटा ॥
 मात मोह अस मन^३ नहि वरै । पमुइ^४ जाय जाम कै करै ॥
 जो माता कर^५ मोह न होई । पमु पंछी जग जिवै^६ न कोई ॥
 मोह बंधी ततखन उठि धाई । वारी हती^७ जहां तहं आई ॥
 देखि तो पिरि^८ अंव ज्यों भई । पिचकं^९ हीय नारंग होइ रही ॥*
 हुती जो गल गल ज्यों रस भरी । सो अब मूक भई खर^{१०} हुरी ॥
 हुते कपोल जो सेव ललाई । ते अंजीर भए मुरझाई ॥
 देख जंभीरी ज्यों मन खाटा । मां^{११} का हिय दारिम ज्यों^{१२} फाटा ॥

दोहा—बूझसि^{१३} वारी नित ग्रमी, सीची करी संभार ।
 जोवन नवल वसंत महं, किहि कारन पतभार ॥१४५॥

कौन विथा कांटा होइ परी । जिहि के खुटक फूल भा करी^१ ॥
 मुख दरपन कौने गुन झाई । कै धौ^२ देख छरी परछाई ॥
 मन^३ सरेख कैस होइ रहा । किन^४ ससि वदन गहन होइ गहा ॥
 कौनह ताप तई^५ तुम छोने । कहो उपाइ करों हों^६ टोने ॥
 जो कछु देखि छरावा छरी । कहु सो जतन करी इहि घरी ॥*
 जो निसि सपन देखि भरमानी । सपना सांच न जानहि ग्यानी ॥
 इही भरम जगत^७ सब भूले । फिर फिर दुख पलना पर भूले ॥
 नातर सब राज अधिकारी । सपन महं होइ रहे^८ भिखारी ॥
 सपन भरम मिथ्या कै मानहुं । भूल अभाव भाव जिन जानहुं ॥

दोहा—सांच न समझहु वह^९ समझ, जो^{१०} सपना समझै सांच ।
 सांच^{११} होइ तो छिनक^{१२} महं, उठ न जाइ पुन^{१३} नाच^{१४} ॥१४६॥

दोहा—१४५—१—घन (स०) । २—गई जु (का०) । ३—मोहन धरती (स०) । ४—वस होइ काम जाम कां (का०) । ५—करतीं (स०) । ६—करमो (का०) । ७—चहै (का०) । ८—वैठी (का०) । ९—प्रेम अंव (का०) । १०—तचक (स०) । * का० प्रति में नीचे की चौपाई पहले है । १०—वर (स०) । ११—कामर (का०) । १२—हूँ (का०) । १३—पूछसि (का०) ।

दोहा—१४६—१—गरी (स०) । २—दिन (स०) । ३—राह की सरन (का०) । ४—पिन (का०) । ५—नैन (का०) । ६—इहि (का०) । ७—स० प्रति में खंडित है । * का० प्रति में नीचे की चौपाई है । ८—जीवन पट (का०) । ९—गई (का०) । १०—सो (का०) । ११—का० प्रति में यह शब्द नहीं है । १२—सांच न होइ (का०) । १३—स० प्रति में नहीं है । १४—तन (का०) । १५—मांझ (का०) ।

नारी कदा मुनि उरि न उरये । जो कदा उरि न भवति ॥
 नारी वीर कोटि विरिण ॥ १२३ ॥ नारी भयंकरे नरि ॥
 विना भयने नरस एव मनी । जो हृदय छोडि नरि कहे नारी ॥
 आत्म रीति मरिचक ॥ १२४ ॥ देह रूप सब विषय प्रसादा ॥
 निरि मरिचक मुनि नर ॥ १२५ ॥ नरक प्रसाद कहे विरिण विरिणे ॥
 जो मरिचक को नर मुनि नरि ॥ १२६ ॥ विरिण विरिण कहे नरि ॥
 जो मुनि कहे ॥ १२७ ॥ विरिण कहे ॥ १२८ ॥ नर कहे विरिण ॥
 विरिण मी मरिचक ॥ १२९ ॥ विरिण मरिचक का रूप विरिण ॥
 मरिचक को मरिचक ॥ १३० ॥ नर विरिण विरिण कहे नर ॥

दोहा—विनि जानु रीति विरिण कहे विरिण को प्रसाद विरिण ।
 निरि विरिण विरिण कहे विरिण को रूप मधु विरिण ॥१२३॥

जगति नारी नौ-रु दुःख ॥ १ ॥ नरि विरिण कहे नरि ॥
 जाना मरिचक मरिचक मरिचक ॥ २ ॥ नरि कहे नरि ॥
 निरिने भा प्रविण विरिण कहे ॥ ३ ॥ नरि मुनि विरिण कहे नरि ॥
 सो विरिण कहे नरि मरिचक ॥ ४ ॥ विरिण मरिचक कहे नरि ॥
 नरि नरि नरि नरि नरि ॥ ५ ॥ नरि नरि नरि नरि ॥
 जब नारी जाना नरि नरि ॥ नरि नरि नरि नरि ॥
 सो एक नरि मरिचक नरि ॥ नरि नरि नरि नरि ॥
 तारी मरिचक विरिण कहे निरि ॥ नरि नरि नरि ॥
 चिन मुनिनी नरि विरिण ॥ नरि नरि नरि नरि ॥

दोहा—हेरत हस्त चिन मरिचक, विरिण कहे नरि नरि ।
 जानो हेरत आपकी, जो नरि नरि नरि ॥१२४॥

दोहा—१५१—१—यानी (का०) । २—जो मुनि (का०) । ३—भय देवि (का०) । ४—ग्राह (का०) । ५—तो (का०) । ६—मन (म०) । ७—विहि (का०) । ८—स० प्रति में नीने की चौपाई है । ९—नर (म०) । १०—दुःख (का०) । १०—वर्न की (का०) । ११—कही (का०) । १२—मति (म०) । १३—तासों (का०) । १४—ग्रपना कहे (का०) । १५—इस चौपाई के परचात् 'स०' प्रति में निम्न-लिखित चौपाई है जो 'कां' प्रति में नहीं है :—

दोहा—१५२—१—गति छितहि (का०) । २—बूझा (म०) । ३—जो (स०) । ४—पीऊ (का०) । ५—पाप बोह (का०) । ६—उन (का०), उन (स०) । ७—जब वह (का०) । ८—रही (स०) । ९—नही (स०) । १०—अनजाना (स०) । ११—तब माना (का०) । १२—तब (का०) । १३—मार्त रही (स०) । १४—मधु (का०) । १५—मधु (का०) । १६—बोह (का०) । १७—तिन (स०) ।

अब अति विकल भई दुख पावै । बढा विरह छिन चैन न आवै ॥
 छिन छिन बरख बरख पर जाई । दिन बीते तो निसि न बिहाई ॥
 जो निसि घटै तो दिन पुनि आगँ । कांटा भई सूख नित जागँ ॥
 दिनहूँ लित्रँ चित्र अब रहै । धाइ मत्री बूझहिँ तब कहै ॥
 बहुते गुन या मूरत मांहीं । चिंता रोग रहै कछु नाहीं ॥
 मोरे देह सूखँ अस चली । सो कछु बानन देखीं भली ॥
 धीं कछु रोग देह महं आवा । तिहिँ कारन मूरत मन लावा ॥
 इहिँ मिमँ कह मूरति गहँ रही । मूरत भईँ एक टक छईँ ॥
 पलक लगत लागहि मनु वाना । भीहं धनुख राखी तिहिँ ताना ॥

दोहा—पलक न लगत पलक सोँ, ते वखनीँ इन भाइ ।

मनोँ डोरँ मखनुल कै, टागीँ भौहन लाइ ॥१५३॥

काया विरहँ अगिन मइ भई । जरहिँ हाइ भाठां होइ तई ॥
 माथे हाथ पेम करँ धरा । लगन मांकरन कस कस परा ॥
 नल हियँ लाग रहिसँ रमँ जोईँ । भई विकलँ लाहन जनु बोईँ ॥
 रही न नेक रूप घट जोनी । खरी खोर फेरी जनु पोती ॥
 पेमीँ पेम मद मन मतवाला । चना करहिँ दो नैन पियाना ॥
 चाखँ कांख करेजँ धरै । पिउ मुख लोन लाइ वह तरै ॥
 पेम दाह फुलकाँ उर परे । वेई दाख दाना उर धरे ॥
 निसि दिन रहै पेमँ मदमातीँ । कंत पियारे के रंग राती ॥
 नेक न निमतँ होइ मतवारी । सह न सकै खिन अधिकँ खुमारी ॥

दोहा—छूँछीँ वातँ मुख कहै, मिले न प्रीतम पीव ।

जो लगिँ साची प्रीति सी, जरै न पिउ लगि जीव ॥१५४॥

दोहा—१५३-१—पूछै (कां०) । २—मूक (कां०), एक (स०) । ३—मूरत
 मिसकै (कां०) । ४—इहि कही (कां०) । ५—इहि (कां०) । ६—चही (कां०) ।
 ७—जु (कां०) । ८—जे (कां०) । ९—तिहि वनी इहि (कां०) । १०—जनु (कां०) ।
 ११—डोरा (कां०) १२—ताके (कां०) ।

दोहा—१५४-१—अगिन विरहै (कां०) । २—गूर (कां०) । ३—इहि (कां०) ।
 ४—भई (कां०) । ५—हिय (स०) । ६—जोसी (कां०) । ७—नगुनन (स०) ।
 ८—बोसी (कां०) । ९—पीय (कां०) । १०—फँका (कां०) । ११—अहै (कां०) ।
 १२—अनुरागी (स०) । १३—ममत्त (कां०), निमित्त (स०) । १४—अवह (कां०) ।
 १५—छूँछी (स०) । १६—जव लागे प्रेम सोँ (स०) ।

इक दिन विरह राह डर' रही । बँड डकन सोझा' रही ॥
 आपहि आप सोर नली कोटि । लिने जू दुरा दुना' मंग होई ॥
 हियरा' कुवा उमग होउ रहा । मन बेराव नहिई होइ बहा' ॥
 सुरत मान' अंगिया नेह' गरी । कोटिक बार भरै' भर करी ॥
 हता जो हीर मीन नो भन । फिर हर नीर निगारन परा ॥ *
 सुरत ध्यान पिउ मों मनरागी । दान करै विरह बैरागी ॥
 पीतम सुरत करनि कपो' न मोरी । नव नग छाँड़ि नई शैं ताँरी ॥
 अब लागि निरह वाग मे नहे । सोमाँहि रोम पैटि' तन' रहे ॥
 अब लागै सो घाव पर लागै । जिउ शकुनाइ नरे नन त्यागै ॥

दोहा—जदगि जीउ तन त्यागि कै, बेग' भिने कोटि जाउ' ।

पै मन चाव' ति नन गहन, जीउ नो माँडि नमार ॥१५५॥

पिउ जिउ तू नो' नून क्य' नाँती । मोहि जिउ को मंग' नरु नाही ॥
 यह जब तव तोमो निग रहा । जबहं पनभिस नाउ न रहा ॥
 निज जिय घाम अनन नन मोरा । यह' मन भूग कहे जिउ' मोरा ॥
 तिन कारन विननी ही करी । हा हा नाउ मीम भुंड घरी ॥
 तन होहि लागि बहन दुग पावा । रूप रंग नस नबहि गुवाँवा ॥
 विरह अगिन तरनी तन द्वारा' । नून नून रहा होउ छाँग ॥
 रहा न रकत न मास न मनकी । हाउ भुराइ नो होइ किनकी ॥
 नसै सो ऐठ ताँन होइ गई । तेऊ' प्रव दूँडे कर' भई ॥
 विरह राग सर बहुत चढ़ावा । ताहं पै निरा' करै सवावा ॥

दोहा—प्रीतम जिउ' तू' तन अलग, सदा रहे तुव पास ।

विरह त्रास' दुख तन रहे, मोइ जाइ निराम ॥१५६॥

दोहा—१५५—१—दुख (का०) । २—एक ठां (का०) । ३—दूजा (स०) ।
 ४—सोई (स०) । ५—हिय को इन उमंग भर (स०) । ६—रहत (म०) । ७—भया
 (का०) । ८—माल (का०) । ९—ले घरी (का०) । १०—पड़ी (स०) ।* जयपुर
 की प्रति मे यह चौपाई ऊपर की चौपाई (सुरतमात अंगिया...) के पहले भी लिखी
 गई है और वहाँ इसका उत्तर पद इस प्रकार है:—'भर धर नीर गयाधर परा' ।
 ११—किन (स०) । १२—वहै (स०) । १३—होइ (स०) । १४—नैक (का०) ।
 १५—ग्राइ (स०) । १६—जाऊ (कां) ।

दोहा—१५६—१—तोसों (कां०, स०) । २—लगवाँही (कां०) । ३—साँसा
 (स०) । ४—तिहि (कां०) । ५—गहै (स०) । ६—मन (स०) । ७—पारा (कां०) ।
 ८—पारा (स०) । ९—तै सोऊ (स०) । १०—पर (कां०) । ११—प्रीति करै सो
 आवा (का०) । १२—जी (का०), ज्यों (स०) । १३—तो (कां०) । १४—निरास
 (स०) ।

पिउ दे सवन विनी सुन थोरी । तो विन वनति मुकति कत मोरी ॥
तन^३ भुइं पर मन फिरै^३ अकासा । चँग ज्यों सुरत डोरि कै आसा ॥
 अति व्याकुल तन तरफ परा । ज्यों पंछी उड़कै^४ जनु गिरा ॥
 ना जिउ निकस जाइ न रहै । खींचा खींची महं तन दहै ॥
 जदपि तोर चित्र मो पाहां । रात दिवस चितवौं तिहि माहां ॥
 अंखियां तो तासों^५ विरमाऊं । मन चंचल आवै न उहाऊं ॥
 सो तोरे निज मूरत चाहे । आप दहे श्री तन कै दाहे ॥
 जिय^६ निज तत्^७ रूप कर भूखा । तिहि कर चित्र दिखावन रूखा ॥
 वह जानै यह चित्र न^८ जीऊ । जिय^९ को जीउ प्रान मो पीऊ ॥

दोहा—जिउ^३ व्याकुल प्रीतम विनां, तन^६ दुख मन^९ अकुलाड ।

सो^६ इन दुख दोती नजै, पीउ मिलै फिर^९ जाइ ॥१५७॥

प्रीतम दधि अपार दुख नोग । उठै लहर पर लहर हिलोरा ॥
 नन बोहिन भा जउजर आना । रोम रोम दुख नीर समाना ॥
 जद्यपि दिग^१ उलिचाहिं होइ मीना । तऊ मो नीर^२ होइ नहि रीना ॥
 डग मगाइ टूवन^३ पर आवा । नहि^४ तोहि विन कोउ तीर लगावा ॥
 जो अव वेगि पौन होइ आवनि । गहि अकाग लै तीर लगावनि ॥
 ती वांचै नाहिन तिहिं^५ आगा । ओर जनन उकसै न उकागा ॥
 प्रीतम गाढ परे मुख कीर्ज^६ । काहि काल मुख नों मोहि लीजै ॥
 पिउ तन मन जोवन जिय तोरा । या धन मै कछु नाहिन मोरा ॥*
 अपनी वस्तु आप किन लेहू । काल पठाउ कीन्ह कम देऊ ॥†

दोहा—प्रीतम तू मिल तरनि लगि, परी प्रेम दधि माहि ।

अव उलटै डूवन लगी, तरी^७ होइ ही नाहि ॥१५८॥

दोहा—१५७-१—निपट निकट गति (कां०) । २—तिन्ह भे (स०) । ३—भवे (स०) । ४—अधिगुत (म०) । ५—यागों (का०) । ६—मरमाऊं (स०) । ७—कहाऊं (कां०) । ८—मन (स०) । ९—जो (का०) । १०—निन (का०) । ११—विछोऊ (का०) । १२—जी कर जीवन (का०) । १३—मन (का०) । १४—मन (कां०) । १५—तन (कां०) । १६—जिहि पहि (कां०) । १७—तव (स०) ।

दोहा—१५८-१—प्रिग (स०) । २—नेक (कां०) । ३—बूडन (कां०) । ४—मोहि (कां०) । ५—तोहि (स०) । ६—लीजै (स०) । *यह चौपाई 'स०' प्रति में नहीं है । † इसके पश्चात् 'स०' प्रति में यह चौपाई है:—“पिय विन कौन पार पहुंचावै । आवा जीन सो कौन मिटावै ।” ७—सो तेरी हो (कां०) ।

प्रीतम काज लाज मै सीई । रोइ रोइ अंगुवन नव धोई ॥
 संग सखी सखी^१ यह जानी । पेग पीर^२ कन रहे दुरानी ॥
 जद्यपि ही बहु भाति दुराऊं । अंगुवन पै न दुरावन पाऊं ॥
 आठों^३ पहर मलिन ज्यो वहे । सनिन प्रवाह छिपै^४ कत रहे ॥
 जो^५ पिउ लागि लाज पै जाई । जाहु निलज मोरे प्रभुनाई ॥
 मै तव^६ लाज न लजिया जानी । वहे भगी^७ जो पिउं मय गानी ॥
 निलज भए मन पेग जो रहे । तां छंछ्छी^८ नातहि को चहे ॥
 यहै^९ निलजिनाई मोहि मीठी । जा^{१०} लग रहे पेग गी ईठी ॥
 प्रीतम ताहि लाज पत मोरे । निलज भई^{११} जोहो मग^{१२} तोरे ॥*

दोहा—लाज राखि पेगहि तजूं, वही लाज किहि काज ।
 जगत निलज कहै^{१३} डर नहीं, जो रहे पेग मग^{१४} नाज ॥१५६॥

लाज रहे जो पिउ मुख देगो । जीवन जनम मुकन कै लेगो ॥
 कव देखो कव नैन मिराऊं । सरवन मीठे वैन मुनाऊं ॥
 नासा तन मनयागिर वासा । कव पार्वी पूजै कव आसा ॥
 पाइन सीस लाइ गहि रही । ये^{१५} नव दुरा मिटाउ मुख लहो ॥
 वीन^{१६} कुमुम दल सेज विछाऊं । पिउ मुग कर पाइ नहराऊं ॥
 जे जे ध्यान घरू^{१७} मन माहीं । कव आइ^{१८} विद्यमान होइ जाहीं ॥
 प्रीतम पंख होहि जो मोरे । अत्रही उड़ि आऊं दिग तोरे ॥
 कुटुव लोग सों छूट न पाऊं । नाहित जोगिन होइ कर आऊं ॥
 पम पंथ कोटिक रखवारा । पग^{१९} न घरन^{२०} देइ पिउ वारा ॥

दोहा—पिउ मो मै यह बल नहीं, जो आप मिलूं तुम आइ ।
 जो लग तुमहि क्रिपा करी, लेहु न मोहि मिलाइ^{२१} ॥१६०॥

दोहा—१५६-१—पहलै (का०) । २—रति (म०) । ३—आने (स०) । ४—चहे
 (का०) । ५—मो (का०) । ६—पुनि (का०) । ७—पत (स०) । ८—उत्तम (स०) ।
 ९—पेग (म०) । १०—भूठी (का०) । ११—भई (का०) । १२—जिन (स०) ।
 १३—भली (स) । १४—मुप (का०) । १५—को (का०) । १६—मुख (स०) ।

दोहा—१६०-१—कर (का०) । २—इहि (का०) । ३—प्रेम नैत (का०) ।
 ४—करौ (स०) । ५—ये (का०) । ६—पार्वी । ७—पुनि (स०) । ८—पै गन (स०) ।
 ९—घरै देहि तिहिंवारा (का०) । १०—बुलाइ (का०) ।

हो ती जकड़ जजीरन रही । पराधीन कछु जाइ न कही ॥
 पेम पंथ महं हितु न कोई । सब बटपार हितु पिउ^३ सोई ॥
 संग सखी जो सदा तन संगी । ही अरव^३ तिनहुं सो चित्त^३ भंगी ॥
 ए^४ मोहि अपनी चाल चलावहि । पेम उरभिन मन सों मुरभावहि ॥
 ही चाहीं गाढी होइ उरभौ । जिन उरभन सों बहुरि न सुरभौ ॥
 जो सुरभन इन्ह उरभन^५ माही । तिन्ह वाउर जग जानत नाही ॥
 पिउ के पेम उरभ जो सुरभै । यों सुरभै ज्यों फिर^६ ना उरभै ॥
 तिहिं उरभन सों मोहिं सुरभावहिं । जग सुरभन^७ अस^{१०} छिन उरभावहिं ॥

दोहा—पंच सत्रु ही एकली, जूझत ही इन^{११} माहं ।
 गाढ़ परै पिउ तोहि^{१२} भजूं, जो राखी^{१३} गहि वाहं ॥१६१॥

हैं अनाथ कछु होय न मोसों । जो कछु होइ नाथ सब तोसों ।
 मोसों यहै पेम दुख भरना । नाउं तिहारो सुमिरन करना ॥
 यह बल नाहिं कि तुम पहं आऊं । मिलि कै तन की तपत बुभाऊं ॥
 तुमहीं प्रघट होहु जो आई । आपा आन देहु दिखराई ॥
 तब ही पिउ दरसन हीं पाऊं । इन सत्रुन सों आप छुड़ाऊं ॥
 महाराज तुमसों सब होई । तुम कहं वरजनहार न कोई ॥
 तुम अपने सत्रुन कै वरता । सब करि सके^{१४} आप जो करता ॥
 जो तुम आइ करहु बट^{१५} फेरा । कहो तुम्हें^{१६} कौन धी घेरा ॥
 यातै^{१७} विनी करौ हीं नाहां । गहर^{१८} न करउ गहो मम^{१९} वाहां ॥

दोहा—जद्यपि धन पिउ कै भई, तन मन धन सब खोइ ।
 पै जौ लीं पिउ ना मिलै, अचल सुहाग न होइ ॥१६२॥

दोहा—१६१-१—कोटिक महं हुतो (स०) । २—न (का०) । ३—तिनहुं सों मो
 सी (का०) । ४—चुप (स०) । ५—मोलाई (स०) । ६—आपन उरभाही (का०) ।
 ७—पुनि (का०) । ८—बहुरि (का०) । ९—निमुरज (स०) । १०—उरभन (का०) ।
 ११—ऊन (का०) । १२—तो बचाँ (स०) । १३—रापि लेहि (का०) ।

दोहा—१६२-१—सुख (स०) । २—अति (स०) । ३—तो मोहि कौन (स०) ।
 ४—यातै (का०) । ५—कहर (स०), गोह (का०) । ६—मोहि (का०) ।

तव वह सखी मरम जिन्ह^१ मिती^२ (? मूठी) । ताकर सुरत लेन^३ लग ऊती^४ (? ऊठी) ॥
 देखी आंसु वहै ह्वै नदी । जनु^५ अन्हाइ वैठी द्रोपदी ॥
 विरह दुसासन^६ कै बस^७ आई । भजन करै हरि होहु सहाई ॥
 सलिल आंसु रोवत जब देखी । देइ लागि सिख सखी सरेखी ॥
 धन तू निपट पेम मग काची । रचि अजहूँ इन रंग^८ न राची ॥
 पेमी सो जिन्ह आह^९ न आंसू । सुबुक सुबुक^{१०} भूजा जस मांसू ॥
 जौ लग मांस कचाई भरा । तीली भूजन पानी धरा^{११} (? ढरा) ॥
 सिक्कै^{१२} न सबद न पानी दुरा^{१३} । फिर फिर अगिन आंच पर^{१४} धरा^{१५} ॥
 प्रेम दाह मलयागिर^{१६} जानै । सो प्रेमी प्रीतम पहिचानै ॥*

दोहा—जो^{१७} जिउ सांचा प्रेम सों, पेम अगिन सियराइ ।

ज्यों ज्यो उपजै तन तपन, त्यों त्यों ताहि सुहाइ^{१८} ॥१६३॥

सखी न जान पेम दुख रोवीं । पीर पाइ दृग नीर^१ भिजोवीं ॥
 केतो^२ अरथ^३ यह रोनीं माही । सुन चित लाइ^४ कहीं तो पाहीं ।
 लग्यो जो पेम पौध उर थारां । सीची ताहि^५ सदा^६ जनवारां ॥
 हिया कुवा मन रहिट फिराऊं । नैन बडे भरभर दुरकाऊं ॥
 विरह अगिन उर कीन्ह प्रकासा । आँखिन निकट कंत कर वासा ॥
 तिहिं कारन राखूँ जल बूड़ी^७ । अरु जिन होय ठौर इन्ह^८ जूड़ी ॥
 औ कवहूँ पुनि नीद सतावै । आइ जाय जब^९ श्रीसर पावै ॥
 तिहिं आखिन अधिका ही रोऊं । रोइ रोइ ताकी जर धोऊं ॥
 इह^{१०} अरिन मोहिं नीक न भावै । जब आवै पिउ सुरत भुलावै ॥

दोहा—निज स्वार्थ नहिं^{११} रुदन मोहि^{१२}, सुन सखि द्योहु सुनाइ ।

इरौ कि^{१३} मकु हिय जल बढै, सो पेम अगिन घट जाइ ॥१६४॥

दोहा—१६३-१—तव (कां०) । २—मिचती (कां०) । ३—लिये (कां०) ।
 ४—जिवती (कां०) । ५—मनो (स०) । ६—उसासन (स०) । ७—निस (कां०) ।
 ८—अंग (स०) । ९—वहै (कां०) । १०—सीक (स०) । ११—भरा (कां०) । १२—
 सपिनन (कां०) । १३—बहै (स०) । १४—सुख । (स०) । १५—सहै (स०) । १६—
 जो मलैकर (कां०) । *इस चौपाई के पश्चात् 'स०' प्रति में यह चौपाई और है:—जरवर
 सिमिर सिमिर सुख पावै । पिउ जिउ दहै हियै सियरावै । प्रस्तुत संपादन में प्रत्येक दोहे
 के साथ नौ चौपाइयो का क्रम रखा गया है । जो चौपाई अधिक समझ कर अलग कर
 दी गई है, वह अधिकतर अंत की (दसवी) ही चौपाई है । उसको अलग कर देने से न तो
 अर्थ का अनर्थ होता है और न कथा प्रवाह में ही कोई बाधा पड़ती है, वरन कही-कहीं
 वह ऊपर से लादी हुई मी जान पड़ती है । १७—जिहि (कां०) । १८—सहाइ (स०) ।

दोहा—१६४-१—नैन (कां०) । २—विछोऊं (कां०) । ३—कऊ (स०) ।
 ४—ऊठि रोऊ तोह मांहा (कां०) । ५—जो सो निस मह जु बांहा (कां०) । ६—सदा
 (कां०) । ७—अंगु (कां०) । ८—बूढे (स०) । ९—अन (कां०) । १०—तव (कां०) ।
 ११—विप (स०) । १२—इन (स०) । १३—कै (स०) । १४—फिराऊ (कां०) ।

जद्यपि सखी' ताहि सिख' दई । पै दुख देखि दुखित अति' भई ॥
 सो दुख सहि न सकी अकुलानी । आई जहँ बैठी पटरानी ॥
 विनी कहेसि तव वैठि अगोसँ । रानी करहु सिंभार सखीसँ ॥
 वारी कँ जो विथा मैं पाई । वहँ निज विनी करन कीं आई ॥
 नल उजैन राजा जो कहावा । इन° वारी तासों चित लावा ॥
 सुनियत अनल वरन उजियारा । तिहि कर भरप' लगी उर झारा ॥
 वहै दाह हियरै महँ परा । सँका चहै आग कर जरा ॥
 तिहि° कँ रूप चित्र एक' चीता° । वहै राम कँ जानै सीता ॥
 निसि दिन रहै पेम' अनुरागी । ओट होइ तवही' वैरागी ॥

दोहा—रोंव मन देइ मित्र महँ, देखि देखि वह' चित्र ।
 जिहि' को ऐसो चित्र यह', कसो धों सो मित्र ॥१६५॥

है रानी आगे जिउ' जरी । अब यह वात तेल होइ परी ॥
कै जनु' हेम सुहागा डरै । परै जो ओट करै' तिहँ खरै ॥
 ठक' अस रही मरम जब सुना । बोल न सकी सीस पै धुना ॥
 साँप छछूँदर वात नचौलै' । उगलै वन न जात' सो लीलै ॥
 मनही मन विमूरि पछिनाई । जँसै भुरै चोर कँ माई ॥
 रोवत हाथ मलत उठि चली । आप अकेली संग सो गली ॥
 आई जहाँ दमावत वारी । भइ भुराड पात भुइ डारी ॥
 हुती जो फूल काँट है रही । तिहि देखत अधिकी हिय' दही ॥
 यह' जानै' वारी मैं सीचीं । वारी निसि दिन रहै उलीची ॥

दोहा—ज्यो ज्यों वारी मीचिये, त्यों त्यों सुखत जाइ ।
 नैन पनारे' खुल रहे, बूँद न जल ठहराइ ॥१६६॥

दोहा—१६५-१—सपिन (कां०) । २—सुख (स०), सिपाई (कां०) । ३—अप (कां०) । ४—जहीं हुती (कां०) । ५—कीर व्यथा (कां०) । ६—सो (कां०) । ७—'कां०' में नहीं है । ८—हरै (कां०) । ९—मुलागा चहै आरिग कर (कां०) । १०—ताकै (कां०) । १२—अति (कां०) । १२—जीता (स०) । १३—भये (कां०) । १४—बैठे (कां०) । १५—को (कां०) । १६—जाको (कां०) । १७—है (कां०) ।

दोहा—१६६-५—हिय (कां०) । २—कंचन पेम (स०) । ३—परी (स०, कां०) । ४—गरी नहि (कां०) । ५—थक (कां०) । ६—लजीली (कां०) । ७—जाइ न लीली (कां०) । ८—छरै (स०) । ९—दुप (कां०) । १०—इह (कां०) । ११—जानी (स०) । १२—वियारे (कां०) ।

देस देस कहं वांभन चले । जहां छत्रपति राजा भले ॥
 जहां तहां यह मरम सुनावहिं । दावी अगिन खखोर जगावहिं ॥
 चली वात होऽ पवन उड़ानी । भीवरहिं मिली कवंल अरधानी ॥
 खंड खंड महं खल बल परा । सूता चाव जाग भा खरा ॥
 जानौ स्वाति वूंद नियराई । मेघ पपीहा गरज जगाई ॥
 आगें जगत थका सुनि शोभा । कीतुक कहं सब कर चित लोभा ॥
 बनै लाग सब राजा राज । जो जिह जोग तैस^१ तिहिं चाऊ ॥
 कोऊ^२ धरै मिलन मन आसा । कोऊ देखा चहै तमासा ॥
 जग उरझा यह^३ धंधा माहीं । चाहै^४ घर व्याह कमाहीं ॥

दोहा—पाय कवंल अरधान अलि, रसिक^५ भए सुचेत^६ ।
 बनहिं^७ बनावन^८ पांख जनु, उड़ा चहै तिहिं हेत ॥१७१॥

नल यह मरम वात सुधि^१ पाई । चाहै पंख लाइ उड़ि जाई ॥
 आइस कीन्ह विलंब न लावहु । साज पाट सब कसहु कसावहु ॥
 अब^२ ततकाल चलावहु डेरा । वीस कोस चलि करी वसेरा ॥
 राजा अति^३ आतुर जब जाना । नेगी^४ विनी वचन मुख आनां ॥
 बडो प्रताप अखंडित राजू । मन^५ वांछत विघ पुरवै^६ काजू ॥
 महाराज जब गवन करीजै । सिद्ध जोग सम्मुख कै लीजै ॥
 सुदिन विचार गनेस मनावहु । जो इच्छया जिउ धरहु सौ पावहु ॥
 विन दिन देखै चलै जो कोई । जोगी जती ग्रहस्थ न होई ॥
 जिन इच्छा आसा कछु नाही । करै जो लहर उठै मन माही ॥

दोहा—जो ग्रहस्थ व्यवहार मग^७, चलै राखि जिउ आस ।
 ता कहं जग व्यवहार सों, बनै न भयें उदास ॥१७२॥

दोहा—१७१—१—तैसैं (का०), तीस (स०) । २—कोई (का०) । ३—तिहिं (का०) । ४—जानो (का०) । ५—सोऊ (स०) । ६—अचेत (स०) । ७—बनै (का०) । ८—बनावै (का०) ।

दोहा—१७२—१—सुनि (का०) । २—अति (का०) । ३—तव (का०) । ४—नीकहं (स०) । ५—सिघ करो (का०) । ६—वांछत (का०) । ७—मख (स०) ।

सिद्ध गीन^१ कै^२ दिवस^३ धरावा । सिद्ध जोग चौथे दिन पावा ॥
 आयसु कीन्ह^४ सभा महं जाना । संग चलें जे रावत राना ॥
 चटक^५ वनाइ वनौ सब कोई । देख लेहु जिन्ह गांठ न होई ॥
 भंडारी कै आयसु कीन्हा । जिन्ह जेतक मांगा तिन्ह दीन्हां ॥
 लागे^६ लोग सब वनै वनावै । गीन दिवस नियरै भा^७ आवै ॥
 राज साज पुन सजे^८ सवारहि । हीरा रतन ओप चटकारहि ॥
 जीरन साज सो नीतम कीन्हां । और जु निरंग^९ रंग निन्ह^{१०} तीन्हां ॥
 गज तुरंग पुनि^{११} होंहि जो खरे । चमकहि साज हेम नग जरे ॥
 रथै साज ऐसे पुनि वना । निज व्योरा कर जाइ न गिना ॥

दोहा—जौन साज नग^{१२} पाट^{१३}, कंचन विना न कोइ ।
 चितये^{१४} चौधा लगि रहै, जगमगाट अस होइ ॥१७३॥

अब वह सिद्ध गीन दिन आवा । चल चल कह निसान धहरावा ॥
 उठे^१ लोग जब मुना दमामा । सबही कीन^२ चलै कर सामां ॥
 साज बांध अपनै कर^३ धरै । चला चहै ततखन^४ तिहि^५ धरै ॥
 पुनि दूजे^६ निसान जब बाजा । दरवादर उमड़ा धन गाजा ॥
 जुरै फेरि^७ लोग दरबारा । जावत नेगी^८ संगि जुझारा ॥
 दुइज चाँद लीं वाढ़ि निहारें । कव निकसै कव दरस जुहारै ॥
 वाहन बन वनाइ सब^९ आए । हाथिन हौद पलान बनाए ॥
 चलत सिंघासन श्री सुख आसन । लिएं कहार डसाये^{१०} डासन^{११} ॥
 तीखे तुरन^{१२} जुते^{१३} रथ आए । रवि वाहन ज्यों चलहि चलाए ॥

दोहा—तीखै तुरै^{१४} जो बन खरै, तिनखीं कही सुभाव ।
 चलहि^{१५} राखि तन पवन पर, चढियत^{१६} मन^{१७} परि पाव ॥१७४॥

दोहा—१७३—१—गवन (कां०) । २—कहि (कां०) । ३—दोस (कां०) ।
 ४—भा (कां०) । ५—तिलक (कां०) । ६—देखान्ह (स०) । ७—लाख (स०) ।
 ८—भौ (स) । ९—पचहं (स०) । १०—तुरंग (कां०) । ११—तिहि (कां०) ।
 १२—वन (कां०) । १३—सब (कां०) । १४—लग (कां०) । १५—चित्त (कां०) ।

दोहा—१७४—१—ऊभे (कां०) । २—लेन (स०) । ३—कै (स०) । ४—अब
 (कां०) । ५—इहं (स०) । ६—धरी (स०) । ७—लोग भरा (कां०) । ८—जानी
 नित संखी श्री जुझारा (स०), जामत नेगी ओझे झारा (कां०) । ९—पुनि (स०) ।
 १०—दिसायन (कां०) । ११—दरसन (कां०) । १२—तरन (कां०), वरन (स०) ।
 १३—चलते (कां०), जेते (स०) । १४—तरन (कां०) । १५—चढहुं चलहुं राख
 मन (स०) । १६—चढि हती (कां०), चढ़ा हुता (स०) । १७—जिउ चाव (स०) ।

रैन गई दिन भा उजियारा । मवही आपन मान मन्हाग ॥
 भयो विहान^१ चला लद टैरा । श्रीर ठौर नई नाग बनेरा ॥
 चहुं दिमि चर्गी चलो होउ रही । नाग भंगे नीर भनि गई ॥
 कोई^२ प्रागै कोर^३ पावे । कोउ निहायन कोर^४ फाटे ॥
 चलै जाहि सब रहै न कोर^५ । रहे कोन सो सब द्योरे ॥
 जे घर अपने जान न पाए । दिनक एक सई भए पराए ॥
 लोगन याद^६ जुराए टाई । जर होउ धरन गई^७ मिनो माटी ॥
 घर आंगन सुधि रही न कोर^८ । मान जवा माना भा मोर^९ ॥
 ना घर रहे न ते घर धारा । के जान जग^{१०} घर धोकारा ॥

दोहा— जो आवा नो जान नग, रहन^१ न था ॥ कोर^२ ।

प्रावन जान जगत मद्र, मन पारी नो होउ ॥१७६॥

राजहि बहुत चाव जिय दास । का उठि जाय होउं उन दास ॥
 उपजहि उपज चाव पर नाउ । पाव कहे श्री पाई^१ बगार ॥
 चाव फरहरा प्रागै^२ पाही । निहि तै मद्र दम पैर मन्हारी ॥
 पंथ चलत प्रथमै मव धारं । चाउ नो अधित भगे नलकारे ॥
 ज्यों ज्यो पैग पैग भुउं पटे । ज्यों ज्यों पावहुं बन परगटे ॥
 नल तिहि चाव चला होइ बाऊ । चाव न धरन द्रष्ट भुउं पाउ ॥
 जिन्ह पिउ अपनी प्रोर बलारि । जिन्ह पे चाव याद^३ जिय नावे ॥ *
 प्रेम पंथ सोई पग धरे । जाही नाह सो पानम करे ॥ *
 ताके हाथ उर^४ य^५ मूठी । ज्यों ज्यों गेयो ज्यों त्यों उठी ॥ ॐ

दोहा—जदपि पीउ के चाह दिन, पिउ की नहे न कोर^६ ।

पीउ^७ पिघारा तिहि नहे, जाहि चाह मिड^८ होउ ॥१८०॥

दोहा—१७६—१—भयान (का०) । २—मिल (ग०) । ३—कोऊ (का०) ।

५—कोई (स०) । ६—प्राह (स०) । ७—तारी (ग०) । ८—कोन (ग०) । ९—माते (स०) । १०—घर (स०) । ११—रहे (का०) ।

दोहा—१८०—१—चलो (का०) । २—लागे (स०) । ३—नैनहं तै यह दसन विछाहीं (स०) । ४—नलकारी (का०) । ५—छतिया (ग०) । * ये चौपाइयां (ग०) । प्रति में एक दूसरे के आगे पीछे है तथा इनके आगे उनके श्रीर 'म०' प्रति के चार दोहों (१८० से १८३) तक के पीठों का क्रम भंग है । उक्त चौपाइयों के पञ्चान् 'का०' में जेप अग्न निम्नलिखित है—

प्रेम वैस तन व्याकुलताई । ओ मन यान निरान दुवधाई ॥

तन मै श्रीर ठौर जिय नाही । सात पाच आवै मन माही ॥

(‘स०’ प्रति में × १८३ दोहे की ये क्रमजः तीसरी श्रीर अंतिम चौपाइयां हैं)

दोहा—तन सूना जिव मित्र पै, मन भा भोहि उदास ।

पिन इति पिन ऊति पिन उधर, पिन भोई पिन आकान ॥१७६॥

(‘स०’ प्रति में इस दोहे की संख्या १८३ है)

† ‘का०’ में यह चौपाई १८० संख्या दोहे की आठवी संख्या पर है । ॐ यह ‘का०’ में ५८२ दोहे की अंतिम चौपाई है । ६—टारे (स०) । ७—तिहि (का०) । ८—पै प्रीतम (का०) । ९—जिहि (का०) ।

राजा निपट उतावल चला । पहुँचा तहां जाइ कै ढला* ॥*
 कुंडनपुर सीवां जब आई । अदभुत लीला दीन्ह दिखाई ॥
 जो^१ कछु भाटिन कीन्ह बखानूं । देखि भया बखान उनमानूं ॥
 उतरे आइ भूप चहुं पामा । एक भयो मिलि पुहुमि^२ अकासा ॥
 वरन वरन डेरा भये खड़े । ऊंचे जनु अकास सों गड़े ॥
 चमकाहि सब जरकमे तनाए^३ । जिमि अकाम निसि नखत दिखाए ॥
 सोने के सुमेर ज्यां गड़े । तिहि पर रतन पदारथ जड़े ॥
 सावन मास साँभ जनु फूली । चारों ओर नगर छवि भूली ॥
 सबही दंभ बढ़ाइ देखावा^४ । दंभ दिखाइ चहै तिहि पावा ॥

दोहा—दंभ किये वहाँ ना मिलै, जो लग लगन न होइ ।

दंभ मिले तो इन्द्र सों, दम्भी और न कोइ ॥१८१॥

देख सुठीर सरोवर तीरा । निरमल जल श्री भरा गंभीरा ॥
 आयसु कीन्ह ठाढ़ भा डेरा । उतरि तहां नन कीन्ह^५ बसेरा ॥ ॐ
 पेम^६ विवस पुनि^७ व्याकुलनाई । श्री मन ग्राम^८ निरास^९ द्विधाई^{१०} ॥†

दोहा—१८१—* (कां०) प्रति में इसके पहले “मुना दमावत प्रीतम आवा.....” चौपाई से लेकर “जद्यपि पिय की चाह विन.....॥१८०॥” दोहे तक का अंश है । यहाँ ‘स०’ प्रति का पाठ लिया गया है । इसका कारण यह है कि ‘स०’ प्रति में यह अंश उचित स्थान पर है । जब नल कुंडनपुर पहुँच गया तो दमावत का उसका डेरा अच्छी तरह दिखाई दे रहा था । अतः उसकी दया का वर्णन ‘स०’ प्रति में प्रसंगानुसार है । ‘कां०’ में प्रसंगानुसार नहीं, नल के रारते में ही रहने पर उसमें यह वर्णन आजाता है ।

१—हला (स०) । २—जम (स०) । ३—भुँई (स०) । ४—बनाई (कां) ।
 ५—दिखावी (कां०) । ६—वाह (कां०) ।

दोहा १८२—१—लीन (कां०) । ० ‘कां’ प्रति में इसके पश्चात् यह चौपाई है—
 दुहुं देश दोऊ लेहि मरोरा । चकवी चकवा कर असि जोरा । ‘स०’ प्रति में यह १८३वें दोहे की अंतिम चौपाई है । प्रस्तुत संपादन में देखिए । १८३वें दोहे की अंतिम चौपाई ।
 २—प्रेमायस (कां०, स०) । ३—मन (स०), तन (कां०) । ४—अस (स०) ।
 ५—तरास (स०) । ६—दुखदाई (स०), दुबधाई (कां०) । † यह चौपाई ‘कां०’ प्रति में १७६ संख्यक दोहे की आठवीं चौपाई है ।

नल बोला तुम दरसन^१ प्यामा । बैठ हता हीं मिलन उदासा ॥
 तव तिहिं ठाउं इन्द्र अनियासा । आवा उतर वैठि मम^२ पामा ॥
 तिन दीठिबं व मो^३ मंत्र सिखावा । कह संदेस तुम तीर पठावा ॥
 जद्यपि कहिं सो दुखावन^४ वाता । पै मोहि भइ कुवजा कै लाता ॥
 जिहि कारन तुम लीं हीं आवा । पाइ दरस उर दाह मिरावा ॥
 इन्दर कहा सोऊ अब कहीं । कहत न वन कहा पै^५ चहीं ॥
 राखि न जाइ संदेस परावा । दोख^६ न होइ चहै, पहुंचावा ॥
 कहसिं कहो तुम^७ हम कहं वरऊ । सब सुख इन्द्रलोक कै करऊ ॥
 सहजहिं^८ तुमहिं^९ मिलै सब^{१०} भोगू । जिहि लग^{११} जग सार्वं तप जोगू ॥

दोहा—बड़ो महातम बड़ो मुन्न, बड़े ठीर कर राज ।

राग रंग रस निरत गुन, विद्या सर्व समाज ॥१६२॥

सुनि यह बात दमावत बोली । जर वर^१ उठी भभक जिमि होली ॥
 मै^२ पिय तुव^३ दरसन की प्यासी । तीन^४ लोक सों भई^५ उदासी ॥
 जेहिं^६ ठाउं पिउ^७ संग^८ मिलि रहूं । सोई इन्द्रलोक हीं कहूं ॥
 मोहिं^९ किहि काज इन्द्र जो बड़ा । तोर चित्र मोरै हिय गड़ा ॥
 इन्द्र लोक चाहे सो^{१०} कोई । जो पिउ के रंग रंगी न होई ॥
 तोरे विरह वान लगि नाहां । मोरै वेह^{११} भई उर^{१२} माहां ॥
तू^{१३} अस निठुर करी उपदेसा । लोगन कै मोहि कहत संदेसा ॥
 तो मिलाप कारन रे विगासी । ए सब ठठ हीं ठठी^{१४} निरासी ॥
 जो हीं वरीं तो तोही वरीं । नाहित यवाहि खाइ विख मरीं ॥

दो०—हो^{१५} तोहि^{१६} अरपन कै रही, तन मन जोवन^{१७} पीउ^{१८} ।

चाहसिं^{१९} तन मन सहत^{२०} लै, चाहे एकां^{२१} जीउ^{२२} ॥१६३॥

दोहा—१६२-१—दर्श (कां०) । २—मोहि (कां०) । ३—एक (स०) ।
 ४—गहन (स०) । ५—देखानी (स०) । ६—पुनि (कां०) । ७—दोछन (कां०),
 दोछिन (स०) । ८—कहिस कि (कां०) । ९—हमै तुम (कां०) । १०—समुझूं
 (स०) । ११—माहि (कां०) । १२—सो (कां०) । १३—कारन सार्वं (कां०) ।

दोहा—१६३-१—विरहै कथा पोथी उर पोली (कां०) । २—पीये हीं (कां०) ।
 ३—तों (स०) । ४—तिहूं (कां०) । ५—सदा (स०) । ६—जो (कां०), जिहै (स०) ।
 ७—तो (कां०) । ८—सों (कां०) । ९—मो (कां०) । १०—वह (स०) । ११—पीर
 (कां०) । १२—हिये (कां०) । १३—तो काहि निठुर करूं (कां०) । १४—सहीं (कां०) ।
 १५—हों (स०) । १६—तू (स०) । १७—जियरे (कां०) । १८—पीय (कां०), जीउ
 (स०) । १९—चाहत (स०) । २०—भेट (कां०) । २१—एकै (कां०) ।
 २२—जीये (कां०) ।

नल इह वात सुनत फिर^१ रोवा । रोएँ रकत वरन भए कोवा ॥
 रोवें अरु वोलैं दुख^२ वैनं । वैन कहैं अरु पाँछैं नैनं ॥
 प्यारी अब केहि भाँति बखानूँ । जो जिउ^३ पर दीती ही जानूँ ॥
 जे जे दुख तो लगि मैं सहे । ते छिनहीं महँ जाउं न कहे ॥
 पहले मैंहि जरा इहि^४ आगी । मोरै अग्नि आंच^५ तोहि लागी ॥
 हौं ऐसे कव चही निदाना^६ । तो जिउ^३ मोर नेइ को ग्राना ॥
 जो तूँ अनख संदेरां मानसि । यहँ^७ मोरे कछु चूक न जानसि ॥
 वह सुर पुर राजा ही चाँटी । ताके पाइं तरै की माटी ॥
 कहाँ^८ न कराँ^९ कोथ महँ^{१०} आवै । देउँ^{११} मराप तन छार मिलावै ॥

दो०—नाहिन^{१२} डरी^{१३} सराप सो^{१४}, तन अबहीं^{१५} किन जाव^{१६} ।

ही जो^{१७} सदेसी होइ चला, तुव^{१८} दरसन कै चाव ॥१६४॥

ता कर उत्तर कहा दमावत । जो तोहि नकुच इन्द्र के आवत ॥
 काल्ह मोयंवर कर ठठ हाँई । जुरै सना आर्य नव कोई ॥
 ही तोहि^१ हूँढ लेउं तिन^२ माही । देखै लिंगिट^३ गही तो^४ वार्हीं ॥
 इन्द्र पुनि^५ देखै तिहि ठाऊँ । नै उर जैमाना पहनाऊ ॥
 तव तेरी कछु चूक न जानै । नकल^६ चूक मोरी पै मानै ॥
 जो मोहि इन्द्र सरापहु देखै । अबला कै^७ हत्या सिर नई ॥
 अबही^८ मोहि मारी किन कोऊ । सह^९ न सकी छिन तोर बिछोहू ॥
 सुनि इह^{१०} वनकहाव^{११} नल फिरा^{१२} । छूटा तव जो श्रील^{१३} मन चिरा^{१४} ॥
 जैसे समाचार उत पाए । आइ इन्द्र पहँ^{१५} दरनि गुनाए ॥

दो०—इन्द्र न उत्तर दीन्ह सुनि, उत्तर चले विचार ।

चढा हुता जिउ चाव जो, उत्तर^{१६} दीन्ह उतार ॥१६५॥

दोहा—१६४—१—बहुत (स०) । २—मुख (का०) । ३—मोपर (का०) । ४—मैं
 (का०) । ५—जाहं (स०) । ६—इन (स०) । ७—उपज (का०) । ८—न आनां
 (का०) । ९—तू चहैये मो ले पा मानां (का०) । १०—तू (का०) । ११—कहा
 (का०) । १२—कहूँ (का०) । १३—मोहि (का०) । १४—बोह (का०) । १५—श्री
 पुनि (का०) । १६—डरन (का०) । १७—तै (का०) । १८—जाहु (स०) । १९—सु
 (का०) । २०—सो तो (स०) ।

दोहा—१६५—१—तू (स०) । २—ल्योंहुं (का०) । ३—तिहि (का०) । ४—पंच
 (का०) । ५—तोहि (का०) । ६—सोऊ (स०) । ७—मानै चूक तु मोरी (का०) ।
 ८—की (का०) । ९—मोहि अबही (का०) । १०—पैन सकूसहु (का०) । ११—ए
 (स०) । १२—कहाव (का०) । १३—भरा (स०) । १४—उन (का०) । १५—घरा
 (का०) । १६—कहि (का०) । १७—सो उत्तर (स०) ।

धीस सोर्यवर कर ग्रव आवा । वरनी सभा जो^१ ठौर बनावा ॥
 ऊंचा जाकर^२ चौतरा^३ चिना । बहु विस्तार घेर^४ पुनि^५ बना ॥
 अति ऊंचे चंदवा पुनि तने । तिन^६ महं^७ कनक नखत ससि बने ॥
 जनु पेमी^८ पिउ मद मतवारे । तिन्हहुं^९ लोक सों ग्रधर निरारे ॥
 तने तनाव हाय पग डरे । तन विसराइ व्यान महं परे ॥*
 ऊपर रहा रूख^{१०} होइ गाता । अंतह करन पेम रंग राता ॥
 कनक चित्र चमकहि छवि लिएं । पेम^{११} अग्नि अंगार जनु हिएं ॥
 पाटवर सब तरै विछाए । मनु^{१२} फूलन कह^{१३} पथ^{१४} बनाए^{१५} ॥
 का जु भया^{१६} देह रंग लोना । अनय^{१७} निदान खेह^{१८} पर मोना ॥
 दो०—यहै समुक्ति उन^{१९} देह जनु, दीन्ह^{२०} पेम मग^{२१} डार ।

नेक न ग्रानों^{२२} अनख^{२३} जिय, चहु सो^{२४} चाहू विसतार^{२५} ॥१९६॥

राजा राव जुरे सब आई । सब^{२६} मिल सुंदर सभा बनाई ॥
 कियी सभा सो^{२७} बहुत छवि^{२८} मनी । तव वह एक सभा अति^{२९} वनी ॥
 इन्द्र सभा वरनी जग माही । दूजी और न ता उपराही^{३०} ॥
 सोई^{३१} इन्द्र वैठो^{३२} इक ओरा । तव पैइय जब फिरै दिहोरा ॥
 सोवै लपट उठै चहुं पासा । ज्यों वागा सब भुई^{३३} अकासा ॥
 कंचन रतन चमक चित चोरै । मोभा सरवर नभा हिलोरै ॥
 राजा कनक कवंल से फूले । मन सबक^{३४} मधुकर होइ भूले ॥
 एकै कवंल वास सब वासे । मकन^{३५} एक पानिप के प्यासे ॥
 एकी भीत सबन के हिये । मांते सब^{३६} एक मद पिएं ॥

दो०—जा छवि लागि यह छवि लगी, सभा जुरी सब आई ।

दिस्टि न आवै सबन के, हिये मांभ मंडराई ॥१९७॥*

दोहा—१९६—१—ठोर जु (का०) । २—जाकर (स०) । ३—जारा (स०) ।
 ४—करि ओ (का०) । ५—अनवना (स०) । ६—तिहि (का०) । ७—मै (का०) ।
 ८—गीये (का०), पेमिहि (स०) । ९—तिहि (का०) । * 'का०' में यह चौपाई नहीं
 है । १०—रूखी (स०) । ११—प्रेम अंगार अग्नि जनु (का०) । १२—चुन (का०) ।
 १३—जनु (का०) । १४—गीद (का०) । १५—विछाई (स०) । १६—वनां (का०) ।
 १७—अति (का०), अनिय (स०) । १८—गेह (स०) । १९—इन (का०) ।
 २०—दिए (स०) । २१—मग (का०) । २२—ग्रानहं (स०) । २३—ग्रंख (स०) ।
 २४—चहो मु चाव (का०) । २५—लिटार (स०) ।

दोहा—१९७—१—सबहीं (का०) । २—पुहुप (का०) । ३—जव (स०) । ४—उत
 (स०) । ५—ऊपर आंही (स०) । ६—सो वह (स०) । ७—वैठि (का०) । ८—जनु (का०) ।
 ९—पोहम (का०) । १०—संगी (का०) । ११—तिहि पानिप के सभ (का०) ।
 १२—मवही (स०) । * इस दोहे के पश्चात् ५ दोहों का निम्नलिखित अंश 'का०' प्रति में
 नहीं है ।

जीलों जुरी सभा उजियारी । तीनों वनी चांद ज्यों नारी ॥

सोरह औ वारह सब साजे । ससि छिपि सूर छिपा दोउ लाजे ॥
 अब व्यौरा कह वरनि सुनाऊं । सुनिहि जो वारह अभरन नाऊं ॥
 प्रथम जो अभरन मंजन कीन्हा । दूजो सेंदुर मांग जो दीन्हा ॥
 अभरन माथे तिलक जो लावा । अभरन^१ अंजन दिरगन्ह लावा ॥
 अभरन नासिक फूल अमोलू । औ अभरन मुख लीन्ह तँबोलू ॥
 अभरन सवनन^२ कुंडल वने । मिले चीर तन अभरन गने ॥
 अभरन^३ गिएं^४ कीन्हें तिन्ह ताने । औ अभरन कर कनक गलाने ॥
 छुद्रघंटिका अभरन मांही । औ अभरन नेउर भनकाही ॥

दोहा—ए वारह उरधार अरु^५, सोरो^६ कहीं विचार ।

लघु^७ दीरघ हीं चार सब, सुभर^८ खीन^९ हीं चार ॥१॥

निज वरनौ जिन्ह विध धनि वनी । औ पुनि जौन रूप रंग सनी ॥
 कै मंजन धनि प्रथम अन्हाई । रतन जोति तन दिपत देखाई ॥
 पहरा चीर रूप दधि वाढ़ा । वदन चंद जनु अब मथि^१ काढ़ा ॥
 केस नाग देह तेल चुचारे । चमकहि कंचुल डार विसारे ॥
 रचि पत्रावलि मांग वनाई । कंचन रेख कसौटी लाई ॥
 जिन करवट बेनी पर धरा । निसि अकास गज मारग परा ॥
 जमना मांझ गंग कै धारा । खिन महं सूर किरन उजियारा ॥
 मन्दर महं रवि भोर देखाई । बदरे^२ धार कौघ चमकाई ॥
 बेनी सुमिल^३ गुही गह दौरे । क्रोध नाग मनो खाइ मरोरे ॥

दोहा—इहि बेनी ता पीठ पर, सुनहु नेक अन्हहाइ ।

मलयागिर तन तरु मनौ, तार रहा लपटाइ ॥२॥

दोहा—१-१—अभरै । २—सुवनन । ३—अभ । ४—क्रिएं । ५—अन । ६—सोनो । ७—लिख । ८—सवर । ९—काहै ।

दोहा—२-१—कथि । २—वतरै । ३—समल ।

साज मांग जय सेंदुर भरा । रैन वार दीपक जनु धरा ॥
 भयो भोर रवि किरन निहामी । उदय लाग मनु किरन विकासी ॥
 तापर पूरि धरै पुनि मोती । मोती रतन भये तिन्ह जोती ॥
 राखा सीसफूल दुति बाढी । मानों रैन मांग मनु काढी ॥
 पुनि ललाट मधि तिलक संवारा । मनां उवा ससि महं धुव तारा ॥
 तापर टीक जड़ाऊ नावा । सब सिंगार राज' जनु आवा ॥
 कटक^१ सिंगार रूप सों राजा । कोय मैन जीतन कहं साजा ॥
 वने कान कुंडल इन्ह भाऊ । वदन चंद रथ कै जनु पाऊ ॥
 ऊपर खूंट जड़ाऊ धरे । ससि दाहुं ओर दिया जनु वरे ॥

दोहा—जो चितवह स्रवनन चमक, चितै रहै सो चीव^१ ।
 तारत^४ चीर दही दिसा, उठै काव ग्रस काव ॥३॥

नैन चपल श्री अंबर लागा । कछी तुरंग लगी जनु वागा ॥
 कंजोड खंज भाए उन्ह धरे । कंजन रेख प्राण होइ परे ॥
 नैन वाभ मनो सांन लगाई । भीहं धनुक धरि चहत चलाई ॥
 नासा सुमन फूल पहरावा । मानों नलिन धर मुवा फंदावा ॥
 विद्रुम अधर पान जो खाई । राते रतन रूप दिखराई ॥
 चह चहाइ अंत्रित रस भरे । कुमुम रंग ते राते खरे ॥
 तिलक कपोल अंबुज पर परा । मधुकर छीन विविध रस अरा ॥
 देखि वदन दीपक उजियारा । पर पतंग वर भय मनु छारा ॥
 अलक जो हुरि कपोल पर रही । सो उपमा कछु जाय न कही ॥

दोहा—अलक विराजै वदन पर, सो वरनी इन्ह भाइ ।
 मानो उड़ नागिन उड़ी, लगी चंद्र कहं जाइ ॥४॥

वन ठन जब निकसै कहं भई । बाहर सभा अवाई गई ॥
 चौके लोग सब सुधि पाई । सुना कि' अब भा चहे अवाई ॥
 चाव^३ नीक^३ घटही घट वरं^४ । राजा राव^५ आठ सब गरे ॥
 खरे भये मिलि पाति लगाई । बहु बनान कै सभा बनाई ॥
 जो जस^६ तैस ठौर तिन^७ पावा । ऊंच नीच अन्नर दिखरावा ॥
 कहिवे^८ कहं^९ अन्तर तो परा । चोरा^{१०} एकै सब जग हरा ॥
 एकै अरथ जुरै सब आई । सब महं एकै जोत समाई ॥
 वन वनाव^{११} राजा भये ठाढे । मानहु^{१२} सब चित्र कर^{१३} काढे ॥
 जद्यपि चित्र कोटि विधि वने । पै हिय सबै एक रंग सने ॥

दोहा—सभा बनाई चित्र सम^{१४}, कियो^{१५} वरन नहं चित्र ।

पै निज हियं सवन^{१६} कहं, सो वह एकौ मित्र ॥१६८॥

कै पहरी मुक्ताहल माला । तै जनु नखत चाद मां वाला ॥
 कंठसिरी पहिरै अति सोभी । तिन सोभा कहं जग सब लोभी ॥
 पुनि हिय चंदन चित्र बनाई । कंचन पर मनो मुक्त जड़ाई ॥
 कुच नल फेट गेंद मनो कूंदै^१ । घर हिय थार कंचुकी मूंदै ॥
 चोली चित्र पुहुप जनु खिली । नल गल चहन हार होइ मिली ॥
 पहिरे वाहुन टाड सलोनी । किंकिनि मुँदरी भइ छवि लोनी ॥
 रोमावलि नागिन विख भरी । मिलै सुगंधि मांत होइ करी ॥
 नीवी चंपकली सी छोटी । अति सुन्दर छवि भरी अनीठी ॥
 छुद्रघंट कत बना जड़ाऊ । वाजत हियै घरत भुइं पाऊ ॥

दोहा—जेहर ढिग नेवर वने, अनवट विछुवन मांहि ।

मनो सिंगार गज गवनित, भलकहं श्री भलकांहि ॥१७॥

दो० ५—१—कौंदै ।

दोहा—१६८—१—आप चाहत अब आई (स०) । २—चावन (कां०) । ३—
 कीव (कां०) । ४—फिरे (कां०) । ५—राइ (कां०) । ६—जन (स०) । ७—
 तिस (कां०) । ८—खुबी (स०) । ९—कौन (स०) । १०—जोरा सब जग एकै परा
 (कां०) । ११—वनाई (स०) । १२—जानों (कां०) । १३—कह (स०) । १४—
 जनु कां०) । १५—कै वर्णं लागि (कां०) । १६—जु सवन के (कां०) ।

इन्द्र कुबेर वरुन जम देऊ । और देव आए जे^१ तेऊ ॥
 सबही मरम वात इह जानी । सुना कि^२ धनि नल रूप नुभानी ॥
 नल कहं दीन चहै जैमाला । ताके रंग राती मो^३ वाला ॥
 माया रूप सबै नल भये । ताही की सूरति होइ गये ॥
 नल अरु तिन्ह^४ महं भेद न^५ कोई । जो देखै जानै नल सोई ॥
 नल कै निकट आई भये ठाढे । नल मिदिगा^६ भनकै नल पाढे ॥*
 भेष धारि कै §भगल वनावहि । चहै^७ न भगल^८ काछ तिहि पावहि ॥
 भगल^९ किए वह हाथ न आवै । सो^{१०} निज^{११} मरम हियै कोउ^{१२} पावै ॥
 ताके लगन लगा जो कोई । ताही क^{१३} चाहै पुनि सोई^{१४} ॥

दोहा—नल को भेष वनाइ नल, भेख धरै^{१५} नल नाहि^{१६} ।

वाकी रीभ न भेख सों, निज नल ता हिय माहि ॥१६६॥

दोहा—१६६—१—ते (स०) । २—सो (स०) । ३—यह (स०) । ४—
 तिन्है (कां०) । ५—नहि (कां०) । ६—मिल गा छल न पाढे (कां०) । ७—चाहै
 (कां०), जाहन (स०) । ८—फकल (स०) । ९—फकल (स०) । १०—सोच
 (स०) । ११—मरम (स०) । १२—कर (कां०) । १३—कहि (कां०) । १४—सब
 सोई (कां०) । १५—भये (कां०) । १६—माहि (कां०), नाह (स०) ।

* पाढे = समूह । सं० पाटक < पाडय < पाड-पाढ (पाडग्रसद् महणव, पृ० ७२२,
 ७२३) । नल रूपधारी उन देवों के नल के साथ मिल जाने से नलों का समूह सा
 दिखाई देने लगा । § भगल = इन्द्र के जैसा सहस्र भग युवत रूप ।

मिली दमावत कीन्ह अवाई । वाजन वाजे भई चढ़ाई ॥
 पहलै आई सखीं सहेली । फूली^१ रतन कनक की^२ वेलीं ॥
 सबके हाथ कनक फुलवारी । नग कंचन मिलि जरी^३ सवारी ॥
 जौने भाइन फूल^४ जो होई । तैसो^५ बना भेद नहि कोई ॥
 एकै कनक फूल सब वनी । नांद मात्र न्यारी^६ कै गनी^७ ॥
 जोति प्रकास एक सब माहीं । दिस्टि भेद निज अन्तर नाही ॥
 एकै अग्नि ताप सब गढी । एकै कुंदन सब नग जड़ी^८ ॥
 औरे पाति आई ता पाछे । मानो^९ सर्व अपछरा काछे ॥
 इक गावै इक साज वजावहि^{१०} । इक नाचै ग्रह भाव बतावहि ॥

दोहा—साज सबद सुर पाइ कर, तार मिले गति एक ।
 तिनहि^{११} एक महं कोटि रस, उपजहि उपज अनेक ॥२००॥

पुनि आपुन अब दीन्ह देखाई । वरनी जान^{१२} भाव वनि आई ॥
 पहिरे राता चीर मुहावा । तिहि^{१३} प्रकास रवि दिस्टि न आवा ॥
 चिहुर रैन मुख ससि होइ ऊवा । नैक कलंक ० भीह मनु जोवा ॥
 कुंडल लवन देखि मन थाका । भ्रमक रहे जानहुं रय चाका ॥
 बना जो सीसफूल उजियारा । छत्र भिलमिले नखत संवारा ॥
 सुंदर तिलक सारथी^{१४} छाजै । ताकर ओकै अलग विराजै ॥
 सोहे दृगन जो अंजन लागा । मानहु लागि अंगन मुख वागा ॥
 मांग सो जनु गज पंथ संवारा । चंदन चित्र कचपचै तारा ॥
 मुक्ता लर जो मांग वैसाई । मनु वग पांति घटा मंडराई ॥

दोहा—दिन महं^{१५} रैन समाज दुति, रीसि^{१६} छका^{१७} सब कोइ ।
 बहु जन कहा कि ससि उवा, निस भई घास न होइ ॥२०१॥*

दोहा—२००-१—फूलन (कां०) । २—जनु (कां०) ; ३—जुरी (स०) ।
 ४—भूल (स०) । ५—तैसै (कां०) । ६—अनियारे (स०) । ७—कह (स०) ।
 ८—चढ़ी (कां०) । ९—जानों (कां०) । १०—बनावै (कां०) । ११—तिहि
 (कां०) ।

दोहा—२०१-१—जौह (स०) । ० 'स०' मे 'करंक' है । २—स्वारथी (स०) ।
 ३—अरु (स०) । ४—देपि (कां०) । ५—थका (कां०) । *यह दोहा दोनों प्रतियों
 ('कां०' और 'स०') मे है, पर इसकी चौपाइयाँ केवल 'स०' प्रति में है । जान पड़ता
 है, 'कां०' मे प्रमाद वग छूट गए ।

† प्रकार (स०) ।

इहि बनान^१ जब दीन्ह दिखाई । लोकहि तनकी^२ सुरति भुलाई ॥
 एक अचेत डरे भुइं परे । जिउ तिहि^३ सीपि जियत जनु मरे ॥
 एक खरे पै तन सुधि नाहीं । मन तन सुधि करता ता माहीं ॥
 टकै^४ लगाइ चित्र होइ रहे । एकै चित्र सब चित गहे ॥
 एकहि मद प्रथमै^५ सब^६ माते । एकहि रंग सभा सब राते ॥
 घट घट एकौ रूप समाना । जो देखहि सो तिन्हहि^७ लुभाना ॥
 जीन अंग^८ अटका^९ मन जाका । सो अतिही थाका भा ताका ॥
 और अंग तिन उलट न हेरा । मन एकौ सो एकै घेरा ॥
 ऐसै अंग अंग लिपटाने । सब ताकी छवि माहि समाने ॥

दोहा—घट घट भीतर जीउ वह^{१०}, सबको जिउ ता माहि ।

सभा एक मै होइ रही, दुतिय भेद कछु नाहि ॥२०२॥

आइ सभा भीतर पग धारी । दिस्टि फेरि चहुं और निहारी ॥
 नल की और^१ दिस्टि जब^२ परी । चलि तिहि और जाइ भइ खरी ॥
 जो देखै तौ कइ नल ठाढ़े । नल तिन ज्यों नल ह्वै छल वाढ़े ॥
 ओ पुनि नल ता हिय जो समाना । जो देखा सो नल कै जाना ॥
 दुविधै पड़ी सोच जिय करै । विधि किहि भांति जानि पिउ परै ॥
 जो अब चूकु जनम भर रोऊं । पावा^३ पीउ हाथ^४ सों खोऊं ॥
 एहि सभा महं पीउ जो पावा । तो पावा पुनि हाथ^५ न आवा ॥
 कौतुक दुखन सभा यह पाई । औ अब छिनके माहि उठि जाई ॥
 अबकै चूके^६ आस न कोई । फिर पिउ^७ को दरसन कत होई ॥

दोहा—पीतम के ढिग ही खरी, मरै^८ विसूर विसूर ।

जौ लगि लखा न निज मरम, निकट रहा होइ दूर ॥२०३॥

दोहा—२०२-१—बनाव (का०) । २—ताकी (स०) । ३—जीवत ही सुजीत (का०) । ४—तकै (स०) । ५—प्रथमी (का०) । ६—भइ (का०) । ७—भये (का०) । ८—रंग (का०), नैनन (स०) । ९—रंगा (का०) । १०—सो (का०) ।

दोहा—२०३-१—ओट (का०), ओठ (स०) । २—सब (का०), चित (स०) । ३—काया (स०) । ४—निकट (स०) । ५—नाहि जनम गवांवा (स०) । ६—भूलै (का०) । ७—पुनि प्रीतम सौ भेट न (का०) । ८—मरी (स०) ।

जव^१ नहिं निन्नित होइ बहु वाधा । तव तिन परभु^२ अचित अराधा ॥
 दीन वंधु वड़^३ अंतरजामी । घट औघट समान विसरामी ॥
 भूलै पंथ वतावन हारे । संकट परे छुड़ावन हारे ॥
 तुम जानी जिहि मद ही माती । जाके पेम रंग उर राती ॥
 कृपा करहु मोहि वहै मिलावहु । छरहिं^४ जो छर तिन पाहिं^५ छुड़ावहु ॥
 असरन सरन सरन जव गई । तव अकास वानी तिहि भई ॥
 समुक्ति सम्हारि वार उर सिछ्या । जे छर तिनकै तीन परिछ्या ॥
 इक तिनकै नाही परिछ्याहीं । ग्रांख पलक लागत पुनि नाही ॥
 औ तीसर तिन्हकर इह भाऊ । अघर रहै भुइं लगे न पाऊ ॥६॥

दोहा—पुरुख जो तिरगुन रहित सखि, सोई तेरो पीउ ।

सो तू समुक्ति निवार भ्रम, मत मैला कर जीउ ॥२०४॥

सुनि अकास वानी उर धारी । तव अच्छर छर निरखि निहारी ॥
 देखै त्रिगुन अलग तिन^१ माही । एक पुरुख दूजा^२ कोउ नाही ॥
 वहै अचल राखै यिर पाऊं । और अघर ह्वै रहै^३ चलाऊ ॥
 एक सो पुरुख निरखि पहिचाना । मिटा भरम मन निहचै आना ॥
 चीन्हेसि कहसि यहै सो पीऊ । जिहि लै थापा^४ आपन जीऊ ॥
 गह भेटा पीतम अपनावा । लै उर जैमाला पहिरावा ॥
 छरै छरै वह छरी न गई । जाकी अहै ताहि कै भई ॥
 सरवर सभा सूर ससि मिले । कोई कवल दुहुन मन खिने ॥
 आनंद अंग अमाहि न दोऊ । तीर लगे तरि समुंद विछोऊ ॥

दोहा—जनु सुखदाई दिन उवा, दुख निसि गई विलाइ^१ ।

चकई चकवा सों मिली, विछुरन दाह सिराइ^२ ॥२०५॥

दोहा—२०४—१—जव (कां०) । २—त्रभ (स०) । ३—विधि (कां) ४—फरनहं (स०), छर (कां०) । ५—पहं (स०), पीऊ (कां०) । ६—विछरावो (कां०) ।

दोहा—२०५—१—सव (कां०) । २—और (स०) । ३—देखै (स०) । ४—ठाह पाइ पै (कां०) । ५—विहाह (स०) । ६—सिराह (स०) ।

बान्ना दइ नल कहं जैमाना । चली और लोगन उर माला ॥
 अपने उर मों साल उतारा । सोई दुरजन^१ जन हिय द्वारा ॥
 दामिनि काँव दमंती गई । लोगन घटा रंघ्र हिय^२ भई ॥
 सगरी सभा भुरै^३ जनु नागी । विरव^४ भये विरही वैरागी ॥
 चातक^५ ज्यों जिय हुती जो आमा । मिटी मों पिक लीं भई निरासा^६ ॥
 श्री^७ पुनि इन्द्रादिक^८ जे देऊ । ईहि चरित्र^९ थकित^{१०} भए तेऊ ॥
 इन अवनल कैसै नल जाना । कौने चिह्न पुरख^{११} पहिचाना ॥
 पुनि प्रसन्न मन हूँ मव वाने । अंत हांय^{१२} जो जिन्हू कैं सो ले ॥
 भली भई नारी नल पावा । विघना वरनहि वरन मिलावा ॥

दोहा—पुनि मन में आई जो कछु, लै मुर मंग मुरेस ।
 तहां गयो बैठो जहां, नल नरपती नरेस ॥२०६॥

कैं अति कृपा इन्द्र नल तांवा । घोखा मेदि प्रीति रज पांवा ॥
 प्रोत जनाइ भयो गुन दाई । नालहोतर^१ विद्या मिखराई ॥
 जासों तुरै मरम सब जानै । राम रोम लच्छन पहिचानै ॥
 पुनि जमहू अति प्रीति जनाई । कियो वचन बान्ना वरदाई ॥
 कहेसि देव देवन कैं देऊ । सी मी वरख^२ आउ^३ तोहि देऊ ॥
 अगिन होइ तुव आज्ञाकारी । तारे वचन वरै विन वारी ॥
 विनु तिन कास्ट प्रगट होइ आवै । जां तूं कहसि सो कर दिखरावै ॥
 वरुन देव अजा^४ पुनि मानै । जब चाहसि तवही जल आनै ॥
 हेरसि छूछै कलसन माही । हेरत खिन पानी भरि जाही ॥

दोहा—कहि ये वचन बढ़ाय^१ हित^२, छिनक वैठि नल पाम ।
 पुनि सब देव विदा भये, चले गये कैलास ॥२०७॥

दोहा—२०६—१—जनु लोग नेगीय द्वारा (का०) । २—जिय (कां०) । ३—
 छरै (स०) । ४—रोवहि (कां०) । ५—चित चातक (स०) । ६—उदासा (कां०) ।
 ७—रोवै (कां०) । ८—इंद्र अथ काजे (कां०) । ९—अचरज (कां०) । १०—पतघट
 (स०) । ११—जिहि कर (कां०) । १२—नैकु गुठी जोही जिय पाले (कां०) ।

दोहा—२०७—१—गुर (कां०) । २—पुरष (कां०) । ३—आद (कां०) ।

* शालिहोत्र विद्या, अश्व शास्त्र । ४—अकहा (स०) । ५—पढाइ (कां०) ।
 ६—चित (स०) ।

और भूप सब लाग^१ सिघाए । दूल्हि^२ जनवासे लै आए ॥
 इत^३ जेवन^४ के सामां भए । तव लागि उहां परछन^५ कै गए ॥
 गरी छुहारा दाख चिरीजी । तरी रलोनी पिस्ता न्यौजी ॥
 औ वदाम मीगी^६ भल^७ पागी^८ । लींग कपूर मिरिच तिहि^९ लागी ॥
 टाटक खरबूजा पुनि आने । पाल परे जे अंभ वखाने ॥
 पौडा औ मीठे हिंदुवाना । जिनहि खात हियरा सिघराना ॥
 औ अनवन पकवान मिठाई । बहुत सवादनि सानि बनाई ॥
 दही बरा खाजा औ बूंदी । अति त्योनार पराकइ गूंदी ॥
 सुतलड़ मोतिलड़ कंद गिदवरा । पीठि^{१०} जलेवी औ गोसवरा^{११}* ॥

दोहा—बनी मिठाई बहु वरन, आवत^{१२} सो^{१३} उदभास^{१४} ।

जो निज देखी सवन में, एकै ऊख^{१५} मिठास ॥२०८॥

सिद्ध^१ भई अरु सीभ^२ रसोई । जुरा लोक आवा सब कोई ॥
 जेवन चले पहिरि सब धोती । चमकहि देह कनक जनु पोती ॥
 कनक खराऊं औ नग लागे । आनि धरी सबहीं के आगे ॥
 ताते पानी हौद भराई । नाऊ वारिन पाउं^३ धोआई ॥
 पाउं^४ पखारि रसोई आए । कंचन पटा सब बैठाए ॥
 सिरै जड़ाऊ पटा धरावा । तिहि ऊपर दूलह बैठावा ॥
 कनक थार नग कुंदन जरे । दोइ दोइ सबके आगे धरे ॥
 सियरे नीर धरी भरि भारी । जगमगाइं जनु^५ हेम सवारी ॥
 औ पुनि धरे जराउ कटोरा । जन जन आगे दस दस जोरा ॥

दोहा—जगमगाट भा रतनन, छिपे दीप मसियार ।

मानहु जामिन वीत गई, भयो घोस जजियार ॥२०९॥

दोहा—२०८-१—लाद (कां०) । २—आवत (स०) । ३—ज्यों (स०) ।
 ४—पूछन (कां०), पवन छकि (स०) । ५—को (कां०) । ६—फल (कां०) ।
 ७—पावो (कां०) । ८—जाइ (स०) । ९—सभ (कां०) । १०—कोसनिवारा (कां०),
 गोसवारा (स०) । ११—ओ वोह (कां०) । १२—स्वाद (कां०) । १३—सुवास
 (कां०) । १४—अधिक (स०) । * गोसवारा=कान के कुंडल जैसी मिठाई, मुशकिक
 या इमरती ।

दोहा—२०९-१—सीभू (स०) । २—सिद्ध (स०) । ३—नग (स०) ।

नल-दमन

परसा प्रथम भात लै आए । ते चाउर जनु पुहुप वसाए ॥
 पुनि फुलका आए अनि भीने । उज्जल काँवल वीउ सों भीने ॥
 पुरी कचौरी कोमल ताती । सुत्र मेलत खिन कंठ विलाती ॥
 पुनि परसीं जहं लीं तरकारी । मिरचन लींग मिलाइ संवारी ॥
 वरन वरन तेवन पुनि आए । त्योनारिन्ह ज्योनार बनाए ॥
 गौछ मुगीछि और फलवारी । मकरा खंडरा खंडरि वोवारी ॥*
 पतवर श्री गुरवरी मुंगारा । सालन सूख अनवनव संवारा ॥
 जनु नैनुं अम काँवर वरा । वीवे दहीकर मांठा परा ॥
 सब सँवान बहु वित मिठाई । जाउरि पछियाउरि पुनि आई ॥

दोहा—जो कुछ जेवन सब अमी, बहु रम वनी रसोइ ॥
 अति रुचि मां ज्योनार भइ, रीझ उठा सब कोइ ॥२१०॥

व्याह वहै जो सुखेंवर कीन्हां । मभा माँहि जैमाला दीन्हां ॥
 पहले रीत भई जनु अही । वरनी जम भारत मै कही ॥
 कथा आदि होई जो जैसी । कहा वहै जैसी की तैसी ॥
 जद्यपि कविता वात वनावै । नेक कथा विस्तार सुनावै ॥
 पै अस वात न जाइ वनाई । सो लावै जो लगै लगाई ॥
 वातन्ह मिलै वात पुनि मोई । अनमिल वात हंसै सब कोई ॥
 वातहि सीठी वातहि कइई । वातहि वोझल वातहि हरई ॥
 वातै सब वातन महँ जोऊ । वातन्ह माँहि दुराँ सो पीऊ ॥
 वातै जिन जानी तिन जाना । वातन महँ निज मरम दुराना ॥

दोहा—वात भेद जाने बिना, भूल रह्याँ नर जीउ ।
 जो पिय सो जिउँ जीऊसो, दूँहत डोर्नाहि पीउ ॥२११॥

दोहा—२१०—*यह चौपाई (कां०) प्रति में है । (स०) प्रति में इसके स्थान पर यह चौपाई है :—रिक्वंच मिकवंच ऊद भकोरै । सालन सोख नांव कहं थारै ॥ इसका उत्तर पद ७ वीं चौपाई का उत्तर पद है, इसलिये प्रस्तुत संपादन में इसको ग्रहण नहीं किया गया । वास्तव में इसका पूर्व पद और (कां०) प्रति का पूर्व पद एक ही है । उर्दू प्रति से नकल होने के कारण पाठ भेद हो गया । इसके 'रिक्वंच' 'मिकवंच' (कां०) प्रति में 'गौछ मुंगीछ' है । ऐसे ही 'घोर' वा 'ऊद' और 'फलवारी' का 'भकोरै' होगा, समझना चाहिए । १—सवक (कां०), सोक (न०) । २—नांव कहं (स०) । ३—थोरा (स०) । ४—पैले (कां०) । ५—वंचे (स०) । ६—धोकर (स०) । ७—करव (कां०) । ८—अहै (कां०) । ९—भर (कां०) । १०—मवी (कां०) ।
 दोहा—२११—१—यहै (स०) । २—जस (कां०) । ३—हरा (स०) । ४—भई (स०) । ५—खोजै (कां०) । ६—जोगी (कां०) । ७—पिय दूँहत (स०) ।

जब अति छकन चखी मतवारी । चखी मिली मिल भई घरारी ॥
 जनु दोउ कनक वेलि लपटानी । उर सों उर भुज सों भुज सानी ॥
 प्रथम अधर सों अधर मिलाई । मातों अहै खेल पर आई ॥
 पुनि धन केवल फूल ज्यों वेली । कन्त नवाइ हार कै मेली ॥
 खिली कली रायन मन मानां । तव मधुकर पुनि कली लुभानां ॥
 आइ रसिक वीधी सो कली । अति निरमल अभोग रस भरी ॥
 अरजुन वान राहु जन मारा । वरमां मोती वेध उतारा ॥
 अब निज भा तन मन संजोगू । केलि वान मनु हना वियोगू ॥
 सुख बाढ़ा वैरी जनु मारा । रतन काढ़ि तिन्ह सुख पर डारा ॥

दोहा—आंगूठी (आंगुठन) अम्बुज करी, जब खोली रवि नाहं ।
 खुलत समे धन हार होइ, गेद भई छिन माहं ॥

सम्पुट वँधी कली खिल गई । सिज्या पर वसंत रितु भई ॥
 हनि वियोग होरी कर जारा । कीन्ह वखान जाँन विधि मारा ॥
 चोली दरक दरक भकभोरा । फूलै लाग फूल चहुं ओरां ॥
 प्रीतम केलि धमार लगाई । धन कुहकी होइ निरत मचाई ॥
 पीउ रहसि डफ सवद सुनावै । धन चाचर महं चंग वजावै ॥
 छुद्रघंट चंगै सुर छीने । जनु वसंत गावहि रस भीने ॥
 नेवर और विछीं धुन राजै । वीन मृदंग चंग जनु वाजै ॥
 छूट छूट तनु चंदन चीरु । उदय (उड़ै) सो सेत सुवास अबीरु ॥
 सेदुर फँल दुहुन कै लागा । रंगा गुलाल चीर औ वागा ॥

दोहा—धन वसेभु (पसेउ) तन मन मगन, खेलत हुते खिलार ।

पिउ पिचका छाडां जवहि, अबछर लीन्ह सम्हार ॥

त्योऊं^१ वरनीं वात^२ रसीली । कहीं जो रस महं^३ छैल छत्रीली ॥
 पिउ बोला प्यारी सुन मोसों । निज मन मरम कहीं हीं तोसों ॥
 मै जबसों तो महं जिउ डारा । तवसों याव घरी न विसारा ॥
 छिन छिन सुरत लैन लग तोरी । मन तूही में राखीं गोरी ॥
 जैसे मिरग नाद मन लावै । श्री अलि कवल वास ज्यों पावै ॥
 चातक स्वाति बूंद कै आसा । निस दिन चित दै रहै अकासा ॥
 त्यों तोसों मै लगन लगाई । गुडी डोर ज्यों सुरति मिलाई ॥
 निस दिन सोच रहा मोहि तोरा । मुरत मूत छिन जोर न तोरा ॥
 रहसि अखंड लगी मन मोरै । श्री जिउ मोर रहै तनु तोरै ॥

दोहा—हीं अपनी सत भाव कहि, अब बूझत हीं तोहि ।
 तै धां पेम वैस सुखी, किमि दीन्यी मन मोहि ॥२१८॥

जो तुम पुनि पूछी मो पाहां । विनीं सुनी सरवन दै नाहां ॥
 मै जब सों पिउ मो जिउ लावा । तव ही सों आपा विसरावा ॥
 तन आपन सो निरापन कीन्हां । जिउ लै काढ़ि पीउ महं दीन्हां ॥
 जिउ पुनि जब पिउ सों मिल गयऊ । जिय कै ठौर जीउ पिउ भयऊ ॥
 जिउ पिउ अन्तर भेद भुलाना । मन निज जीउ पीउ कर जाना ॥
 रोमहि रोम रहा रम पीऊ । जीउ पीउ भा हीं^३ निरजीऊ^४ ॥
 हुता जो मन में मै अभिमाना । सो चनि प्रीतम माहि समाना ॥
 मन पुनि पीउ मिला ज्यों जीऊ । सो अब कहन लागि हीं पीऊ ॥
 मन जिउ भेटि पीउ भा सही^५ । हीं हीं कहै यो मात्र न रही ॥

दोहा—जैसे दिनकर किरन मिलि, तम असत होइ जाइ ।
 तैसे प्रेम प्रकाम महं, हीं हीं गई हिराइ ॥२१९॥

कह कर वरा जागत मिल सोए । अँग अँग कै पिछले दुख खोए ॥
 मिल लपटाइ एक होइ गए । दोनों फूल कली ज्यों भए ॥
 हिये हार अंतर न सहाई । दीन्ह डार लै तार विछाई ॥
 गाढे खिन भोजन कहलावहि । हुलसि हुलसि दोउ हिया मिलावहि ॥

दोहा २१८-१—त्यो (कां०) । २—अव वात (कां०) । ३—मै (कां०) ।
 ४—तव (कां०) ।

दोहा २१९-१—त्योहि (कां०) । २—ही (कां०), हीन (स०) । ३—पीऊ
 (कां०) । ४—सवही (स०) । ५—सो (कां०) ।

रैन गई अब भयो विहानूं । सीवा चांद उठा जब भानूं ॥
 पलक एक लीं पलक लगानीं । ततखन आई सखीं वतरानी ॥
 धन मुकुवार कंत रति मानी । तव हुलास मद मनहि न आनी ॥
 अब तिहि स्रम^१ अचेत होइ सोई । सखी जुरी तिन्ह मुरत न कोई ॥
 वदन कवल कुमदन^२ होइ रहा । अति निरंग कछु जाइ न कहा ॥
 कंचुकि दरक दरक ह्वै^३ गई । सिव पूजा पुहुपन जनु भई ॥
 नागिन अलक ढरकि कुच अरी^४ । जनु हर ग्रीउं हार होइ परी ॥
 भाल जो तिलक रचा मिट गयऊ । अहा जो ठाढ़ आढ़^५ अब^६ भयऊ ॥
 वेनी नाग उलटि कै परा । गयो सो ऐंठ मोर जनु घरा ॥

दोहा—मुकुतमाल जो उलटि कै, परी मांग पै जाइ ।

जनु^७ वेनी करवत घरा, रहिर रहा लिपटाइ ॥२२०॥

जैसै^८ सखी आय मुंह बोली । मुना तो सबद आंख तव खोली ॥
 सुरज प्रकास कवल जनु खूटी । पुतरी भवर वंधी तेहि छूटी ॥
 ढरके जाहि रैन मधु पीये । आरस भरी^९ खुमारी लीये ॥
 राजहि नैन कवल छवि घरहीं । मानों^{१०} रूप भार भुक परही ।
 पुनि उठ भुजा जोर अंगडानी^{११} । सुभर^{१२} कमान मैन जनु तानी ॥
 सोहै वदन जो लेत जंभाई । ज्यों फिर^{१३} कवल खिले मुंदजाई ॥
 विथुरे केस वदन चहुं पासा । पून्यो चन्द राहु जनु ग्रासा ॥
 पुनि जो सुधार धरे गहिवारा । छुटा ग्रहन जनु भा उजियारा ॥
 मोती विथुर सेज पर परै । मनु^{१४} ससि पास नखत निरमरै ॥

दोहा—चीर चीर तन चीर भा, गै अभरन सब टूट^{१५} ।

अंग अंग सब निरंग भए, रंग लीन्ह पिउ लूट ॥२२१॥

दोहा २२०-१—सरन (कां०) । २—कोई (कां०) । ३—जो (कां०) ।
 ४—धरी (स०) । ५—ओट (कां०) । ६—प्रत (कां०) । ७—मानो (स०) ।

दोहा २२१-१—जव पुनि (कां०) । २—किये (कां०) । ३—जानों (कां०) ।
 ४—इंद्र आनी (कां०) । ५—सुष न (कां०) । ६—कर (स०) । ७—जनु (कां०) ।
 ८—छूट (कां०) ।

नल-दमन

देखि सरूप सखीं विहंसानी । रति अजान पिउ दीन्ह सयानी ॥
 बूझा चहै चाव मन माहीं । श्री पुनि बूझ न सकै लजाहीं ॥
 पै सब एक सरोवर वेलीं । मन मिल रहै एक मग खेलीं ॥
 बूझा लाज छाड़ि कहु रानी । तुम तो आज निपट^३ कुम्हलानी ॥
 देख तुम्हार रूप विकरारा । घरक घरक जिउ करै हमारा ॥
 कंत मिलै जो यह गत होई । तो जानहुं^३ पुनि सुख नहि कोई ॥
 तुम तो^४ निपट खीन भइ^५ गोरी । लचकी लाक तोर जनु जोरी ॥
 वदन ज्योति इम देइ देखाई । ज्योंकर कंवल सांभ मुरभाई ॥
 कुसुम वरन तन मनु^६ अस भयऊ । जनु^७ रवि किरन^८ रंग उड़ि गयऊ ॥

दोहा—तुम ज्यों कंत मिलाप कीं, चहन^९ हुता^{१०} जिउ चाव ।
 अब डरपै कांपै हियो, देखि तुम्हारो भाव ॥२२२॥

आली तुम तेहि मुख ना जानों । तव जानहु जब सो रस मानों ॥
 यह सुख और न जानै कोई । सो जानें जो पिउ संग सोई ॥
 ही हूं डरत हुती मन माहीं । जीलीं लाल गही नहि वाहीं ॥
 जब प्रीतम गह कंठ लगाई । मिटी संक सुख माहं समाई ॥
 तन कै सुरत भूल सब गई । मिलि प्रीतम सो सुखमइ^{११} भई^{१२} ॥
 आली जब यह^{१३} सुख मन पावै । तन हित^{१४} सहज विसर तव जावै ॥
 तन कहं जो कछु होई सो होऊ । जिउ न सहै^{१५} छिन पीउ विछोऊ ॥
 तन की दुख ती लीं मन आवै । जीलीं जिउ^{१६} पिउ^{१७} सुख नहि पावै ॥
 सुरत न धी तन पीत कि राता । मन प्रीतम^{१८} सुख^{१९} सो^{२०} जो^{२१} माता^{२२} ॥*

दोहा—जब सों सो प्रीतम मिला, तव सों मों मन माहि^{२३} ।
 वह मिलाप सुख रमि रहा, अब तन की सुधि नाहि ॥२२३॥

दोहा २२२-१-कै (कां०) । २-वोहत (कां०) । ३-जानीं (कां०) ।
 ४-सब (कां०) । ५-मै (कां०) । ६-तिन (सं०) । ७-मानो (सं०) ।
 ८-तेज (कां०) । ९-हम हूं (कां०) । १०-ना (कां०) ।

दोहा २२३-१-पिय कै (सं०) । २-गई (सं०) । ३-सो (कां०) ।
 ४-तप मन तन पुनि नैक न आवै (कां०) । ५-चहै (कां०) । ६-मुख (सं०) ।
 ७-समीप (सं०) । ८-प्रातम (सं०) । ९-पीय के (कां०) । १०-के (कां०) ।
 ११-रंग (कां०) । १२-राता (कां०) । १३-नाहि (कां०) ।
 * 'कां०' में यह चौपाई पाँचवीं चौपाई है ।

देखि सुहाग धाइ पुनि धाई । राजमती रानी पहं आई ॥
 रानी चलि देखी किन वारी । करहु संभार निपट अरसारी ॥
 जगी जो रैन मिलन होइ रही । ससि मुख जोति गहन जनु गही ॥
 सुनि सो बात रानी मन जानी । भा सुहाग दूलह रति मानी ॥
 विहंसत उठि वारी पहं आई । कै पियार गहि कंठ लगाई ॥
 नग मुकता भरि थार मँगाए । वार फेर कै वार नुटाए ॥
 अरगज घोरि अंग उवटावा । दै अन्हान सब अरस मिटावा ॥
 अरस राह उतर जव गयऊ । पून्यो ससि निरमल पुनि भयऊ ॥
 पुनि सिंगार अमरन सब वनी । वारी भई रूप चीगुनी ॥

दोहा—जो वारी रति^४ सिसिर^५ सम, स्वेत^६ करी इमि^७ कंत ।

सो फिर फुलवारी भई, सकल^८ सिंगार वसंत ॥२२४॥

भइ जीनार वरात जिवाँई । दायज राखा होइ विदाई ॥
 भरि भरि धार हीर नग धरे । मोती तोलि कुरीना करे ॥
 मुहरन चहुं दिसि रास लगाई । गिनी न जाहि तुला न तुलाई ॥
 कापर साज न जाइ गिनाई । सोने साजे सब^९ हिंदुवाई^३ ॥
 सै अमरन दासी उजियारी । वनी काम सांचे जनु ढारी ॥
 पांत पांत काछे है^४ खरी । सेत सुरंग दुरंग^५ औ^६ हरी ॥*
 इक दिस ठाढ़े हस्ति सिंगारे । भलकै औ भूलै मतवारे ॥
 इक दिस पांति अरथ की लाई । वृषभ सिंगौटी कनक मढ़ाई ॥
 राजा राइ संग जे आए । सब पहिराइ तुरंग चढ़ाए ॥

दोहा—पुनि पहिरावा कटक सब, इहि विधि आदर कीन्ह ।

जौन भया जिहि जोग जस, तस वागा तिहि दीन्ह ॥२२५॥

दोहा २२४-१—तहि (कां०) । २—वोहूँ (कां०) । ३—अति (स०) ।
 ४—रति (स०), रवि (कां) । ५—सरौ (स०), ससिर (कां०) । ६—निपट (स०) ।
 ७—रति (स०) । ८—भई (कां०) ।

दोहा २२५-१—सहि (कां०) । २—डवाये (कां०) । ३—भई (कां०) ।
 ४—डोर (कां०) । ५—नग (कां०) । * इस चौपाई के पश्चात् २२८वें दोहे की चौपाइयों तक का अंश (स०) प्रति मे नहीं है । प्रसंग खंडित हो जाने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उसमे यह अंश असावधानी से छूट गया । प्रस्तुत संपादन मे यह 'कां' प्रति से लिया गया है ।

राजा नल जब कीन्ह पयाना । आनंद भरा न अंग समाना^१ ॥
 पूजी आस भई मन भाई । गा दुख सुख निदान निधि पाई ॥
 जिहि धन लागि पेम दधि^२ वूड़ा । सो लै तिरा विहंसि हिय जूड़ा ॥
 बाढ़ा सुख हुलास जिउ^३ कीन्हां । तिहि सुख मगन दान बहु दीन्हां ॥
 दायज मिला सो वांट न आंटा । आपन दरव काढ़ पुनि वांटा ॥
 भूखा दुखी मिलै जो कोई । जेतक देह भूख धरि खोई ॥^{*}
 जौन जौन ठां भयो^४ उतारा । तहां छोर वैठो भंडारा ॥
 दरव हीन नर^५ ढूढ़ मंगाए । करै घनाढ्य दरिद्र मिटाए ॥
 जौलौ चला देस मै^६ आवा । तीली अनगिन दरव लुटावा ॥

दोहा—जुवा^७ दावं^८ ज्यीं लच्छमी, खिन आवै खिन जाइ ।
 धनी नाउं^९ जो दीजिए, सोइ^{१०} रहै ठहराइ ॥२३०॥

राजा खेम कुसल सी आवा । जब^१ उज्जैन नगर नियरावा ॥
 नेगी तै सो सुनी अवाई । नगर पटम्बर^२ कीन्ह छवाई ॥
 हाट वजार कीन्ह सब राता । वना नगर जानहु छवि^३ छाता ॥
 सगरे देस वात^४ यह सुनी । भा अनन्द हुलसी सब दुनी ॥
 घर घर लोगन कीन वधावा । सुखमै सरवर देस दिखावा ॥
 मिटा देस दुख निसि अंधियारा । उवा सूर सुख^५ भा उजियारा ॥
 हितू लोग अम्बुज होइ खिले । मन हुलास मधुकर होइ मिले ॥
 सकुचि सत्रु कुमुदनि से भए । कारे पीत सेत होइ गए ॥
 सीस नवाय रहे चहुं ओरां । डूबहि उछरहि डाह^६ हिलोरां ॥

दोहा—हुलस हितू वांधव कूटुंब, रावत राना राइ ।
 सब जाइ आगै मिले, टीका भेंट चढ़ाइ ॥२३१॥

दोहा २३०-१—अमानां (कां०) । २—दुख (स०) । ३—मन (स०) । *
 'स०' प्रति में यह चौपाई नहीं है इसलिये उसमें आठही चौपाइयाँ हैं । ४—होत (का०) ।
 ५—सब (का०) । ६—काँ (स०) । ७—ज्यीं (कां०) । ८—आवा (कां०) ।
 ९—अर्थ (कां०) । १०—वही (कां०) ।

दोहा २३१-१—आइ (कां०) । २—नेर (कां०) । ३—सब (कां०) । ४—
 अवाई (का०) । ५—भूप (कां०) । ६—दाह (कां०) ।

राजा आइ नगर पगु धारा । सूने पिंड प्राण जनु डारा ॥
 है जो लोग राजा दुख दुखी । अब ताके सुख भए सब सुखी ॥
 कोतुक देखन कै सब नारीं । चड़ि चहुं दिसि चौवार अटारी ॥
 ते अबला यह रूप दिखाईं । मनु अबछरा देखनै आईं ॥
 दरब लुटाय नगर भरमारा । आय पवैरि अब कीन्ह उतारा ॥
 उतरा भीतर पवैरि विवांनु । निकसा चांद गयो छिपि भानू ॥
 मंदिर सों नारी सब आईं । बीच चाद चहुं ओर तराईं ॥*
 गावत मंगलचार बधाई । दुलहिन कहं मंदिर महं नाई ॥
 मोतिन थार निछावर कीन्हीं । ले नाउंन वारिन कहं दीन्हीं ॥

दोहा—सब निसि कीन्हा रतजगा, भा कुल कर^१ व्यौहार^२ ।

आनंद मगन बधाई, गाए मंगलचार ॥२३२॥

होइ लाग पुनि सदा बधावा । विधिना सुख संजोग बनावा ॥
 भोग विलास करे मिलि दोऊ । रातहि घौस न होइ^१ विछोऊ ॥
 दोऊ एक पेम मद माते । अन्तहकरन एक रंग राते ॥
 दोउ मन मिलि जो होहि इक ठाऊं । तिहि सुख का उपमा जो बताऊं ॥
 औ घर राज भोग कर साजू । खांग^२ न कौनी^३ सबै समाजू ॥
 दोऊ रहै फूल से बने । फूलन कां सुवास रंग^४ सने ॥
 दिन दोइ फूल कन्त औ अली । रैन होहि मिलि एक कली ॥
 मिला कवंल मधुकर कर जोरा । सेज सरोवर लेहि हिलोरा ॥
 भंवर समाइ कवंल महं रहै । कवंल सो सिमटि भवैर कहै गहै ॥

दोहा—दोऊ पागे पेम रस, हियै मिलाप हुलास^५ ।

रात घौस संगहि रहै, षट रितु वारह मास ॥२३३॥

दोहा—२३२—१—सोंना (का०) । * 'स०' प्रति में यह चीपाई नहीं है । २—नवल (स०) । ३—ले (का०) । ४—तेई (का०) । ५—त्यों (का०) । ६—गल (स०) । ७—पिंड हार (स०) ।

दोहा—२३३—१—रहै (का०) । २—गहा (स०) । ३—कोई (का०) । ४—रस (स०) । ५—विलास (स०) ।

रितु वसंत फुलि^१ है वन वेली । मुरितु चैन वँसाख नवेली ॥
 सब दिन मुख तैसै फुलवारी । चांचर जरें होंहि वमारी ॥
 वाजहिं साज राग धुनि होई । इंद्र अखाड़ कहा जस सोई ॥
 नवल फूल फूले चहुं ओरा । आवाहिं पवन सुवाम हिनोरा ॥
 सुमन हार कां दाऊ डारी । श्री अभरन सब सुमन सर्वाँरी ॥
 सारे पुहुप बेलि जनु फूले । इहि मनु गति मधुकर होइ भूले ॥
 अँग अँग भवँर पुहुप रस लेई । रदन कर्वल कंजन मुख देई ॥
 रैन होइ मंदिर मुखवासी । सज्या वीनि कुमुम दल डामी ॥
 हँसि हँसि मिलहिं पुरख अरु नारी । मगन केलि रस प्रीतम प्यारी ॥

दोहा—प्रीतम प्यारी एक संग, रितु वसंत पुनि होइ ।
 या मुख सम संसार महँ, दूजा^२ ग्रौर न कोइ ॥२३८॥

रितु श्रीसम अति चैन विहाई । जेठ असाढ़ अधिक मुखदाई ॥
 तपन^३ तहां संगम जहं नाही^३ । ये मिलाप मुख अति मियराही ॥
 मिलहिं नैन हिय सीरक होई । अँग मिलाप मिलै जनु मांई ॥
 रहें सदा सौँधै तन भीनें । सीरे^३ वसन^४ पहिर अति भीनें ॥
 दिन बैठक भुइंहरा वनावा । चहुं दिस गांडर^५ मूर^६ जो छावा^७ ॥
 घोरि अरगजा अधिक सुवामा । दिन दोऊ छिरकै^८ चहुं पासा ॥
 छिन छिन करे नीर छिरकाई । पनिया^९ ढरं होइ सियराई ॥
 सीत रैन ज्यों दिन निपटाही । ज्यों ज्यों मिलहिं अधिक सियराहीं ॥
 निसि सतखन लै सेज विछाई । मिले मिला तन पीन दुराई ॥

दोहा—वरजी^{११} जिन विधि छ्यों रितु, करहि केलि रस भोग ।
 ऐसो मगन सँजोग मुख, लाग वात त्रियोग ॥२३९॥

दोहा—२३८-१—फल (कां०) । २—प्रीतम (स०) ।

दोहा—२३९-१—नैन (कां०) । २—माही (कां०) । ३—वर (कां०) ।

४—वसंतर (कां०) । ५—गांडर (स०), कांदर (कां०) । ६—मोर (स०) ।

७—छावा (स०) । ८—वानछरहि (स०) । ९—नैना (कां०) । १०—सेती (स०) ।

११—विरहन (कां०) ।

जेहि दिन सोइ^१ सुयंवर भयऊ । उलटि लोक घर अपने गयऊ ॥
 इंद्रदेव अपने पुर चले । मारग द्वापर कलिजुग मिले ॥
 वृष्णा इंद्र कहो कत^२ आए । कौन काज की कहाँ सिधाए ॥
 कहै चले कुंदनपुर ओरां । गुना कि भा राजन्ह कर जोरां ॥
 अम्बुज कली दमावत रानी । सूरज देखि चहै विहंसानी ॥
 रचा सुयंवर भइ अति सोभा । तिहि कौतुक कारन चित लोभा ॥
 इन्द्र कहा सो सुयंवर भयऊ । राजा नल रानी लै गयऊ ॥
 कलिजुग सुनत क्रोध जिय^३ आनां । जनु^४ यह वचन लाग होइ वानां ॥
 सो दिन गए^५ सुयंवर भयऊ । सो आग्या विन नल लै गयऊ ॥

दोहा—वुरा वुराई ना तजै, लाख सीख किन^६ देहु ।
 कल्लर^७ दूव जमै नही, जो नित वरखै मेहु ॥२४०॥*

कलिजुग क्रोधवंत जब जाना । तव फिर इन्द्र वचन मुख आना ॥
 कहा कि क्रोध हियै जिनि राखौ । मुख तै भूलि कुवचन न भाखौ ॥
 जो नल कै सराप तुम करि हो । तिहि अपराध नरक महं परिहो ॥
 जो नर दुखियन्ह^८ कह^९ दुख देई । महापाप अपने सिर लेई ॥
 कह ये वचन इन्द्र चल भयऊ । दोउ^{१०} जुगन को जुग रहि गयऊ ॥
 तव कलिजुग सराप नहि भाखा । पै नल सों^{११} विरोध जिय राखा ॥
 जद्यपि इन्द्र बहुत सिख दई । जिउ^{१२} महं^{१३} क्रोध गांठ^{१४} परि^{१५} गई ॥
 खोटा होइ सो खोटै^{१६} जानै । भली वात सुन मनहि न आनै ॥
 आदि^{१७} सुभाउ जिहक^{१८} जस होई । आदि अंत लौ^{१९} निवहै सोई ॥

दोहा—जरि वरि अग्निनीमय भयो, वढो क्रोध मन^{२०} पाप^{२१} ।
 कारो पीरो होइ गयो, चाहै दियौ सराप ॥२४१॥*

दोहा—२४०-१—थान (कां०) । २—तुम (कां०) । ३—मन (स०) ।
 ४—सुनतै (कां०) । ५—कौस (कां०) । ६—जो (कां०) । ७—कालर (स०, कां०) ।
 * 'कां०' प्रति मे यह दोहा २३५ वें दोहे के स्थान पर है ।

दोहा—२४१-१—दुखी (कां०), घो कहं (स०) । २—कोउ (स०) ।
 ३—घी (कां०) । ४—को (स०) । ५—पै (कां०) । ६—जक (कां०) । ७—कलियुग
 (कां०) । ८—नहि (कां०) । ९—खुटक किह पै जानै (कां०) । १०—कूर (कां०) ।
 ११—भक । (स०) । १२—तन (कां०) । १३—ताप (कां०) । * 'कां' प्रति मे यह
 दोहा २३४ वे दोहे के स्थान पर है ।

कलिजुग बहुत कीन्ह जिय क्रोधू । ठाना नल सों वैर विरोधू ॥
 किये क्रोध द्वापर सों कहा । बहुँ रिस मो पहं जाइ न^३ सहा ॥
 नल कहं भई इतक मदमंती । मो आयसु दिन लेइ दमन्ती ॥
 एहि घरी^४ नल कै घर जाऊं । ती कलिजुग जां ताहि सताऊं ॥
 नल सों वैर तहां ली करीं । ता वन धरम धाम मति^५ हरी ॥
 देखो कैसे^६ खेन खिलाऊं । राज हरीं कै रांक दिखाऊं ॥
 नगर छुड़ाइ देउ^७ वनवासा । वन वन^८ डोलै^९ भूख पियासा ॥
 करीं विद्योह पुरुख श्री नारी । यह न्यारी डोलै वह न्यारी ॥
 तन जीरन वस्तर नहिं^{१०} राखा । तैसहिं करीं जैस मुख भाखा ॥

दोहा—कह द्वापर मां ये वचन, छिन न कियो विमराम ।

छूट अग्नि के वान ज्यों, चना ताकि नल धाम ॥२४२॥

चना सो धेगि^१ बिलम्ब न लावा । पीन गीन नल कै घर आवा ॥
 रहा करै नित घात लगावै । दुख देवै को दाव न पावै ॥
 वारह वरख बीत गए आए । टरै न वैरी^२ विना सताए ॥
 नित^३ नल धरम पंथ पग धरै । राजनीति वरनी तम करै ॥
 परजा सुखी धरम कर राजू । हरि मुमिरन विन श्रीर^४ न काजू ॥
 सदा पवित्र रैन दिन रहै । दान प्रवाह नदी नित^५ वहै ॥
 ऐसो धरमवंत^६ जो होई । ताकै विघन न व्यापै कोई ॥
 जहां तहा इहि^७ धरम सहाई । जहां गत्य^८ तहां पाप न जाई ॥
 धरम सहाइ कोटि दुख टारै । धरम सनु संताप निवारै ॥

दोहा—सजग धरम मग^१ पुरुख जो, को तिहि सकै सताइ ।

दुहूँ^२ लोक को भय हरै, जा कहं धरम सहाइ ॥२४३॥

दोहा—२४०-१—इहि (का०) । २—जात (का०) । ३—खन (स०) ।
 ४—सव (का०) । ५—कितव (का०) । ६—महं (स०) । ७—भुई (स०) ।
 ८—श्रीर प्यासा (स०) । ९—पर चीर न वस्तर (स०) ।

दोहा—२४३-१—बीच (का०) । २—बुरा (स०) । ३—नल मुधर्म मारग (का०) ।
 ४—कोऊ (स०) । ५—जल (का०) । ६—धरम पुरुष (का०) ।
 ७—तिन (स०) । ८—धरम (का०) । ९—जग (स०) । १०—तीनहुं (स०) ।

परालवध पै अति वरियारा । सो न' टरै काह कर टारा ॥
 दुख सुख होनहार जो होई । जिहि कहं जतन रहे होइ सोई ॥
 मिटै न परालवध कर भोगू । ज्यों होनां त्यौ होइ संजोगू ॥
 धरम पवित्र जिन भूठ न बोला । परालवध वन वन वन डोला ॥
 नल सरवंस धरम मग दीन्हा । परालवध कुसती^३ तिन कीन्हा ॥*
 करम अलग ग्यानी सजोगी । सोऊ^४ परालवध कै भोगी ॥
 परालवध वांधी यह काया । आतम जीव भयो मिलि माया ॥
 यह सब परालवध कर^५ खेला । तेही कीन्ह तत्त गुन भेला ॥
 परालवध मिलि भए एक ठारे । परालवध होइहै पुनि^६ न्यारे ॥

दोहा—परालवध दुख सुख बँधे, खिन आवहि खिन जाहि ।

हरख सोक विसराइ मन, नित^७ रह साई^८ माहि ॥२४४॥

आवा अदिन काल रथ फेरा । चला सुख दुख लीन्ह वसेरा ॥
 एक द्यौस नल सांभै^९ काला । कै संभूचा^{१०} सोयो ततकाला ॥
 ततखिन नीद आइ गइ सोए । सोइ गए चरनन्ह विन धोए ॥
 रही न सुरत विसर जनु भयऊ । नित्य नेम खंडित होइ गयऊ ॥
 इतनी चूक धरम मग भई । कलिजुग सत्रु घात वन^{११} गई ॥
 कै रिपु अन्त करन प्रवेसू । हर मति वाउर कीन्ह नरेसू ॥
 पलटि दसा औरे गति भई । ततखन मति खंडित होइ गई ॥
 कलिजुग राहु सुरुज नल गहा । बुधि परकास मन्द होइ रहा ॥
 छिन अचेत मूसा नल ऐसे । सदा अचेत वचहि ते कैसे ॥

दोहा—एक सत्रु सों नहि वचा, नल सो सजग सचेत ।

पांच सत्रु घर महं वसे, सोवहि^{१२} लोग अचेत ॥२४५॥

दोहा—२४४—१—तो गयो नहि टरै न (स०) । २—क्रोधत (कां०) ।
 * 'कां०' प्रति में यह ६ वी चौपाई है । ३—तेऊ (कां०) । ४—गुण (कां०) ।
 ५—विन (कां०) । ६—सुन (कां०) । ७—सांजी (कां०) ।

दोहा—२४५—१—संध्या (कां०) । २—संध्या (कां०) । ३—पुनि (कां०) ।
 ४—कई (कां०) । ५—सोवै (कां०), सूनी मो वहं (स०) ।

नल-दमन

कै कलिजुग नल कहं मति हीना । जाइ^१ जोर पुहकर सों कोन्हा ॥
 सो पुहकर राजा कर भाई । भाई^२ पं वैरी दुखदाई ॥
 तासो जाइ कही यह बाता । पुहकर फेरि^३ न पावसि घाता ॥
 चाहसि राज तो लै इहि घरी । नल की^४ ग्यान बुद्धि में हरी ॥
 भा मतिहीन सुमति अब नाही । जुवा खिलाइ जीत छिन माहीं ॥
 पहलै जब धन धाम हरावै । तत्र पुनि दाव राज पै आवै ॥
 वही जीति पुनि^५ देइ वनवासू । जोई इन्द्र^६ देहि कविलासू ॥
 वैठि सिंहासन फेर दुहाई । राख निसान वजाउ^७ बवाई ॥
 चल ततकाल विलम्ब न लावसि । चूक न पुनि यह समी न पावसि ॥

दोहा—मुनि सो बात पुहकर उठ्यो, वैठो नल पहं जाइ ।
 कलिजुग पुनि ब्रख रूप धरी, नेर ठाढ़ भा आइ ॥२४६॥

छिनक वैठ पुनि बात चलाई । हियें खुटक मुख लिये मिठाई ॥
 कपट रूप घेरा अति^१ लियै । ऊपर मिला अमिल विच हियै ॥
 राजा दिन न कटै ठिलुवाही । आवहु किन कछु खेल खिलाही ॥
 वह कपटी राजा जिउ भोरा । डरका तिही अग जस ढोरा ॥
 ग्रान सार पासा पकरावा । दाव राखि जिय जुवा मचावा ॥
 चित्तै बृखभ पुनि पुहकर बोला । कपट द्वार मुख तारा खोला ॥
 इही वैल पर वाजी लाई । जो जीतै सों वैल लेजाई ॥
 नल बोला का वैलन काजी । जा ऊपर ही लाऊं वाजी ॥
 कौन खांग माया कै मोरें । वैल लाइ खेलूं संग तोरै ॥

दोहा—कै करोध आयमु कियो, वैठो दरव मंगाइ ।
 ग्रान ढोइ ढेरी करी, चलयो सो राख न जाइ ॥२४७॥

दोहा—२४६-१—आइ (स०) । २—वौहर (कां०) । ३—को (स०) ।
 ४—मति (स०) । ५—तिन (कां०) । ६—तिन्हक (स०) । ७—फेर (कां०) ।
 दोहा—२४७-१—गति (स०) ।

नल जब दरव राज सब हारा । कछु न रहा भा छूँछ भंडारा ॥*
 पुहकर जीत भेद यह भया । नल कहँ तोख लाट तव कहा ॥
 नल उठ अरव यह नैल उठाऊ । कै लगाय धरनी पर दाऊ ॥
 नल मुन^३ वचन अनल होइ गयऊ । लाग जो वचन ओध अति भयऊ ॥
 हुता जो अंग राज गहि डारा । रानी कर अभरन^४ नो उतारा ॥
 लाइ दाव पुनि खेल रचादा^५ । पलक^६ पाव मँ बहो हरावा ॥
 कौड़ी कौड़ी कै धन हारा । सब कहँ हार हाय पुनि^७ झारा ॥⊙
 रहा न कछु सरवस पथ^८ गयऊ । दाद अगिन खेल अस भयऊ ॥
 छिनही महँ बिताइ गा राजू । रापन हुता^९ मनु^{१०} राज समाजू ॥

दोहा—छिनक खिलार तिहि खल मद, हार दीन गंठ रोइ ।
 खेल उठा तव चेत भा, अरव^{११} चेतै का होइ ॥२५२॥

पुहकर वैठि सिघासन गाजा । बाहर नगर कीन्ह नल राजा ॥
 आयसु कीन्ह देस चहुं ओरा । फिरी^१ दृहाई दीन्ह^२ डिडोरा ॥
 जो नल कहँ भोजन कोउ देई । सो प्रापन हत्या सिर लेई ॥
 चले पुरुख नारी संग दोऊ । देखि उनहि^३ भुरवै नव कोऊ ॥
 सब दिन धरनराज इन कीन्हा । दुख था कीन दोख विधि दीन्हा ॥
 कोऊ कहै बड़ो अग्यानी । आपु आपदा आपुहि आनी ॥
 ऊटना^४ पाइ कै दरव गवांवा । जुवा खेल सब^५ राज हरावा ॥
 कोऊ कहै दोख इहि नाहीं । सो^६ को परै आपदा माही ॥
 जस कछु परालवध परवला । तैइस सब संजोग ह्वै मिला ॥

दोहा—दुख औ सुख या देह कौ, परालवध गुन होइ ।
 सो अविचल सबसों सबल, मेट सकै नहि कोइ ॥२५३॥

दोहा २५२—* इस चौपाई का पहला पद 'कां०' प्रति की ६ठी चौपाई का पहला पद है और दूसरा पद उसी की ७वी चौपाई का दूसरा पद है । १—नल कै (कां०) । २—इहि (कां०) । ३—जिय (कां०) । ४—भूखन (सं०) । ५—मचावा (कां०) । ६—छिनक (कां०) । ७—जब (कां०) । ⊙ इस चौपाई का दूसरा पद 'कां०' की ६ठी चौपाई का दूसरा पद है । ८—ओ (कां०) । ९—अहा (सं०) । १०—जनु (कां०) । ११—पुनि (कां०) ।

दोहा—२५३—१—देह (कां०) । २—फिरा (कां०) । ३—वैठि (कां०) । ४—उदत (कां०), अटपटाउ (सं०) । ५—कै (सं०) । ६—सवन (कां०), सँ (सं०) ।

नल कै सवन भनक यह परी । सुनि सुनि सीस^१ तरहिनी करी ॥
 औ सो^२ वचन रानि पुनि^३ सुनै । लाजन्ह गड़ी जाइ मिर धुनै ॥†
 इन वातन्ह अघिकी अकुलानी । चली उतायल लाज लजानी ॥*
 छाड़ि नगर वाहर भए दोऊ । नारी पुरुख और नहि कोऊ ॥
 धिर गति^४ कान और रंग फेरा । नगर छीनि वन दीन्ह वसेरा ॥
 हुआ काल्हि ली राज समाजू । आज आइ प्रगटा यह साजू ॥
 जे पग सदा^५ पवित्तर रहै । ते ताते भूमल^६ महँ दहै ॥⊙
 जे तन पुहुप अरें अरसावै । सो कांटों तर लोटनि खावै ॥†
 ताती ताप लगै तन जरै । उड़ि^७ उड़ि^७ धूर सीस पै परै ॥

दोहा—पग वाहन दुख को कटक, छत्र छाँह रवि धूप ।
 धन चादर चौडोल महँ, चला जाइ नल भूप ॥२५४॥

चल कोसक व्याकुल होइ गए । पुरातन^१ सुखी परे दुख नए ॥
 वाट कँटीली पाँइ उघारे । काँटा अरै परै पुनि^२ छारे ॥
 पैगक चलन फेर कर जाही । ताकै हख विरख परछाही ॥
 खिन वन खंड^३ भीट^४ मै आवै । खिन^५ पुनि भाकर छार सतावै ॥
 खिन पहार परवत विच आवहि । घाटी चढत बहुत दुख पावहि ॥
 ये कराप गाढ वे सुखिया । जानो जनम जनम कै दुखिया ॥
 वस्ती जाइ परै जो फेरा । जहाँ जाहि कोउ सौह^६ न हेरा ॥
 जहाँ तहाँ निराग्रादरै^७ होई । द्वारे बैठन कहै न कोई ॥
 आवत देखि लोग मुख मोरै । इस्ट मित्र कोउ आख^८ न जोरै ॥

दोहा—अस्तुति निंदा पत अपत, सर्वे काल पर होइ ।
 उवत सूर प्रथमी नवै, अथवत नवै न कोइ ॥२५५॥

दोहा—२५४—१—सवन (का०) । † 'का०' प्रति में यह तीसरी चौपाई है ।
 २—को (स०) । ३—पै (स०) । * 'कां०' प्रति में यह दूसरी चौपाई है । ४—घट
 (कां०) । ५—पुहुप (कां०) । ⊙ इस चौपाई का प्रथम पद 'कां०' की आठवीं चौपाई
 का प्रथम पद है । ६—थल हल (कां०) । † इस चौपाई का प्रथम पद 'कां०' में सातवीं
 चौपाई का प्रथम पद है । ७—औ (कां०) । ८—दावा (कां०) ।

दोहा—२५५—१—प्रातम (स०) २—मग (स०) । ३—उड (स०), मारग
 (कां०) । ४—भेद (स०) । ५—अतिही (स०) । ६—सुनै (स०) । ७—तर और न
 (कां०) । ८—रख (कां०) । ९—नपत (कां०) ।

ये^१ कराप दुख भरहि निरासे । डोर्लाहि फिरहि भूख अरु प्यासे ॥
 उन^२ तन रकत न और अहारा^३ । चलना पै भांकर पग छारा ॥
 अति भूखै कोउ सुरत न लेई^४ । पुहुकर डर कोउ अन्न न देई ॥*
 विल विलाहि कछु हाथ न आवै । त्यों त्यों छुधिया अधिक सतावै ॥†
 और सत्रै दुख जाइ संभारा । भूख सवर^५ यासों जग हारा ॥
 भूखे भए जगत कै फाँसी । भूख नवाइ तपा सन्यासी ॥
 भूखै नेम धरम सब जाई^६ । भूखै रहै न मित्र मिताई ॥
 भूखै प्रेमी प्रेम विसारै । भूखै सत्य^७ लोग सत^८ हारै ॥
 भूखै बुद्धि हीन होइ जाई । हिरदै^९ घोइ^{१०} नर^{११} तज गरवाई ॥*

दोहा—भूखै जोगी जुगति सों, जोग न सकै जगाइ ।
 जोग ध्यान को ध्यान तजि, ध्यान^{१२} टूक^{१३} महँ जाइ ॥२५६॥

भूखे फिरत तीन दिन बीते । अति हारे छुध्या जब जीते ॥
 अगिन^१ दाह हियरै महँ भयऊ । भुरसि करेज स्याम होइ गयऊ ॥
 लागत पौन गात उड़^३ जाई । छाया घुआँ ज्यों जाइ विलाई ॥
 फूल दमावत अति कुम्हिलानी । कवल वेलि सूखी विन पानी ॥
 नल पर सबल भाई निबलाई । लट^३ पटाय^५ पग तावर आई ॥
 भूखन प्राण मुक्त भए^५ जाही । काया सिथिल कहे महँ नाहीं ॥
 नल पुनि अधिक सिथिल तन भयऊ । चला न जाइ निबल होइ गयऊ ॥
 कौलाई चलै देह विन खाए । गाड़ी थकै औग^६ विन लाए ॥
 डाढ़ै^७ वन वन फिर कन नाहीं । नाहत वही वीन कै खाहीं ॥०

दोहा—भूख सबल काया निबल, मारग चला न जाइ ।
 प्राण पिड अनरस भयो, सूभै कछु न उपाइ ॥२५७॥

दोहा—२५६—१—येक (कां०), आइ (स०) । २—वन (कां०), दिन (स०) ।
 ३—हिलोरा (कां०) ४—पावै (स०) ।* 'स०' प्रति में इस चौपाई का जो उत्तर पद
 है वह 'कां०' प्रति में आगे की चौपाई—संख्या ४ का उत्तर पद है ।† इस चौपाई का
 पूर्व पद 'स०' प्रति में नहीं है । ५—शत्रु (कां०) । ६—गाई (स०) । ७—सती (स०),
 सबै (कां०) । ८—पचि (कां०) । ९—फरो (स) । १०—होइ (कां०) । ११—अति
 (कां०) । * इसके पश्चात् 'स०' में निम्नलिखित चौपाई है जो 'कां०' में नहीं है:—

भूखै भूल जाहि नर नारी । आदि किरत गत मत पत सारी ॥
 १२—कट (कां०) । १३—होइ (कां०), तोक (स०) ।

दोहा—२५७—१—अन्न (कां०) । २—डर (कां०) । ३—अत (कां०) ।
 ४—तपाय (कां०) । ५—ह्वै (कां०) । ६—अमग (स०), ऊंग (कां०) । ७—दाढ़ै
 (स०) । ० यह चौपाई कां० में नहीं है ।

ततखन नल पंछी इक देखा । कंचन वरन सरूप विसेखा ॥
 कपटी कपट रूप अति लोना । विच^१ भंगार^२ देखत कर सोना ॥
 भूख पेट^३ नल कै मन आई । पंछी पकर भूँज लै खाई ॥
 तिहि लालच नल भगा उतारा । लपक आनि पंछी पर डारा ॥
 उड़ि भा सहित भगा सो खगा^४ । ठगा न काहि का जीवन तका ॥*
 उड़ पंछी अकास जब डोला । जीभ खोल नल सों तब बोला ॥
 मै अर^५ आइ दरम तोहि दीनां । तैं मोहि नेक न आदर कीनां ॥
 उलटै मोहि मारै कहूँ आवा । तिहि कारन मै तोहि सतावा ॥
 नांगा कीन्ह छीन लियो भगा । तैं न ठगा मोहि मै तोहि ठगा ॥

दोहा—सो पंछी कलिजुग हुता, कंचन वरन अनूप ।
 कपटी नल कै ठगन कीं, होइ आयो^६ खग रूप ॥२५८॥

नल अति दुखी भयो जब नांगा । वस न चलै मुख मिलै न मांगा ॥
 फिर फिर हाथ मलै पछिताई । विधि यह कौन आपदा आई^७ ॥
 सोच विमूर^८ नारि सों बोला । रानी दिन दस अदिन अडोला ॥
 दुख में दुख जो करै अघिकाई । जानि जाइ कछु नाहि भलाई ॥
 राज गयो हम भये भिखारी । वन वन फिरै पुरुख अरु नारी ॥
 बल सत धरम भूख हरै लीन्हा^९ । यहु अति विपत दिगंबर कीन्हा ॥*
 तन पर हुता जो जीरन^{१०} भगा । वही न रहा भाग अस ठगा^{११} ॥
 ओ^{१२} अजहूँ^{१३} कछु जान न परै । वी किहि ढरन काल रथ ढरै ॥
 कौन कौन दिन आगे आवै । किहि किहि भरम काल भरमावै ॥

दोहा—मोहि अनो दुख कछु नहि, ज्यों त्यो जाइ विहाइ ।
 तेरे दुख तैं अधिक दुख, सो दुख^{१४} सहा न जाइ ॥२५९॥

दोहा—२५८—१—निज (स०) । २—भंगार=घास फूस (का०) हुकार (स०) ।
 ३—बैम (का०), वैम (म०) । ४—फेका (म०) । * इम चीपाई का उत्तर पद 'स०'
 प्रति में नहीं है । ५—अति (म०) । ६—लगि (का०) । ७—गयो (का०) ।

दोहा—२५९—१—लाई (का०) । २—बोरे (म०) । ३—ले (का०) । ४—
 गई (का०) । * 'का०' में उत्तर पद इम प्रकार है:—ता पर गौर भई इहि नई ॥
 ५—चौर (म०) । ६—यका (का०), भगा (स०) । ७—उवा (स०) । ८—चहीं
 (स०) । ९—पुनि (स०) ।

ज्यों ज्यों तोहि देखीं कुम्हिलानी । त्यों त्यों हिया होइ अग्यानी ॥
तो दुख उर है अगिन समाई । कोइला ज्यों करेज घघकाई ॥
अपनी भूख प्यास भर काढी । तोरी भूख निपट हीं दाड़ीं ॥
तू ये दुख न देख मो काजै । विपदा परै वनै तव भाजै ॥
भलै करसि जो नैहर जासी । कौ लीं भई फिरसि वन वासी ॥
दच्छिन मारग निपट सुहेला । निरभै चलै अकेल दुकेला ॥
औ पुनि बहुत लोग उत जाहीं । चली जासि मिलि मेला माहीं ॥
वन फिर पुनि बहूतै अति होई । पंथी घात न बरजै कोई ॥
दिन दस काटि जाइ कलि कालू । घौ कस होइ काल कर चालू ॥

दोहा—तैसी चाल चलै वनै, जैस काल कर चाल ।
काल व्याल न कटाइयै, आप काटियै काल ॥२६०॥

मुनि पिउ बचन रोइ धन बोली । रोवत भीज गई तन चोली ॥
प्रीतम प्रीति रीति यह नाही । जैसी तू आनसि मन माहीं ॥
गला नेह तैसहुं पहुंचावा । मोहि दछिन कर पंथ बतावा ॥
संपति विपति लाख किन होई । मीत विछोह न ताकै कोई ॥
साजन हीं जौ लीं संग तोरें । तौ लीं अदिन नाहि मन मोरें ॥
जेहि दिन तोसों हीं मै न्यारी । तिहि दिन अदिन होइ पैसारी ॥
तू मोसों जो होसि उदासी । हीं तोहि कत छाड़ीं वन वासी ॥
तू इहि गति डोलसि वन माहां । हीं नैहर वैठीं सुख छाहां ॥
जो पुनि बिधा एक अंग होई । और अंग संग तजै न कोई ॥

दोहा—हीं मंजीठ कै रंग ज्यों, औटि मिली तोहि संग ।
तू ततकाल उघड़ चला, जैसे रंग पतंग ॥२६१॥

दोहा—२६०—१—बक जाई (कां०), दख जाई (स०) । २—मग (स०) ।
३—खाइ (कां०), घाटा (स०) ।

दोहा—२६१—१—तिन सर (म०) । २—पियारी (स०) । ३—तन (कां०) ।
४—नगाल (स०) ।

नल तव' रोइ कहा सुन नारी । तू मोहि प्रानन तै अति प्यारी ॥
 तन मटकी' ता मधि दधि जीऊ । ता दधि जीउ मांभू तू घीऊ ॥
 मोहि तेरो विछुरन कत भावै । पै तो दुख मोहि अधिक सतावै ॥
 तेरो कस्ट देखि हीं भूरीं । वस न चलै कछु विवस विसूरी ॥
 सबै सही यह जाइ न सहा । तिहि कारन मं तोसों कहा ॥
 तेरो पिता पुहुमिपति भारी । तहां जासि तू रहसि सुखारी ॥
 कत मोरे कारन दुख पावसि । आप दुखित होइ मोहि दुखावसि ॥
 जो तेरे जिय की सुख होई । ती' पुनि' मो दुख और न कोई ॥
 तोरे सुख हींहं सुख पाऊं । रहै न बीच दुख कर नाऊं ॥

दोहा—जो पुनि तू मोहि ना तजसि, मँहं तजी' न तोहि ।
 तोरे संग समीप किन, लाख होहि दुख मोहि ॥२६२॥

पीतम पिता मोर जो राजा । पिता राज मोरे किहि काजा ॥
 तो विन किहि गिन' राजसमाजू । तोरे संग अदिन मोहि राजू ॥
 श्री इहि गति नैहर जो जाऊं । हीं लार्जी पुनि तोहि लजाऊं ॥
 तेहि दिन' तहां जाउं हीं नाहां । जिहि दिन छत्र करं तोहि' छाहां ॥
 हीं पुनि जानूं तू कित जाई । सो ती तो दुख रहा समाई ॥
 ज्या मो' दुखे तोहि दुख आवै । त्या तेरो दुख मोहि सतावै ॥
 मन तोहि नेक न त्यागन कहै । छाड़ि' जो' जाउं छाड़ि मोहि रहै ॥
 अब इक दुख तव दो दुख लागहि' । मन अति दुखी नैन उत जागहि' ॥
 ऐसी गति तोरी पुनि होई । मीत विछुर भा' सुखी न कोई ॥

दोहा—मीत विछुर जो जीजिये, का जीयें' तेहि' दाव' ।
 सजन' विछोह न कीजिये, जीउ' जाव तो जाव ॥२६३॥

दोहा—२६२—१—पुनि (स०) । २—मिट गइं (स०) । ३—तोहि (कां०) ।
 ४—विन (कां०) । ५—त्यागूं (कां०) ।

दोहा—२६३—१—गुन (कां०) । २—थान (स०) । ३—पथ (स०) । ४—
 मोरा (कां०) । ५—जे (कां०) । ६—हीं (कां०) । ७—पावै (कां०) । ८—जावै
 (कां०) । ९—भय (स०) । १०—तिन्ह (स०) । ११—जीयन (स०) । १२—स्वाद
 (स०) । १३—वचन (स०) । १४—जो जिये (कां०) ।

कहि ये वचन रहे मिलि दोऊ । नारी हठै^१ न कीन्ह विछोहू ॥
 छुध्या निपट दहै^२ तन त्रासी । वन वन फिरै लाग वन वासी ॥
 मग कछु साग पात फर पावहि । निकसत प्रान तेहि त्रिरमावहि ॥
 भै विहरै^३ कछु हाथ न आवै । निरगुन पेट लिये भरमावै ॥
 खिन इहि दिस खिन उहि दिस जाहीं । भाग बिना कतहूँ कछु नाहीं ॥
 कछु कर चढ़ा न सब वन हेरा । हेरत नदी तीर भा फेरा ॥
 पानी देख प्रान अस^४ पाई । डिगही छांह वैठि सुसताई ॥
 पिया दुहूँ अँजुरी दोइ पानी । समाधान भा त्रिखा सिरानी ॥
 सीर पौन अरु ठौर सुहावा । पल इक वैठि तहां^५ सुख पावा ॥

दोहा—जैसै सुख में नेक दुख, वही बहुत दुख देइ ।
 तैसै दुख में नेक सुख, बहुत मान मन लेइ ॥२६४॥

देखी तहां मीन दोइ परीं । पानी प्रान सों विछुरत मरीं^१ ॥
 लीन्ह उठाइ हरख हिय आना । भोजन मिला बहुत सुख माना ॥
 इन^२ ते मीन प्रान कै पाईं । मीन सो प्रान लेइ कहं^३ आईं ॥
 नल ते मीन छांड़ि घन तीरा । आप अन्हाइ^४ लाग तिहि नीरा ॥
 घन चाहा ते घोइ वनाऊं । जौलीं पिउ आवै नगियाऊं^५ ॥
 अंगुरिन हुता अमी कर वासा । वहै अमी विष भयो निरासा ॥
 मिरतक मीन हाथ जब लई । चेत चपल होइ जल महं गई ॥
 अदिन होइ तब कछु न बसाई । अमी हाथ में विख होइ जाइ ॥
 ईहि^६ कौतुक रानी अति^७ थकी । पलक एक लीं पलक न लगी ॥

दोहा—जनु अकास सों अवछरा, गिरी परीं भुइं आई ।
 कहां^१ हुती^२ हौ^३ अब कहां, सोच रही टक लाइ ॥२६५॥

दोहा—२६४—१—हठी (कां०) । २—हुती (कां०) । ३—फिरें (कां०) ।
 ४—जनु (कां०) । ५—रहे (कां०) । ६—कहं (कां०) । ७—ऐसे (सां०) ।

दोहा—२६५—१—खिन मरे (कां०) । २—एई (कां०) । ३—खिन (कां०) ।
 ४—अषाइ (स०) । ५—नहिं खाऊं (कां०) । ६—जिहि (कां०) । ७—अब (कां०) ।
 ८—ठरी (कां०) । ९—आव (स०) । १०—कहां (स०) । ११—है (स०) ।

राजा नल अन्हाइ जव आवा । तिन मीनन कर खोज न पावा ॥
 इत उत हेरा दिस्टि न आई । इन जानां रानी ने खाई ॥
 अति सुख मान न वात चलाई । विन खाएं इन^१ भई अंधाई^२ ॥
 हुता जो यह^३ भूखे अति दुखी । मिटि अत्र^४ भूख भयो अति^५ सुखी ॥
 पुनि वतिया^६ जव रानी कहा । राजा गुनत थकित होइ रहा ॥
 अदिन सवलता गिन मन गुनै । कहै न सुनै सीस पै धुनै ॥
 जानी गुड^७ खवाइ ठग ठगा । ऐसो लाइ रहा टक टका ॥
 पुनि पाछै बोला दुख खोला । भरै नैन पुनि^८ जिमि^९ यह बोला^{१०} ॥
 रानी देख भाग कस^{११} भागा । अजहू भागत लेइ न वागा ॥

दोहा—काल फिरे विपता परे, भाग हीन नर होइ ।
 निपट अभागे आज लीं, हम^{१२} सों भयो न कोइ ॥२६६॥

पाए^१ मीन गवांए सोऊ । भूखे रेंगि^२ चले उठि दोऊ ॥
 अवघट परत पैड दोउ^३ जाही । छाहीं देख बैठ सुसताहीं ॥
 पुनि उठि रेंगहि^४ चला न जाई । भूखे निपट भई निवलाई ॥
 कै कराय कोसक जव गए । हार गए अति^५ निरवल भए ॥
 निकटहि गांव दिस्टि महं आवा^६ । तहाँ वसेरा कहं चित^७ धावा ॥
 ज्यों त्यों गांव जाइ नियरावा । तहां अगोट^८ ठौर पुनि पावा^९ ॥
 जाइ गिरे दोऊ अति हारे । वैरिन भूख निपट गहि मारे ॥
 रैन भई^{१०} दिन गयो विहाई । टूट देह दुख निद्रा आई ॥
 सोये संग पुरुख अरु नारी । मानो जनम के नस्ट भिखारी ॥

दोहा—तिहि मंदिर पलका पुहुमि, सीर^{११} मुपेती^{१२} घास ।
 देखि काल गति कै सी सुख, कै ये दुख बनवास ॥२६७॥

दोहा २६६-१ तिहिं (कां०) । २—अनखाई (कां०) । ३—बैठ (कां०) ।
 ४—सु (कां०) । ५—जिय (कां०) । ६—विपता (कां०) । ७—कर (स०) ।
 ८—वीरन (कां०) । ९—वचन (स०) । १०—डोला (कां०) । ११—अस (स०) ।
 १२—ऐसो (कां०) ।

दोहा २६७-१—पानी (कां०) । २—निपट (कां०) । ३—दस (कां०) ।
 ४—जव (कां०) । ५—तव (स०) । ६—परा (स०) । ७—चित (स०) । ८—अगोस
 (कां०), अकोस (स०) । ९—वनावा (कां०) । १०—गई (कां०) । ११—सैन
 (कां०) । १२—करी अत्र (कां०) ।

सोई जब^१ अचेत होइ रानी । नल जागा चिता मन^२ आनी ॥
 बहु^३ मै^४ हुता एक दिन राजा । कहा भयो वह राज समाजा ॥
 ससि रानी जिहि सुरज न देखा । सो वन वन डोलै इहि भेखा ॥
 तिहि पर भूख भई^५ दुखदाई । या जीवन ते मरन भलाई ॥
 औ अवला मो लग दुख पावै । धौ सो काल की लौ भरमावै ॥
 जौली मोहि देखै यह नारी । तौली^६ मोसों^७ होइ न न्यारी ॥
 भूख प्यास काढै^८ दुख भरै । मोहि जारै नित^९ आपन जरै ॥
 सोवत याहि छाड़ि उठ जाऊं । कित अवला वन वन भरमाऊं ॥
 जब हौं याहि न चौहुं^{१०} दिखाई । तब सहजै^{११} नैहर उठि जाई ॥

दोहा—जाइ काल काटै तहां, यह कराप मिट जाय ।

पुनि विधि करै संजोग जब, हौहु मिलौ तब आय ॥२६८॥

यह चित^१ आनि उठा वनवासी । दुख मिलाप सों भयो उदासी ॥
 हुती भगा बिन देह उधारी । नारी पर चादर सो उतारी ॥
 भा अधीर छिन धरै न धीरा । चादर चीर कीन्ह^२ दोइ चीरा ॥
 कै दोइ आध ओढ़ सो आधी । चला भांपि आध^३ महं^४ दाधी^५ ॥
 चलि जब पैग चारि^६ मग गयऊ । तब मन प्रेम प्रीत बस भयऊ ॥
 प्रबल^७ प्रेम^८ पाछै कहं फेरा । आइ दमावत कर मुख हेरा ॥
 टक ताकै गति भर जिउ जोरा । तब ही ढरन फेर^९ मन ढोरा^{१०} ॥
 बहुरि चला चलि कै फिर फिरा । जाइ न सकै पेम फंद धिरा ॥
 ऐसै पांच बार फिर आवा । छठै^{११} कलिजुग मोह छुड़ावा ॥

दोहा—कलिजुग कियो कठोर मन, तोर मोह को जोर ।

चला सो चला उदास^१ ह्वै, मुख^२ न कियो तिहि^३ ओर ॥२६९॥

दोहा २६८-१—अति (कां०) । २—जिय (कां०) । ३—विधि (कां०) ।
 ४—हूं (कां०) । ५—होइ (कां०) । ६—कीन्हों (स०) । ७—गाढ़ी (स०) ।
 ८—पुनि (कां०) । ९—नीदों (स०) । १०—समझै (कां०) ।

दोहा २६९-१—जिय (कां०) । २—अध (कां०) । ३—डाढ़ी (स०) ।
 ४—एक (स०) । ५—फिर (स०) । ६—प्रीतम (स०) । ७—भरों (स०) ।
 ८—धरा (स०) । ९—उचाट (कां०) । १०—भ्रम (कां०) । ११—मन (कां०) ।

भयो विहान दमावत जागी । वैरागिन हूँदै वैरागी ॥
 इत उत हेरै दिस्टि^१ न आवै । भूठी आस मनहि भरमावै ॥
 चकित भई चहुं दिसि द्रिग फेरै । मूली डार मृगी ज्यों हेरै ॥
 पुनि चादर देखै तो आवी । श्री सारी आविहु^२ ते^३ आवी^४ ॥
 चादर देखि लग्ना वह गयऊ । दरक हिया चादर अस^५ भयऊ ॥
 मल मल हाथ करै पछतावा । निकट हुता पिउ नींद गवांवा ॥
 सोच करे पिउ गवा न आवा । गल वाही मै सोइ गवांवा ॥*
 वैरिन नींद भई दुख दाई । तव उवरी जब मूर गवांई ॥
 कित आई इहि गांव अभागी । सोइ गवांय कंत तव जागी ॥

दोहा—चूक आपनी का कहूं, का पै कूकन जाउं ।
 सोइ गवांयो कंत जो, क्यों न जाग पछिताउं ॥२७०॥

पछि पछिताइ कूक दै रोई । कंता ऐसी करै न कोई ॥
 हीं तोहि लागि भईं वैरागी । तै यह गति अनाथ कै त्यागी ॥
 मै इह जगत मूर तू जाना । भा तोसो यह लाभ निदाना ॥
 वन महं छाड़ि गयमि रे विमासी । कित हूँढों कित जाउं निरासी ॥
 तै जो कहा तोहि जियन न त्यागी । अब वीं यह त्यागी पुनि^१ काकीं ॥
 वचन बोल काहे अस कीन्ही । कित बटमार कुमति तोहि दीन्हीं ॥
 कहु काहे न कहसि ही नाहां । कत अथगती^२ तजी वन माहां ॥
 ठगहु विसास^३ पथिक जो मारै । वही मारि निरजिउ करि डारै ॥
 पिउ तै मोहि मारा न जियावा । विछुवन डांक विछोह लगावा ॥

दोहा—तो समीप सुख मगन ह्वै, मै जो^१ सहा सब दुख ।
 तै^२ दुख मै मोहि दुख दियो, देख^३ आपनी सुख ॥२७१॥

दोहा २७०-१—हाथ (कां०) । २—दाघी (कां०) । ३—दा (स०), अध (कां०) । ४—दाघी (कां०) । ५—जनु (कां०) । * 'कां०' में यह चौपाई नहीं है ।

दोहा २७१-१—इहि (कां०) । २—अधगनी (स०), अधदही (कां०) । ३—
 तिम (कां०) । ४—आंका (स०) । ५—पिठ (स०) । ६—ताक (स०) ।

तीन ती कान गया ते लो । तीं दुष म १५ दवावत एकी ॥
 रोम करे भरे मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मे ताना दुष मी मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 वही न भरे भाग दम १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 को निरमा म मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मो दुष देगो मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 पियो दुष मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मा मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 कदमी मी मी १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

दोहा-विगीत विगीत विगीत दुष मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं न मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

तीति' भुग मी विरे मं १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 दुष मी मी मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मीन मीन मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मीने मीन मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

दोहा-जोइ' परा इ मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 मं मं मं मं मं मं मं मं मं मं ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

दोहा २७६-१-नची (का०) । २-मिटके (म०) । ३-कुटा (म०) ।
 ४-करै (स०) । ५-नये (स०) ६-बरी (म०) । * 'कां०' प्रति में मह दोहा
 इस प्रकार है:-जो को तै मुहि दुष अनग, ती कानहिं भूज चवाइ । वैरी मोहि भूजा करै,
 भूज चवाइ न जाइ ॥

दोहा २७७-१-छिन (कां०), चैन (स०) । २-भरी (स०) । ३-भूले
 (कां०) । ४-भगाई (का०) । ५-दखरावी (स०) । ६-जानी (म०) । ७-मीच
 (स०) । ८-मृकै न (कां०) । ९-चिता (म०), चिंता (कां०) । १०-बीच
 (कां०) । ११-मानस (कां०), मांस (स०) । १२-जोर (कां०), जुरै (म०) ।
 १३-पुनि (का०) ।

तिहि वन बड़ा वाघ एक देखा । मुख रक्तार' भयावन भेखा ॥
 काल रूप गूजे' गरजाई । भूख क्रांध महं' रहा ऋभाई ॥
 सबल जान ता सनमुख चली । मकु जो होइ दुख सां यह' भली' ॥
 दुख जीवन' मोहि मार मिटावै । यह अघाइ मोहि भूख गवावै ॥
 सनमुख जाइ निसंक' भइ ठाढ़ी । राखिसि प्राण पानि पर काढ़ी ॥
 मकु' हरि' विरह अगिन डर करै । सकुचि हिये पर हाथ न वरै ॥
 ती सो सिंह सियार ह्वै गयो । विरह अनल डर' सीह न भयो ॥
 ज्यों ज्यो नैन मिरग दिखरावै । त्यां त्यो ताहि मृगी अस आवै ॥
 सकुचि नैन मुख मोर सिकोरै । फेरै' नैन सो फिर' न जोरै ॥

दोहा—सिंह आप डर' कै डरा, मति' मांहि देइ जराइ ॥

काल अगिन को रूप धर, ठाढ़' भयो है' ग्राइ ॥२७८॥

सिंहहि तै जव सरा न काजू । भा अति सबल' विरह कर राजू ॥
 सह न जाइ दुख मीच न आवै । व्याकुल भई बहुत दुख पावै ॥
 लै लै नल को नांव पुकारै । दै दै सीस पुहुमि' पर मारै ॥
 फिर फिर बोलै वचन दुखारे । कहां मिली ही' प्रीतम' प्यारे ॥
 तो' विन मिलै नाहि मुख नाहा । इह' दुख को उपाव तोहि पाहां ॥
 कित ढूंढी कौने वन जाऊं । जहा जाऊं तहा' खोज न पाऊं ॥
 केहि वृक्षी को खोज बतावै । निज पंथी कोउ हाथ न आवै ॥
 मारग बहुत चलै चहुं ओरा । सो निज पंथ कौन धी तोरा ॥
 तिहि मग चलै' ग्राइ' तोहि' भेटौ' । जिहि दुख मर मर जीउ' सो भेटौ' ॥

दोहा—देख देख मारग घने, घना भरम जिय होइ ।

जौने मग' चलि तोहि मिलौं, सो न बतावै' कोइ ॥२७९॥

दोहा—२७८-१—रक्ता (कां०) । २—कूच (स०), लरज (कां०) । ३—ताक (कां०) । ४—वह (कां०) । ५—वली (स०) । ६—जेत (कां०) । ७—सिंह (कां०) । ८—मग (कां०) । ९—हर (कां०, स०) । १०—उर (स०) । ११—मोरे (कां०) । १२—बहुर (कां०) । १३—उर (स०) । १४—मग (कां०) । १५—प्रगटि (कां०) । १६—धी (कां०) ।

दोहा—२७९-१—तेज (कां०) । २—भूई (स०) । ३—होइ (स०) । ४—प्रेम (कां०) । ५—तिह (कां०), तोहि (स०) । ६—इन (स०) । ७—निज (स०) । ८—पै (कां०) । ९—हूं (कां०) । १०—चाहतु (कां०) । ११—हिडूं (कां०) । १२—जीवन (स०) । १३—समिटू (कां०) । १४—मुख (स०) । १५—मोहि मिला न कोइ (कां०) ।

खोजत फिरै^१ भरम महं परी । खिन इहि मग खिन उहि मग खरी ॥
 जिहि मारग निकसै जो बटाऊ । धाइ जाइ तिहि मिलै अगाऊ ॥
 वीर कतहुं काहू पिउ^२ देखा । ऐसे ऊठ^३ धरै अस भेखा ॥
 कोऊ कतहुं न खोज बतारै । हिय सों बाहर खोज न पावै ॥
 जब देखै पंथी^४ कोर नाही । विरछ विरछ हूँ वन^५ माही ॥
 बढा जो भरम भया^६ वन मारै । पात पात सब विरछ निहारै ॥
 मग पानन महं होइ दुराना । कै रह जाइ डार^७ लिपटाना ॥
 पौन झकोर पात जो डोला । चाँकि उठै जानी नल बोला ॥
 धावत मिरग नेर^८ जो आवै । होइ विसंभर पछि^९ उठि धावै ॥

दोहा—खोज खोज वाउर भई, खोज मिलै कछु नाहि ।
 कंत गवांयो गांव महं, कित पावै वन माहि ॥२८०॥

भरमत फिरै भरम भरमाई । अगिन^१ चक्र मनु^२ दीन फिराई ॥
 चक्रित भइ डोलै चहुं पासा । नल मुख वचन अनल हिय वासा ॥
 देखी नदी तीर वन माहां^३ । ठौर अगोट^४ सघन अति^५ छाहां ॥
 केतिक साधु बैठ तिहि ठाऊं । जापा करहि चित^६ कर नाऊं ॥
 जपत जपत सोई होइ गए । मिटा भरम भै निरभय हिए ॥
 जद्यपि हाथ रहे जप माला । पै मन आतम मद मतवाला ॥
 करम अलग ग्यानी संजोगी । निरभय परालवध कै भोगी ॥
 ज्यों घट मै घट त्यों घट माही । घट औघट अंतर कछु नाहीं ॥
 जीवत मुक्त भये^७ जे सोऊं^८ । निज निरबंध बंध नहि कोऊ ॥

दोहा—जा माया रजु सरप भए, भरम जगत मरजाइ^१ ।
 साधू जन तिहि सरप कै, सेली करै नवाइ^२ ॥२८१॥

दोहा २८०-१—भ्रम (कां०) । २—नल (कां०) । ३—ऊदत (कां०), ऊथ (स०) । ४—तव (कां०) । ५—मन (स०) । ६—बहाये (कां०) । ७—पात (स०) । ८—रुझ (स०) । ९—पाछै (स०) ।

दोहा २८१-१—आन (कां०) । २—जनु (कां०) । ३—पांहां (कां०) । ४—अगोस (कां०, स०) । ५—वन (कां०) । ६—चिता (स०), जपना (कां०) । ७—गये (कां०) । ८—कोई (कां०) । ९—मुरझाइ (स०) । १०—बनाइ (कां०), निमाइ (स०) ।

तंतखन साधुन देखि बुलाई । आयसु मानि ठाढ़ भइ जाई^१ ॥
जद्यपि तिन्हि मरम सब सूझा । पै व्यीहार दिस्टि^२ तिहिं वूझा ॥
कहु अवला आपन सब भाऊ । कौने भरम भई भरमाऊ ॥
निज विपता^३ सब कहा दमंती । जस कछु हुता आदि लै अंती ॥
सुनि सो बात साधु संतोखी । मीठे अमी वचन कहि पोखी ॥
जनि अस^४ सोच करसि मन माही । दुख सुख खिन आवाहिं खिन जाहीं ॥
दुख सुख करनहार जो कोई । जां चाहै छिन मै सो होई ॥†
जेहि खोजसि पावसि तेहि^५ पीऊ । आनंद मूर जीउ को जीऊ ॥*
वहै पीउ वह तू^६ उर राजू । जुरा जान सब वहै समाजू ॥

दोहा—चिंता न करहु अचित रहु, सब चिंता मिट जाइ ।

दिवस चार इह^७ काल गति^८, तासों कछु न वसाइ ॥२८२॥

सुन सो वचन^९ ताहि^{१०} मन आई । विधि यह सपन की सांपरताई ॥
मकु^{११} तस होइ माधु जस वोलै । साधू वचन अडोल न डोलै ॥
नैसिक^{१२} आस वांघ उठि चली । मन मै वहै विरह कलमली ॥
भूखा खाइ तवहिं पति आई । त्रिखा दाह जल पिये सिराई ॥
जो वन चलि पाछै जब डारा । आग चलत मिला वनजारा ॥
चहुं दिसि हाहू हाहू होई । लदै वल सब अलद न^{१३} कोई ॥
नायक एक वरदिया घनें । सब वनजे ताके संग सनें ॥
दै पूजी व्यीहार^{१४} करावै । खरचि खवाइ खेप पहुंचावै ॥
लेखा समुभि लेइ पुनि देई । जिन जस भरा^{१५} लाभ तस^{१६} लेई^{१७} ॥

दोहा—एक अभागी निपट^{१८} कै, मूरहु दीन गवांइ ॥

तिनहूं लीन^{१९} निवाह^{२०} पुनि, खान पान पहुंचाइ ॥२८३॥

दोहा २८२-१—आई (कां०) । २—करम (स०) । ३—चीता (स०) ।
४—अव (कां०) । † यह चौपाई 'कां०' में नहीं है । ५—सो (कां०) । *'कां०' में इस
चौपाई का उत्तर पद इस प्रकार है :—ताहू कर तोही मै जीऊ ॥ पुनः इस चौपाई के
पश्चात् 'कां०' प्रति में यह चौपाई है :—देहि वियोग काल कटि भयो । इह जाइ जैसै
बोहि गयो ॥ ६—तुव (का०) । ७—महं (स०) । ८—कटि (का०) ।

दोहा २८३-१—वात (का०) । २—ताके (स०, कां०) । ३—मग (कां०, स०) ।
४—सिसक (कां०) । ५—जो (स०) । ६—व्योपार (स०) । ७—परा (स०) । ८—जस
(कां०) । ९—होई (कां०) । १०—आव (स०) । ११—लेत (स०) । १२—विसाहन
(कां०) ।

टांड़ा^१ ह्वै निकसी सो नारी । पेम वनजि वनिजै वनजारी ॥
 देख रूप नायक वनजारा । शकित भयो जानहुं चलि हारा ॥
 विधि यह मनुख किर्वा अवछरा । कँ नभ^२ छांड़ि^३ चांद भुइं परा ॥
 पूछा कहु नारी मो पाहां । तू को किहि वियोग वन माहां ॥
 वीरा^४ का पूछसि मो पीरा । मो पीरा नुनि घरसि न घीरा ॥
 मो उर अगिन लपट जो गाढ़ी । एक भूपट^५ तीनों पुर डाढ़ी ॥
 भीमसेन राजा कँ वारी । नल नरेम ताकी घर नारी ॥
 जुआ खेल पिउ राज हिरादा । छूटा वास वास वन पावा ॥
 तिहि दुख पर अब यह दुख भयो । वन महं कंत छांड़ि मोहि गयो ॥

दोहा—नेहि^६ विन वन रोवत फिलं, नहि^७ विछुरै की^८ खोज^९ ।

खोज न पाऊं मकु^{१०} जो कछु, तुम जानहु पिउ^{११} खोज ॥२८४॥

सुनि दुख^१ दुखित भयो वनजारा । लागिसि अगिन लपट उर झारा ॥
 ता गति देखि छोह जिउ आवा । पुनि तिहि छोह मोह उपजावा ॥
 छका पिये मद^२ मोह^३ पियाला^४ । कहसि हियै हित कँ मुन वाला ॥
 तो पिउ कँ मोहि मुरत न कोई । जैसे तू तस मै हूं वटोही ॥
 पै यह मत आवै मन मोरै । जो पुनि ठौर वनै जिउ तोरै ॥
 तू वन जनि आपुहि भरमावसि । वसती खोज खोज जिहि पावसि ॥
 चल मो संग हौं चली चंदेरी । मारग लेइ जाहुं सुधि तेरी ॥
 लै तोहि नगर मांभ बैठाऊं । यह तेरो वन भटक^५ मिटाऊं ॥
 वसती वसै खोज मिल रहै । आवत जात पथिक तोहि कहै ॥

दोहा—पंथी उघटत^६ पवन ज्यों, निस दिन आवहि जाहि ।

वेहि वतावहि खोज तोहि, खोज बूझ तिहि पाहि ॥२८५॥

दोहा २८४-१—तांड़ा नरान (स०), टांड़ी (कां०) । २—इहि (कां०) ।
 ३—आइ (कां०) । ४—वैरागा (स०) । ५—छूटि (कां०) । ६—इहि (कां०) । ७—ता
 (स०) । ८—गा (स०) । ९—रोज (स०) । १०—मग (कां०) । ११—इहि (कां०) ।

दोहा—२८५-१—उर (स०) । २—मधु (कां०) । ३—मोह (कां०) ।
 ४—मतिवाला (कां०) । ५—पहन (स०), भटन (कां०) । ६—तोउ घटत, (स०),
 तो घटि (कां०) ।

मुनि सो बात लागी^१ मन भली । तिहिं आसा ताके संग चली ॥
 भै^२ जब तहां दिवस दोइ चारै । ग्रहिन अगिन जारै परजारै ॥
 एक चौस वन महं वनजारा । उतरा देखि निकट^३ जल धारा ॥
 तिहिं वन हसित रहै^४ चहुं पासा । औ निकटहिं सिंहन कर वासा ॥
 भइ जब अरघ निसा तिहिं वेरा । हाथिन आइ कीन्ह तहं फेरा ॥
 कारे अति भारे मतवारे । छिंक^५ टांडा तिन किये वरारे ॥
 मव मारे जेतक वनजारे । सै^६ नायक पायक मल डारे ॥
 तिन महं जियत वची सो नारी । कै वांभन दाइ चार भिन्नारी ॥
 रोवै नारि भुरै पछिताई । जिहिं की गति इन्ह कै संगआई ॥

दोहा—कित^७ नायक मो सो^८ पिता^९, टांडा लिये लदाइ ।

यह जो कछु^{१०} इन पर भयो^{११}, सो मोरे संग गिनाइ ॥२८६॥

रोवत राखि द्विजन समुभाई । चले लिये ताहू संग लाई ॥
 तिन्ह कै संग^१ लागि सो नारी । आइ चंदेरी महं पगधारी ॥
 भीतर नगर कीन्ह परवेसू । भूले लोग देखि तिहिं भेसू ॥
 ऐसे रूप भेख इहिं कीए । को वा प्रेम सुरा अस लीए^३ ॥
 जाकी दिस्टि परी अवछरा । मो छकि जाइ देखि जनु छरा ॥
 कौतुक कहं पाछे उठि लागे । फिरा करे संग संग न त्यागे ॥
 जुरै जो लोग भीर अति भई । सगरै नगर रोर मच्चि गई ॥
 अति नरूप आई^४ इक नारी । अदभुत चंद वरन उजियारी ॥
 इहि वनाव इहि रूप निकारै । अवन्या अवली दिस्टि न आरै ॥

दोहा—वनुक वान नार्थ फिरै, खरग कटारा संग ।

भृकुटी वरुनी नास द्रग, कोप्यी मनी अनंग ॥२८७॥

दोहा—२८६-१—रानी (कां०) । २—वैठी (स०) । ३—निपट (कां०) ।
 ४—रीछ (कां०) । ५—छक (स०), भुक (कां०) । ६—सव (कां०) । ७—कै (स०) ।
 ८—सी (कां०), से (स०) । ९—नप्त (कां०) । १०—काज (कां०) । ११—परे
 (कां०) ।

दोहा—२८७-१—लार (स०) । २—पियये (कां०) । ३—वारी (स०) ।
 ४—असंग (स०) ।

ततखिन नगर राज पटरानी । अति विचित्र सुंदर परधानी ॥
 आपन औ केतक संग नारी । कौतुक कारन चढ़ी अटारी ॥
 ताकी दिस्टि भीर^१ वह आई । जन पठाई सुधि^२ बूझ मंगाई ॥
 सुना भीर कारन तिहि रानी । जिहिं कारन वह भीर जुरानी ॥
 सुनत दमंती बोल पठाई । आवत ढिग बुलाइ वैठाई ॥
 बिन पूछै देखत उन जानी । यह जो है कोऊ पटरानी ॥
 पुनि बूझा तूं को कह आली । आली कहा अदिन दुख घाली ॥
 पुनि तासों बूझी न चलाई । राज मंदिर महं ठीर दिवाई ॥
 औ^३ आपन^४ वारी अति प्यारी । धाइ^५ सहित सेवा महं डारी ॥

दोहा—लै राखी फुलवारि महं, फूल जानि सो^६ नार ।
 पै ताकी मन रात दिन, ढूँढंत फिरै उजार ॥२८८॥

नल जिहिं दिन^१ नारी तजि गयऊ । भुर नारी नारी तन^२ भयऊ ॥
 तरफत फिरै बीच वन^३ माही । मन धन महं तनकी सुधि नाही ॥
 मीत विछोह बहुत पछिताना । जब हिय दाह परा तव जाना ॥
 तव वह^४ दुखी देख उठि आवा । अब अनदेखै दुख सो दुखावा ॥
 भरम भया आपै वतरावै । ज्यों परेत^५ लागै^६ वीरावै^७ ॥
 मै यह कौन कुमति उर धारी । अधमारी वनिता वन डारी ॥
 वन वासा कोउ आस^८ न पासा । धौं^९ निरास वैठी^{१०} किहि आसा ॥
 मो संग भूखहु रहत अधानी । मी^{११} बिन^{१२} प्यास मरै तज^{१३} पानी ॥
 ज्यों सारस विछुरै मर जाई । त्यों मर जाइ किधी^{१४} विललाई ॥

दोहा—मोहू पुनि कछु दोस नही, कत^{१५} त्यागी तन जीउ ।
 काल मथनि ज्यों फेर मन, काढ़ि लियो दधि घीउ ॥२८९॥

दोहा—२८८-१—फेर (स०) । २—गति (कां०) । ३—आवा (स०) ।
 ४—पुनि (स०) । ५—धापे (स०) । ६—वह (स०) ।

दोहा—२८९-१—वन (स०) । २—वन (स०) । ३—मन (स०) । ४—
 दुखी (कां०) । ५—उर (कां०) । ६—हीयक (कां०) । ७—भरी लगाई (कां०) ।
 ८—संग (कां०) । ९—वह (स०) । १०—निवहै (स०) । ११—अव (कां०) ।
 १२—वह (कां०) । १३—बिन (कां०) । १४—वहौ (स०) । १५—गति (स०) ।

फिर फिर यहै^१ वचन मुख बोलै । अरघ^३ निसा उठि^३ वन महं डोलै ॥
 फिरत फिरत दूजा दिन आवा । टिका न विरह^५ ताहि^५ भरमावा ॥
 डोलत फिरै विरह वैरागी । तिहिं वन गयी जहां दी लागी ॥
 चारों ओर भई अकुलाई । भुइं अकास जनु दीन्ह जराई^६ ॥
 पीन अगिन जारत वन आवै । मेघ अरन^७ ज्यों लपट उठावै ॥
 जद्यपि अगिन असूभ अपारा । पै नल विरह अगिन चिनगारा^८ ॥
 चला जाइ कछु मनहिं न ग्रानै । जरा अगिन सेकै^९ किन^{१०} मानै^{११} ॥
 ततखन सबद खवन महं आवा । वन काहूं नल नल गुहरावा ॥
 नल तू बड़ धरमी गुनि ग्याता^{१२} । नेक आइ मोरी मुन वाता ॥

दोहा—सुनि सो वात नल फेर द्रग, जो हेरै वन माहिं ।
 एक सरप दी मै^{१३} परा, और निकट कोउ नाहिं ॥२६०॥

वचन मान अहि पै नल आवा । कह दिखधर किहिं काज बुलावा ॥
 सरप कहा राजा हीं पापी । मोहिं अपनी करतूति बियापी ॥
 मै वांभन निरदोख दुखावा । दोख होइ तेहि डांक लगावा ॥
 सो वांभन सराप मोहि बोला । डुलसि न विधि तोहि करै अडोला ॥
 तिहिं सराप मो गति यह भई । तन कै गति मन सो मिलि गई ॥
 तन अडोल भा डोल न जाई । मन अति^१ डावाडोल डुलाई ॥
 अब यह अगिन काल भइ आवै । ज्वाल^२ ज्वार^३ मोहि जार बुभावै ॥
 ही अनाथ आपन अपराधी । तुम काटहु तो कटै यह व्याधी ॥
 काल अदिन^४ सो मोहि वचावहु । जहां न काल तहा पहुंचावहु ॥

दोहा—महाराज इहिं काल सों, मो पहं वचो न जाइ ।
 अमर होउं जो^५ वांह गहि, अब कै लेहु वचाइ ॥२६१॥

दोहा—२६०-१—आइ (कां०) । २—दिन (कां०) । ३—आठ पहर (का०) ।
 ४—फेर (कां०) । ५—वाह (स०), पाइ (का०) । ६—दिखाई (कां०) । ७—घटा
 (स०) । ८—तन जारा (का०) । ९—से (का०) । १०—कनिको (कां०) । ११—
 जानै—(स०) । १२—दाता (का) । १३—ही तहां (स०) ।

दोहा—२६१-१—सों (स०) । २—ज्योर (स०), जोर (कां०) । ३—ज्योर
 (स०), जीवन (कां०) । ४—अतन (स०) । ५—तुव (कां०) ।

ता गति देख दया जिउ आई । नल चाहा तेहि लेइ वचाई ॥
 सरप हुता काया कर भारी । सबल सपेत^१ सूत जनु डारी ॥
 नल बलकै जो गहै कहं भयऊ । सरप^२ भुजा कंकन^३ होइ गयऊ ॥
 ततखन नल उठाइ गह^४ लीन्हा । काढ़ि अग्नि सो बाहर कोन्हा ॥
 नल जब हाथ लीन्ह विखधारी । छल बल कै^५ बोला हित कारी ॥
 गिन दस पैड प्रथम पग धारहु । तव राजा मोहिं कर सों डारहु ॥
 सोई कीन गिनत पग चला । नल सूधा वह^६ चाहै^७ छला ॥
 गिनत गिनत दस लीं जब आवा । दस कै कहत सरप डसि लावा ॥
 डसत वेगि तन विस बस गयऊ । रवि को रंग राहु जनु^८ भयऊ ॥

दोहा—अंग अंग सब भंग भयो, श्रीर रंग भा^९ अंग ।

देखे अदिन मन भंग कै, पुनि^{१०} कीनों तन भंग ॥२६२॥

नल बोला यह करत भलाई । तै मोसों कत कीन्ह बुराई ॥
 सरप उलट^१ उत्तर तेहि दीन्हा । राजा मै पुनि बुरा न कीन्हा ॥
 तो कहं अदिन सबल दुखदाई । केतिक घीस अचल न चलाई ॥
 तू राजा सब जग तोहि जानै । तोरी ऊठ^२ देखि पहिचानै ॥
 जो कोउ^३ दुखी^४ देखि दुख देई । वैरी मिलै वैर पुनि^५ लेई ॥
 मै तोहि गुन अदिस्ट^६ पहिराई^७ । निरमल मन बिख^८ मैल छिपाई ॥
 पुनि जब अदिन दिवस टरि जाई । सनमुख होइ भाग तोहि^९ आई ॥
 तव मोहि सुरति करसि ही आऊं । विख लीली मै उगल दिखाऊं ॥
 वहै वरन वंसै तन होई । जो तू हता होसि निज सोई ॥

दोहा—तू दिनकर मै राहु हूँ^{१०}, निस महं घरची बुराई ।

काल केतु^{११} रथ टरि गएं, बहुरि उवै सुख आई^{१२} ॥२६३॥

दोहा—२६२-१—समेत (कां०) । २—काल (कां०) । ३—किंगरी (कां०),
 कंकरी (सं०) । ४—कर (कां०) । ५—सी (कां०) । ६—चाहै (कां०) । ७—छल
 (कां०) । ८—रंग (कां०) । ९—हू (सं०) । १०—अव (कां०) ।

दोहा—२६३-१—पलटि (कां०) । २—ओठ (सं०), ऊदत (कां०) । ३—
 दोखी (कां०) । ४—देखै (कां०) । ५—पै (कां०) । ६—तुव छविहि (कां०) । ७—
 फिराई (कां०) । ८—मुख (कां०) । ९—तुव (कां०) । १०—मै (कां०) । ११—राह
 (कां०) । १२—कराई (कां०) ।

श्री यह विश्व तो तन रञ्जवारो । विश्व मिस अमी वूंद म डारो ॥
 सत्रु सिंह कोउ^१ निकट न आवै । जुद्ध जुरै कोउ जीत न पावै ॥
 अब तोहि और सीख^२ सिखराऊं^३ । नावं पलट^४ बाहुक वर नाऊं ॥
 श्री वन वन जनि करसि वसेरा । नगर अजुध्या तहं कर फेरा ॥
 तहं नरपति रितुपरन नरेसू । सो राजा वह ताकर देसू ॥
 राजा जुआ मरम सब जानै । छंद वंद नीक^५ पहिचानै ॥
 अनवन खेल सदा वह खेलै । एक विगारै^६ एक सकेलै ॥
 कई भेद सों पांसा डारे । जिन^७ मारा^८ चाहै तिहिं^९ मारै^{१०} ॥
 ताकै खेल खिलए न कोई । सब जग खेन खिलारी सोई ॥

दोहा—सर्व खेल वह खलै, बड़ो अपार खिलार ।
 विरला जन कोउ पाइए, तेहि मिल खेलनहार ॥२६४॥

मिल तासों ताकी कर सेवा । सेवा लखमि^१ खेल कर भेवा ॥
 सेवा करतहिं^२ वहै लखावै । किरपा कर सब भेद बतावै ॥
 जब पुनि खेल मरम तोहि^३ मिलै । तब तो भाग कवल होइ खिलै ॥
 जो गंठ जीन खेल तै खोवा । तिनहिं खेल तोहि^४ मिलै विद्योहा ॥
 यह दुख भरम सपन द्वै^५ जाई । तूही राजा तोर रजाई ॥
 कह ये वचन कीन्ह दुख मोखू । मनु हर लीन्ह मंत्र विश्व दोग्गू ॥
 पुनि ताही कंचुलि दोइ दीन्ही । विपत प्रीत वचनन हर लीन्ही ॥
 कहसि इनहिं राखी जिय लाई । जब जानमि सम्पति मोहि आई ॥
 तब ये अवधि रूप निज मोई । जस कछु आदि^६ हुता तस होई ॥

दोहा—नल अहि सों उपदेस सुनि, चला अबव मन लाइ ।
 अबध गए मग अदिन के, आव अबवि^७ टर जाइ ॥२६५॥

दोहा—२६४-१—तोहि (का०) । २—भेद (स०) । ३—वनराऊं (का०) ।
 ४—फेर (का०) । ५—निकारै (का०) । ६—जिस (का०) । ७—डारा (का०) ।
 ८—तिस (का०) । ९—ठारै ।

दोहा—२६५-१—निकस (का०) । २—कियै अवश्य (का०) । ३—पुनि
 (का०) । ४—तै (का०) । ५—मिट (स०) । * 'का०' में उत्तर पद इस प्रकार है:—ले
 दोऊ नल के कर दीनी ॥ ६—तोर (का०) । ७—और (का०) ।

पंथिन खान पान पहुंचावा । दसएँ द्यौस अवध नल आवा ॥
 तिहिं ठां राजनीति चलि आई । ज्यौं उत्तम^३ नर देइ दिखाई ॥
 ता गति नीके वृष्णि मंगारवाह । राजा सों तव जाइ सुनावहि ॥
 राजा सुना रांक कोउ आवा । आयसु भा नल बोलि पठावा ॥
 राजा मनु निरखत पहिचाना । जद्यपि हुता सरप विख साना ॥
 सजन^३ जान पूछा कहु नाऊं । किहिं गुन गुनी^४ वास किहिं ठाऊं ॥
 नल बोला का नाउं वताऊं । ही^५ निनावं कर बाहुक नाऊं ॥
 सब ठां फिरौ ठाउं नहिं कोई । जिहिं ठां रही ठाउं मोहि सोई ॥
 गुन पुनि वहै जो परभू भावै । पै मोहि सालोत्तर गुन आवै ॥

दोहा—गुन गुमान मोहिं कछु नही, ही निरगुन निरमान^६ ।

सुनि मै तुम निरगुन गुनी, सरन लीन्ह भगवान ॥२६६॥

मति^७ भंडार मुख^८ दिया जो तारा । नल रसना तारी सो उधारा ॥
 तव राजा निहचै^९ पहिचाना । यह जन^{१०} महा सुबुध सग्याना ॥
 जिहिं मति कर मानस^{११} जो होई । बोलै जानि जाइ निज सोई ॥
 हिय गति समुष्णि परै जद^{१२} देखै । मानस वचन वानि विसेखै^{१३} ॥
 राजा बहुत कृपा करि बोला । मया कीन अंतर पट^{१४} खोला ॥
 आयसु कीन्ह तुरै जो मोरै । सब कीन्है आयसु महं तोरै ॥
 बहुत भांति कै करसि संभारा । फेर फिराइ सवार तुखारा ॥
 चंचल होहिं चलै गति लेई । औ जो चढ़ै तिहिं महं चित^{१५} देई ॥
 केतिक ही इन्हें सधन सधाऊ । रथ सों जुरै चलै जस^{१६} बाऊ ॥

दोहा—सेवा करि चित लाइ कै, सेवा निफल न जाइ ।

सेवक साहव के हिये, रात द्यौस मंडराइ ॥२६७॥

दोहा—२६६-१- जौनों (कां०), जानौ (स०) । २-तुम (स०) । ३-सोजन (स०) । ४-बोल (कां०) । ५-मोहि (कां०) । ६-निर्वाण (कां०) ।

दोहा—२६७-१-पेट (कां०) । २-द्वार (कां०) । ३-निजकै (कां०) । ४-कोउ (कां०) । ५-मांगह (स०) । ६-हद (स०), चढ (कां०) । ७-पेखै (कां०) । ८-निज (कां०) । ९-तन (कां०), मन (स०) । १०-जव (कां०) । ११-होइ (कां०) ।

मया देखि पुनि^१ बाहुक बोला । अदिन अडोल मोर अब डोला ॥
 महाराज मोहि सेवा लावा । कीन्ह मया निरगुन पति पावा ॥^{*}
 सेवक तो जब सेवा करई । तव तिहि घनी हाथ सिर धरई ॥
 तुम मोहि विन सेवा गुन कीन्हा । अति^२ निरगुन सेवा महं लीन्हा ॥
 मोसों कहा होइ अस सेवा । जो तुम गुन पूजें गुन देवा ॥
 जो कछु^३ मोसों होइ सो करीं । मन वच करम सेव जिय धरीं ॥
 आरे गुन जो कछु हीं जानीं । समी परै सेवा महं आनीं ॥
 जग्य विवाह काज जो होई । वेगि बहुत रस करीं रसोई ॥
 श्री ही चित्र अनूप बनाऊं । जो देखीं सो लिख दिखराऊं ॥

दोहा—पानि लेत^४ ही चित्र^५ सो, प्रानवंत^६ होइ जाइ ।
 जाकर जापर रीक जिउ, ताही माहि समाइ ॥२६८॥

मुन ये वचन रीक अति भई । गुन गाथा मन महं गड़ि गई ॥
 राजा बहुत कृपा परि^७ आवा । अहुट^८ हुता नल निकट बुलावा ॥
 पुनि चितेर जे चित्र लिखैय्या । श्री जेतक ह्य रथन हंकाय्या ॥
 सब नल कहं आग्यां महं कीन्हे । कर तिन्ह सिरै^९ सकल संग दीन्हें^{*} ॥
 जानि मुजन श्री^{१०} चतुर प्रवीना । टका सहस दस कीन्ह महीना ॥
 रहै^{११} चित्र हिय लिखै संवारे । कवहूँ मन सों छिन न विसारै ॥
 तन कर स्वाम^{१२} काज सब करै । मन कर मुरत^{१३} माल नहिं टरै ॥
 उलट पलट सोई जप माला । ताहि जपै जिहि मद मतवाला ॥
 प्रेमहि सो माला ठहिराई । प्रान गए माला संग जाई ॥

दोहा—किहि गुन माला हाथ कैं, जो कर^{१४} माहिं^{१५} फिराइ^{१६} ।
 अजप माल साधुन गही, प्रभू^{१७} मिलै^{१८} तव जाइ ॥२६९॥

दोहा—२६८-१—फिर (कां०) । * 'कां०' में उत्तर पद यों है:—मैं इहि
 बड़ा पदारथ पावा ॥ २—निज (कां०) । ३—आवै (कां०) । ४—घन (कां०) । ५—
 चक्र (कां०) । ६—तो परि अनूप (कां०) ।

दोहा—२६९-१—कर (स०) । २—अहुत (स०, कां०) । ३—सुरें (स०) ।
 * 'कां०' में उत्तर पद यों है:—करहिं टहल ताकी सिप लीने ॥ ४—श्री (कां०) ।
 ५—वहै (कां०) । ६—इमि (स०) । ७—तन (कां०) । ८—हाथहिं (कां०) ।
 ९—हाथ (कां०) । १०—हिराई (कां०) । ११—जु पीये (कां०) । १२—मिला
 (कां०) ।

निस जब होइ नींद टर सोवै । यह दुख भरा जाग निस खोवै ॥
 वैरी विरह नाग होइ आवै । विखधर जान जुद्ध कहुं धावै ॥
 निवल पाइ रिपु धर धर खावै । रुदन करै जब कछु न वसावै ॥
 स्याम घटा तन औ निसिकारी । तैसइ विरह उमगि अंधियारी ॥
 लसै बीज होइ हियै दमावत । निमि वीतै चखै भरै लगावत ॥
 द्यौस कवल ज्यौ सब निसि नैना । औ मुख कहै विरह दुख वैना ॥
 प्यारी तू किहि वन वन वासी । किन डोलसि भूखी अरु प्यासी ॥
 ऐ जिउ प्रान कहां तोहि वासा । दिस्टि न परसि रहसि जिउ पासा ॥
 तै उदास कैवी मन माहीं । का तोहि रूप सुरत मोहि नाही ॥

दोहा—कत तिहिं द्यौस निसा परै, उहिं वटपारै गाऊं ।

वसा कुमति उपजी हियै, कर मल मल पछिताऊं ॥३००॥*

निज जब इहिं कलाप निसि खोवै । ऊभै सांस भरै औ रोवै ॥
 तब काहुं जो लखा ते कहा । बाहुक तू किहि कै दुख बहा ॥
 किहिं कारन निसि भीखै गवांसि । को तोरै जिहिं विनो सुनावसि ॥
 बाहुक कहा मीत सुन वाता । अहा एक मूरख अग्याता ॥
 ताके घर नारी उजियारी । जा समान जग विरलै नारी ॥
 भूख पियास कंत लगि भरै । संग छाड़ि पग अनत न धरै ॥
 सो नारी मूरख तजि गयऊ । तज तिहिं आप सवारथि भयऊ ॥
 वह अवला ज्यो ज्यो विललावै । विसंभर होउ सुरत जब आवै ॥
 जब वह बात सुरत हीं करी । न धीज होउ मन धीज न धरौ ॥

दोहा—देखि सचाई प्रीति कै, विरह अनल हियै माहिं ।

वन दौ लौ निस दिन वरै, धुआं प्रकासित नाहिं ॥३०१॥

दोहा—३००-१—नींद (कां०) । २—उसै (कां०) । ३—वसे (कां०) । ४—इमि (कां०) । ५—सरूप (कां०) । ६—किं (कां०) । ७—इहि (कां०) । ८—वसा (कां०) । ९—तू (कां०) । *‘कां०’ में दोहे का उत्तर पद यों है :—जहां वसे मोहि निकट, भीमि लै बिछर विललाव ॥

दोहा—३०१—१—तब (कां०) । २—अदभै (स०) । ३—हीयक (कां०) । ४—जिय (कां०), जिन (स०) । ५—चहि (कां०) । ६—जिन (स०) । ७—और न (कां०) । ८—विन (स०) । ९—आयुस (स०) । १०—मो (कां०) । ११—ताकी (कां०) । १२—कथा (कां०) । १३—जिये (कां०) । १४—कथा (स०) । १५—जीय (कां०) । १६—उर (कां०) । १७—मंभार (कां०) । १८—निकास कवा (कां०) ।

भीमसेन कुंडन पुर सुना । नल वनवास वसा सिर धुना ॥
 रानी सुनत अधिक कुंम्हिलानी । अबला धीज छांड़ि विल्लानी ॥
 रोदन करै हाथ^१ हिय हनै । माया मोह वचन मुख भनै ॥
 अजगुत^२ भा धी गति यह जानी^३ । कत छीनी^४ वन वन भरमानी^५ ॥
 जिहिं पग कुसुम कांटे^६ ह्वै^७ अरै । धरती^८ पांव^९ सो^{१०} कैसै^{११} वरै ॥
 सूरज सौंह जो आंख न खोली । सो मधिआन्ह धूप किमि डोली ॥
 छिन विन नीर नीर ज्यो^{१२} ढरै । सो क्यों भूख प्यास दुख भरै ॥
 दिन^{१३} चीकै मंदिर उजियारी । क्यों काटै निसि^{१४} वन अंधियारी ॥
 गाढ़^{१५} काल कल कल कल सोई । किमि कल^{१६} परै^{१७} करीरै भोई ॥

दोहा—पौन लगत भुइं पग वरत, लचक लांक मुचि जाइ ।

सो धौं क्यों मारग चलै, रुदन करै विललाइ ॥३०२॥*

भक्ष वक थक उपाइ पर आए । राजा सेवक लोग बुलाए ॥
 आयसु कीन्ह वचन ठहिरावा । जुरी सभा महं बोल सुनावा ॥
 जो कोऊ नल कै सुधि लावै^१ । वारी कर संदेस पहुँचावै ॥
 एक सहंस तेहि गाय^२ दिवाऊं । औ इक बडा नगर अम गाँऊं ॥
 औ पुनि बहुत बहुत गुन मानूं । ताहि भला सेवक करि जानूं ॥
 सुनि सो बात सब कहं भा चाऊ । देस देस कहं चले हुंढाऊ ॥
 वाम्हन भाट बहुत उठि धाए । लानच लागि सबै ललचाए ॥
 खोजत चले लोग चहुं ओरा । ढूढहिं पुरुष नारि कर जोरा ॥
 दोइ कै ढूढै होइ न मेला । जिहि^३ ढूढै सो आप अकेला ॥

दोहा—सुधि^४ न मिलै भरमत फिरै, वढै भरम हिय सीध^५ ।

दोइ ढूढै पावै कहां, वह सो एकहि^६ औध ॥३०३॥

दोहा—३०२—१—हाथन (स०), हाथै (कां०) । २—उजगत (स०), उचकत (कां०), ३—जाई (कां०), जानै (स०) । ४—छूटै (कां०) । ५—भरमाई (कां०), भरमाए (स०) । ६—काटि (कां०), कोस (स०) । ७—गुन (स०) । ८—धरा (स०) । ९—धरा (स०) । १०—धर (स०) । ११—क्यों (स०) । १२—विललाइ ह्वै (कां०) । १३—विन (स०) । १४—निज (कां०) । १५—गडै (कां०), गढ़न (स०) । १६—गुल (स०), कलपे (कां०), १७—वरी (स०), रे (कां०) । * 'कां०' में इस दोहे का द्वितीय चरण यों है:—'चलै विललाइ विलाइ' । और चतुर्थ चरण यों है:—'चक लचक लांक मुच जाइ' ।

दोहा—३०३—१—लै आवै (स०), ल्यावै (कां०) । २—रुक (स०) । ३—जिन (स०) । ४—सु वोह (कां०) । ५—पौध (स०), सुद्ध (कां०) । ६—एकता (कां०, स०) ।

बोला मोहि चीन्हमि किन वारी । वारी सेवा कीन्ह^१ तुम्हारी ॥
 वाम्हन मोर नाउं सहिदेऊ । निसि दिन करत हुता तुम सेऊ ॥
 मोहि अरु तुम्हरे भात मितार्ई । वारें तें अवर्त्तो चनि आई ॥
 नाउं मुनत पावा जब^२ भेऊ । तव अवना चीन्हा सहिदेऊ ॥
 बोली विप्र कुमर प्योसारा^३ । श्री बालक पहुंचै ननिहारा ॥
 मात पिता भाना सब भले । कै दिन^४ तुम्हें^५ तहां सों चले ॥
 किहि संजोग चंदेरी आए । अपने काज कि राज पठाए ॥
 यह जो अदिन^६ आवा मो माहीं । सो कुंडनपुर सुना कि नाहीं ॥
 कहि न जाइ मो पर जम बीती । रिपु पुहकर अति करी^७ अनीती ॥

दोहा—हीं अति सुग्त न कंत गति^१, नियरै तऊ सो दूर ।
 दिस्टि न आवै हिय वसै, मरी^२ विसूर^३ विसूर ॥३०६॥

विप्र कहा सब छेम भनाई । नीकें बाल मात पियु भाई ॥
 तिन्हें^४ कुसर पै तन^५ जिय नाही । तन कहं छाड़ि वसा तोहि माहीं ॥
 जा दिन सों जानी गति तोरी । ना दिन तें^६ तन^७ सो^८ जिय तोरी ॥
 सब तन कस्ट^९ एक गति भयऊ । मुख^{१०} सवाद सब कर उठि गयऊ ॥
 दुख सुख अंतर^{११} अंतह^{१२} आवा । मन भूखे^{१३} तोहि माहि समावा ॥
 जिउ^{१४} तन होइ तो अंतर^{१५} होई । जिउ^{१६} तो लगि तन कं सुधि खोई ॥
 तोहि हेरन लगि बहुत हिराने । धौं कहं कहं मग भरम भुनाने ॥
 वन वसती अस ठौर न कोई । जौन ठावं तुव खोज न होई ॥
 हींहूं तोहि खोजन लगि आवा । मै भागहिं नियरै तोहि पावा ॥

दोहा—प्रथम भूल वन वन भरम, मै हूं पजउ^१ दुख दीन ।
 अब पायो जब जीउ^२ दे, नगर खोज मै कीन ॥३०७॥

दोहा—३०६-१—कठिन (स०) । २—सब (स०) । ३—पिस सारा (म०) ।
 ४—कुंडनपुर (कां०) । ५—तुम (कां०) । ६—दिन (स०) । ७—कीन (कां०) ।
 ८—कित (कां०) । ९—मुमिरी (स०) । १०—मरी (स०) ।

दोहा—३०७-१—नहहं (स०) । २—तिनह (स०) । ३—सों (कां०) । ४—तिन
 (स०) । ५—सै (स०) । ६—कुटुम (स०) । ७—सेज (कां०) । ८—तन अंतर
 (कां०) । ९—नहिं (कां०) । १०—भोगी (कां०) । ११—मन (कां०) । १२—मन
 (कां०) । १३—जीय (कां०) ।

सुनि द्विज वचन दमावत रोई । ईस सीस जनु रलित विछोई ॥
 देखि रुदन संग हुती जो धाई । सोऊ रुदन रूप होइ आई ॥
 धाई जहं मंदिर पटरानी । तागों^१ धाइ मो कथा बखानी ॥
 रानी परदेसी इक कोई । ताकहं चीन्ह दमावत रोई ॥
 निरखत^२ नैन मेघ जुरि आए । विरह^३ मिंधु हिय सों जल लाए ॥
 वदन चंद्र पटघट गह लियो । तम निस ज्यों दिन हिय इमि^४ भयो ॥
 बरखै लाग भकोर भकोरी । अंचर भीज चुग्रा होइ ओरी ॥
 सो ओरी उर परत विलाई । जान न जाइ कहां^५ जल जाई ॥
 कै जनु विरह वेह^६ उर मांही । जल प्रवाह चलि तहां समाहीं ॥

दोहा—नैन मेघ जल मलित ज्यों, उर सों श्रीर न जाइ ।

तपत तवा की बूंद ज्यों, परतहिं परत^७ विलाइ ॥३०८॥

रानी उठि आई ततकाला । भांकी हूँ भांकी सो वाला ॥
 देखी सांच दमावत खरी । रोत्र^१ कोटि^२ कोटि^३ दुख भरी ॥
 धाइ मरम जस नवन सुनावा । वही रूप नैनन में आवा ॥
 पलटि धाइ पुनि धाइ पठाई । बूझ आव कासो^४ बतराई ॥
 उलटि^५ धाइ जैसे चक डोरी । धाय जाइ बूझी वह गोरी ॥
 को यह हितू मिला तोहि वारी । जेहि मिलि आंसु सलित तैं डारी ॥
 सो धन सकुचि लजाइ न बोली । विप्र मरम पोथी तव^६ खोली ॥
 आपन नाउ^७ कहा सहिदेऊ^८ । श्री आपुन आव कर भेऊ ॥
 धन पति तितु कर नाउ^९ बतावा । जुग्रा मरम पुनि बरनि सुनावा ॥

दोहा—सुख संपति श्री दुख विपति, दोऊ दीन बताइ^{१०} ।

सुन रानी सों निज कथा, धाइ कही पुनि आई^{११} ॥३०९॥

दोहा—३०८-१—तिन सों (स०) । २—चीन्हैत (का०) । ३—तम (का०) ।
 ४—खाल (का०) । ५—पंथ (का०) । ६—चल (स०) । ७—पर (का०) ।

दोहा—३०९-१—कूट (स०) । २—कूट (स०) । ३—का सो नर (स०) ।
 ४—तुरत (का०) । ५—उर (स०) । ६—सिव देऊ (स०) । ७—सुनाइ (स०) ।
 ८—जाइ (का०) ।

रानी सुनत बहुत पछिताई । बोलि दमावत गरें लगाई ॥
 तू मोरी बहिनी कै वारी । प्रानहुं तै मोहिं अधिक पियारी ॥*
 पराना^१ मै न तोहि पहिचाना । अब जब मरम लहा तव जाना ॥
 भेद लिएं विनु जाइ न लहा । घर ही में अंतर ह्वै रहा ॥
 तू अरु मो महं भेद न कोई । जोई तू हींहुं निज सोई ॥
 देखहु परालवध संजोगू । मिलन मांभ ह्वै रहा वियोगू ॥
 हीं कब्रहूं कछु कछु पहिचानी । पुनि भरमाइ धोख जिउ आनी ॥
 का जानीं तू होसि कि नाहीं । दुविधा आइ^२ परै मन माही ॥
 सो दुविधा अंतर होइ जाई । लै^३ मन अनन देइ अटकाई^४ ॥

दोहा—यही कुसर जो भूल कहं, अबही^५ भयो लखाव ।
 पुनि पाछे मोहिं जनम भर, हिये रहत पछताव ॥३१०॥

तिहिं पुनि जब मीसी कहं जाना । नाइ सीस पाइन्ह तर आना ॥
 अति अधीनताई मुख आनी । ता प्रभुता ह्वै दीन बखानी ॥
 ही अजान तुम जान सुजाना । तुम जाना मै तुम्हें न जाना ॥
 मो अजान कहं तुम पति दीन्ही । मेदि भरम मानस गति कीन्ही ॥
 मन रुचि खान पान पहुंचावा । तऊ न सेवा मै मन लावा ॥
 तुम^६ मोहि कीन्ह राज गृह वासी । हीं तुम सी^७ नित रही उदासी ॥
 तुम गुन गिनती^८ गिनै न जाई । मो निरगुनता ताहि सवाई ॥
 मकु यह गुन अदीठ^९ मो माही । जग मोसों निरगुन कोउ नाहीं ॥
 ता गुन रीभ रीभ मोहि दीजै । विनी जो करीं मान सोइ लीजै ॥

दोहा—ह्वै दयाल^{१०} मोहि वांह गहि, थान^{११} देहु पहुंचाइ ।
 मेदि जनम दुख सुख रहीं, तुम जैजै^{१२} मिलि जाइ ॥३११॥

दोहा—३१०—* 'कां०' प्रति में यह दोहा० ३०८ की अंतिम चौपाई है । १—परानान (स०), प्रानां (कां०) । २—आनि (कां०) । ३—पर (कां०) । ४—वहकाई (स०) । ५—अवहूं (स०), अजहूं (कां०) ।

दोहा—३११—१—तय (स०) । २—मै (कां०) । ३—कीनां (कां०) । ४—ग्रीगुन (कां०) । ५—दया (स०) । ६—तहां (कां०) । ७—जीजी (कां०) । ८—बलि (कां०) ।

रानी विनौ मानि पुनि लीन्हा । नीतम राज साज कै दीन्हा ॥
 रथ आपन सो साजि दिवावा । संग सेवक दै कीन्ह चलावा ॥
 चली दमावत नहर आई । भीमसेन घर वाजि बघाई ॥
 मात पिता भ्राता सब मिले । चंद देखि कोई होइ खिले ॥
 राजा कीन्ह दान अधिकारी । घर घर तँ न्यौछावर आई ॥
 मोती भर भर थार लुटाए । बांभन भाट गुनी पहिराए ॥
 पुनि पांडे सहिदेउ बुलावा । अति ऊंचा वागा पहिरावा ॥
 सहस गाइ इक गाँउ दिवावा । अति बड़ बहुत दरब उपजावा ॥
 कुंडन पुर कौतूहल भयऊ । दम दुख चांद उवै मिटि गयऊ ॥

दोहा—देखि सो घन जब कुटुंब कै, तन मैं आयो जीउ ।
 ता तन तें सो निकसि कै, ढूँढत डोलत पीउ ॥३१२॥

जा कहं प्रीत पीउ सों होई । ताहि कुटुंब सों काम न कोई ॥
 रथ तें उतरि पवरि जब आई । नल मिलाप गृह दीन दिखाई ॥
 देखत खिन सीं ठां वह नारी । उठी वियोग अगिन उर भारी ॥
 तिहिं मिलि रोइ कुटुंब दुख खोवै । वह तिन्ह मिलि बिछुरै कहं रोवै ॥
 दिन मिलि मिलि सखियन सों रोई । निसि नल कै दुख सों मिलि सोई ॥*
 ब्रह्मा कै दिन ज्यो निसि बाढ़ी । घटै न विरह उमंग जिउ गाढी ॥†
 भर भर अंकम देइ मरोरा । सहै न निबल गात भक भोरा ॥
 ताक भुईं पलका कै पाटी । सब निसि दुहीं ओर तें काटी ॥
 जो पुनि कहाँ परान क्यों रहै । पिउ मै है तिय तन महं न है ॥

दो०—जो जिउ तन सौ अलग ह्वै, पीतम माहिं समाइ ।
 तहां काल को गम नहीं, तनहिं भांक फिर जाइ ॥३१३॥

दोहा—३१२-१—ढूँढन (का०) । २—गये (का०) ।

दोहा—३१३-१—समीप (स०) । २—संयोग (का०) । ३—अर्थ (स०) । *‘स०’ प्रति मे इसी की जोड़ की दूसरी चौपाई है जिसमें ‘सखियन’ (प्रथम पद मे) और ‘सै’ (द्वितीय पद मे) शब्द विशेष हैं । प्रस्तुत संपादन मे गृहीत की गई चौपाई में इनके स्थानों में क्रमशः ‘लोगन’ और ‘सों’ शब्द हैं । परंतु ‘लोगन’ के लिये ‘सखियन’ शब्द ग्रहण कर लिया गया है । †—लोगन (का०), लोगहं (स०) । ‡ ‘कां’ प्रति में उत्तर पद यो है :—वैरी विरह गहै कै गाढी । ५—याकों (स०) । ६—सरबस (का०) । ७—सौं (का०) । ८—अहै (का०) । ९—महं (स०) ।

ससि सब रैन नखत सब खोवै । जिउ पिउ के दुख सान न सोवै ॥
 भौर^२ धाइ जासों हित^३ अहा । तासों परमारथ निज^४ कहा ॥
 जिन जानी वारी इह आई । वारी दूर वार दरसाई ॥
 तन देखो तन मै हीं नाहीं । हीं तन अलग रहीं पिउ माहीं ॥
 मै तन सों ताही दिन तोरी । जा दिन पीति पीउ सों जोरी ॥
 जहां सो पोउ तहां इह जीऊ । पिउ महं जीउ जीउ मै पीऊ ॥
 जिउ पिउ पास देह इह मूनी । की ली टिकै सो प्रान विहूनी ॥
 पै मोरै यासों नहि माया । रहु कै अवहिं जाहु इह काया ॥
 या तन विन तुमहीं दुख पावहु । मो जिउ अछत मुए ठहरावहु ॥

दोहा—यात तुम सुख^१ कहं कही, तन^२ विनसै^३ दुख लेहु ।
 अवही^४ किन या तन^५ अछत, पीउ^६ खोज जिउ देहु ॥३१४॥

घाइ सो धाइ माइ पहं रोई । रानी मै तन के सुधि खोई ॥
 देखि दमावत के संतापा । विसर^१ गयी मोहि आपुन आपा ॥
 विन जिउ फिरें जीउ तन नाहीं । जीउ वसै नित^२ पीतम माही ॥
 तोर रही तन सौं निज नाता । सुरत न थी^३ तन सीर कि ताता ॥
 जिउ तन त्यागि अलग होइ रहा । तन क्यी रहै सो जाइ न कहा ॥
 पिउ मन^४ मिचन^५ आस तन डोलै । आसहिं^६ प्रान भये तन बोलै^७ ॥
 आस छुटै छिन मै मर जाई । तन निरास कीली ठहिराई ॥
 देह गये पाछै पछितावा । श्रीसर टरा सो हाथ न आवा ॥
 ता पिउ खोज विलंब न कीजै । सब विसराइ ताहि जिउ दीजै ॥

दो०—जो खोवा तो खोइ पुनि, बैठ न रहो गवांइ ।
 खोज करहु खोजै मिलै, इनहिं^१ देस मंडराइ ॥३१५॥

दोहा—३१४-१-खिन (का०) । २-पीर (का०) । ३-चित्त (स०) । ४-दुख (स०) । ५-सिख (का०) । ६-कि (का०) । ७-तन तैसै (का०) । ८-बातन (का०) । ९-कंत (का०) ।

दो०—३१५-१-भूलि (का०) । २-इहि (का०) । ३-दहुं (स०), वोह (का०) । ४-जनु (का०) । ५-दास (स०) । ६-ऐसै (का०) । ७-बोलै (का०) । ८-इहै (का०) ।

विप्र नांडं वर नाउं कहावा । वृभक्त^१ अवध नगर महं आवा ॥
 गली गली घर घर दर डोलै । पेमी पेम वचन मुख बोलै ॥
 उत्तर आतुर उत्तर न पावै । उत्तर आस लियै भरमावै ॥
 फिरत फिरत निकसा वहै^२ तहां । तन मन जरै जरै सब जहां^३ ॥
 सब कहं हियै पेम दुख वसा । नल पुनि तहां विरह अहि^४ डसा ॥
 सुन ते वचन वंद विख^५ छोरा । उठ उमंग को हियै^६ हिलोरा ॥
 खाइ पछार गिरा विसंभारा । तन न जीउ जिउ खेल सिधारा ॥
 निकस चला पै जान न पावा । पेम फाँद उरभा फिर आवा ॥
 चेत उठा जब भई संभारा । आँसू तिन^७ निकसै रह^८ धारा ॥

दोहा—लोट पलटं भुईं भार मनु^९, रोइ सो छिरक वनाइ ।

मीत सँदेसी पथिक कहं, वैठक दीन्ह बुलाइ ॥३१८॥

पेम वचन उत्तर पुनि बोला । प्रीत गरंथ पत्र^१ कहं^२ खोला ॥
 सुनु हो मीत नारि पुनि सोई । साँच प्रीति पिउ सों जिहिं होई ॥
 जद्यपि पिउ सेवा दुख पावै । तद्यपि अधिक अधिक जिउ^३ लावै ॥
 पिउ कह सबै भलै कै जानै । वुरे करम अपने पर आनै ॥
 कंत जो करै सो हित कै करई । अनहित कै पिउ मनहिं न घरई ॥
 भरम दिस्टि तिहिं वुरै दिखावै । नातर पिउ सब भलै बतावै ॥
 ताही महं सब हुती भलाई । जो कछु पीतम कै मन आई ॥
 धन सुकुवार वडै दुख माही । देख न सका गयी तजि ताही ॥
 पै इहिं जग विरली ते नारी । जे दुख पाइ न होहिं दुखारी ॥

दोहा—पतिवरता तिय ते अहे^४, जिन्है रोस रिस नाहिं ।

पिउ रिसहू^५ रसकै गिनै^६, रसी रहें रिस माहिं ॥३१९॥

दोहा—३१८—१—पूछत (कां०) । २—ह्वै (कां०) । ३—तहां (कां०) । ४—
 यह (स०) । ५—मुख (स०) । ६—लहर (कां०) । ७—बोह (कां०) । ८—कहि
 (कां०), राह (स०) । ९—पलक (कां०) । १०—जिन (कां०) ।

दोहा—३१९—१—विप्र (स०) । २—पुनि (स०) । ३—मन (कां०) । ४—
 कहीं (कां०) । ५—विन (कां०) । ६—कहै (कां०) ।

विप्र बचन उत्तर जब पावा । लै तेहिं उकस अगोटै आवा ॥
 कहिस मीत आपन कहु नाऊं । श्री तू को किहि गुन^१ इहि गाऊं ॥
 कहा विप्र का नाऊं वताऊं । ही ननाऊं कर^२ बाहुक नाऊं ॥
 राजा कै सेवा महं रही । टहल जो मोहि सीपी^३ सो करौ ॥
 तुरै जहां लगि राज दुवारा । सब कहं सुधि संभार^४ मो सारा ॥
 तुरै भेद नीकै मै जानौ । राम रोम लच्छन पहिचानौ ॥
 श्री जैतक^५ रजवार^६ चितेरे । सिखहि^७ चित्र चेटिया^८ सब मेरे ॥
 ये तीनों सेवा मै सारु । श्री राजा कर बहुत पियारु ॥*
 श्री^९ सारुं पुनि राज रसोई । रस अनवन^{१०} बहुत रस होई ॥

दोहा—विप्र विदेसी लहि मरम, चला देस मन लाइ ।
 संदेसी उत्तर मिलै, कत विदेस ठहिराइ ॥३२०॥

काटि पंथ कुंडनपुर आवा । राजा कहं निज मरम सुनावा ॥
 आयसु भा वारी^१ सीं कहै । मरम वात मरमो पै लहै ॥
 चला विप्र गा राज दुवारा । वारी आइ ठाडि भइ वारा ॥
 कहिस कि अवध नगर तिहिं ठाऊं । पुरुख एक बाहुक तेहि नाऊं ॥
 राज द्वार सेवा महं रहै । राजहिं केर मया पुनि अहै ॥
 साल्होत्तर गुन गुनी कहावै । श्री चितेर भल चित्र वनावै ॥
 श्री जो संवारै राज रसोई । रस अनवन सवाद बहु होई ॥†
 सो ए बचन सुनत खिन रोवा । रोइ पछार खाइ भुइ^२ सोवा ॥
 जब जागा तब मोहिं बुलायस । कै अति हेट निकट बैठायस ॥

दोहा—कहसि लगौहै बचन पुनि^३, अति हित प्रीति जनाइ ।
 ते अब सब^४ तुम सौ कही, सुनौ खवन मन लाइ ॥३२१॥

दोहा—३२०—१—किन (स०) । २—पै (का०) । ३—सो वने (स०) ।
 ४—सवार (स०) । ५—तेकर (का०) । ६—रजवाइ (का०) । ७—सकहिं (स०) ।
 ८—चितिया (स०), चटीया (का०) । * 'का०' प्रति मे यह अंतिम चौपाई है । ९—
 मो (स०) । १०—आनी (स०) ।

दोहा—३२१—१—रानी (का०) । † 'का०' मे उत्तर पद यों है:—'सवन
 सिरै स्वारथ पुनि सो होई ।' २—पुनि (का०) । ३—तिनि (का०) । ४—हौं (का०) ।

कहिस विप्र अवला पुनि सोई । जो पिउ सैं सांची जिउ^१ होई ॥
जद्यपि कंत ताहि दुख देई । तद्यपि दुखी मानि सुख लेई ॥
इह विचारि अपनै मन^२ धरै । कंत जो करै सो दुरी न करै ॥
औ तिहिं पुरुख जो नारि विछोई । वन निरास जिउ^३ आस न कोई ॥
ताहू पुरुख दोख कछु नाही । देख न सका नारि दुख माही ॥
ता दुख देखि दुखित अति भयऊ । तिहिं दुख दुखी होइ उठि गयऊ ॥
विप्र वचन अवला सब सुनी । सुनि सुनि समुझि रोइ मन गुनी ॥
वोली विप्र वरन कह वाका । किहिं अनुहार रूप की^४ ताका ॥
वांभन कहा वरन^५ अति कारा । जानहु पेम अंगिन कर जारा ॥

दोहा—निपट अरूप अति अवरन, वरन रूप कछु नाहिं ।

वह अस वहै न और कोऊ, तिहिं सर तिहु पुर माहिं ॥३२२॥

धन पिउ पता और सब पावा । मुनि रवि राहु भरम जिउ आवा ॥
रुदन करै चिंता मन कियऊ^१ । विधि किहिं जोग कमल अलि भयऊ ॥
किहिं कारन केसर कसतूरी । नारंग सुरंग^२ स्याम खरहरी^३ ॥
जो रे कहीं प्रीतम वह नाही । पै^४ पिउ कै सब गुन तिहि माहीं ॥
चित्र करा जो कहा पा पीऊ । वहै चित्र लिखि डारै जीऊ ॥
इहिं गुन गुनी और नहिं कोई । एकै पीउ पियारा सोई ॥
औ पुनि^५ जग भोजन कर साजा । और न वहै एक सो राजा ॥
वहै तुरै गति जाननहारा । रोम रोम रमता पिउ प्यारा ॥
जामै ए सब गुन वह सोई । निसंदेह पिउ और न कोई ॥

दोहा—मेरी वाकी तुक मिलै, और कोउ वह नाहिं ।

मैं जाना वह निज वही, जो मेरे हिय माहिं ॥३२३॥

दोहा—३२२—१—मन (कां०) । २—जिय (कां०) । ३—तहां (कां०) ।
४—वोह (कां०) । ५—रूप (कां०) ।

दोहा—३२३—१—गयेऊ (स०) । २—कुरंग (कां०) । ३—घुरहरी (कां०) ।
४—तो (स०) । ५—सब (स०) ।

कह ये वचन आप सों वारी । रुदन करत मां पास सिधारी ॥
 मा वांभन पिउ कै सुधि आनी । कछु कछु मरम वात में जानी ॥
 पिउ मिलाप उद्यम अब कीजै । नातर इहि आपन तन लीजै ॥
 तन^१ जिउ जीउ जीउ सो पीऊ । ता पिउ विन न रहै छिन जीऊ ॥
 जीउ^२ पीउ सों क्यों होइ न्यारा । सब कहं आपुन जीउ पियारा ॥
 जिउ अपने जिउ महं जिउ दीन्हां । तन सों चित्त^३ काढ पुनि^४ लीन्हां ॥
 जिउ^५ तिहि^६ तन तनिकौ^७ न निहारै । तन^८ अब नहिं कोऊ किन जारै ॥
 जो चाहो^९ इहि^{१०} तन महं जीऊ । तो जिउ^{११} को जिउ आनहु^{१२} पीऊ ॥
 जीउ छांडि^{१३} तन^{१४} कै कछु नाही । तन विन जिउ विनसै छिन माहीं ॥

दोहा—जिउ अपने पिउ सों मिला, रहू कै विनसहु^{१५} देह ।

तिहिं कारन तुमसों कहां, तुमहिं^{१६} देह संग^{१७} नेह^{१८} ॥३२४॥

कहि मां सों पुनि कहिस^१ उपाऊ । वैठी^२ धन पोखा वर नाऊं ॥
 पुनि पांडे सहिदेउ बुलावा । पालागन, तिहि कहि वैठावा ॥*
 औ यह^३ कहा कि जो पिउ पाउं । जो मांगसि सो तोहि दिवाऊं ॥
 बहुत^४ बहुत पुनि^५ कीन्ह निहोरा । अधिक वीर गुन मानहुं तोरा ॥⊙
 हितू जानि हौं विनती करी । होइ^६ अवीन सीस भुइं धरौं ॥
 पिउ कै सुधि वर नाउं लिआवा । औष नगर तहं^७ पीउ बतावा ॥
 तू चलि^८ अबध पंथ इहिं वारा । मन सेवक लाऊं तोहि लारा ॥
 जिहिं दिन अबध आप पहुंचावसि । पुहुमिपती सों^९ जाइ सुनावसि ॥
 नल हिरान सो हाथ न आवा । सो^{१०} धन वरै वर यह ठहिरावा ॥

दोहा—सुदिन महरत आज है, जो^{११} कुंडन पुर जाइ ।

ताहि दमंती वर करै, इहि राखी ठहराइ ॥३२५॥

दोहा—३२४—१—विन (कां०) । २—ता (कां०) । ३—निपट (कां०) ।
 ४—जिय (कां०) । ५—जीयत (कां०), ज्यों (स०) । ६—न (कां०), तिन (स०) ।
 ७—नीको (कां०), तिन कौ (स०) । ८—तन ही (कां०), तिन्ह (स०) । ९—आनां
 (कां०) । १०—जनों (कां०) । ११—आपै (कां०) । १२—करि सो (कां०) । १३—
 जाव (कां०) । १४—तकै (कां०) । १५—निकसो (कां०) । १६—जो तुम (कां०) ।
 १७—सु (कां०) । १८—येह (कां०) ।

दोहा—३२५—१—कीन्ह (स०) । २—येही (कां०) । * 'कां०' प्रति में यह तीसरी
 चौपाई है । ३—पुनि (कां०) । ४—निपट (स०) । ५—अति (स०) । ६—'कां' प्रति
 में उत्तर पद यो है—'तो विन और हितू नहिं मोरा' । ६—मै (स०) । ७—मह
 (कां०) । ८—कह (स०) । ९—कह (स०) । १०—ता (कां०) । ११—सो (स०) ।

जो नल तिन^१ नरेस पहं होई । आइ रहै संदेह न कोई ॥
 तुरै मरम नीकै^२ वह ब्रूभै । जम बल जिहिं तुरंग तस सूभै ॥
 ते^३ तुरंग गाढ़े करि खोजन । जे दिन मांभ चलै गी जोजन ॥
 पीन पाव कै रथ लै आवहिं । निसंदेह^४ दिन महं पहुंचावहिं ॥
 तिहिं कारन विनवाँ तो पाहां । तो उपकार मिलै मकु नाहां ॥
 जो उपकारी^५ होवै वीरा । तासों कही जाइ उर पीरा ॥
 तव^६ तै ही मोहिं तीर लगावा । तोरे नाउं पार मैं पावा ॥
 जैसें मोहिं लावा तै तीरा । तैसें^७ पिउं मिलाव^८ होइ^९ वीरा^{१०} ॥
 जौलीं तन वोलै गुन मानी । आपन हितु भ्रात कै जानी ॥

दोहा—विप्र लगन सी ले चला, लगन अवध कै^{११} लाइ ।

जिन्ह की लगन जहां लगै, पहुंच रहै तहं जाइ ॥३२६॥

चलि सहिदेउ अवध महं आवा । राजा कहं छल वचन^१ मुनावा^२ ॥
 मुनि राजा सो^३ धन अच्यरा । छरा विप्र छर^४ त्वै पुनि छरा ॥
 प्रथम विकाइ रहा तिहिं हाथा । नाउं दमतीं कहं जगनाथा ॥
 अब इहि सुनि पग धरा न धरई । ज्यौं अलि कवल वास अरवरई ॥
 विनु देखै ससि भयो चकोरा । चित कै चख लागै तिहिं ओरा ॥
 तन इहिं गाउं प्राण उहिं^५ गाऊं । मन मोचै तन क्यौ पहुंचाऊं ॥
 तन किहिं भांति परेवा करी । उड़ि^६ चहि सरग टूट उत परीं ॥
 उड़ि न सकत गुटिका^७ कित पाऊं । जो^८ मुख राखि सिद्ध होइ घाऊं ॥
 कछु न बनाव वने अरवरा । खिन ऊपर खिन आंगन खरा ॥

दोहा—राजा अति^१ भरमक भयी, भूठै भरम भुलाइ ।

ज्यौं जग^२ भूठै देह लागि^३, आपुहि रह्यौ^४ हिराइ^५ ॥३२७॥

दोहा—३२६-१—तिहि (कां०) । निसि कइं (म०) । ३—वे (स०) । ४—
 पुनि संदेह (कां०) । ५—परोपकारी (कां०) । ६—वह (कां०) । ७—तोही (स०) ।
 ८—तिहूं (कां०) । ९—लाव (कां०) । १०—मोहि (कां०) । ११—तीरा (कां०) । १२—
 मन (स०) ।

दोहा—३२७-१—भेद (कां०) । २—लपावा (कां०) । ३—वह (स०) ।
 ४—जन छर (कां०) । ५—त्रहं (म०) । ६—पै (कां०) । ७—ऊंडवा (कां०) । ८—
 सो (कां०) । ९—मुनि (स०) । १०—सत्र (स०) । ११—सौ (कां०) । १२—दियो
 (कां०) ।

पुनि बाहुक तेहि बेगि बुलावा । आयगु भा ततगन वह^१ आवा ॥
 तें जो कहा ही हय पहिचानी । साल्होत्तर विद्या निज जानी ।
 श्री श्रीरी^२ जस कुछ गुन बरी । समी परै^३ परगट तव^४ करी ॥
 सो वह समी आज नियगवा^५ । आज^६ चहे कुंडनपुर जावा ॥
 भीमसेन राजा कै बारी । नाउ^७ दमंती जग उजियारी ॥
 तंहूं सुना होइ इहि^८ नाऊं । प्रकट नाउं तिहि^९ ठांवंहि^{१०} ठाऊं ॥
 सो धन वर चाहै अत्र^{११} वरा । ताकर आज^{१२} महरत घरा ॥
 आज^{१३} जो उत आपा पहुंचावै । सोई तसि बदनी सो^{१४} पावै ॥
 कर तोसों जो होसि उपाऊं । इहि ननि तुरै वीन लै आज^{१५} ॥

दोहा—आज तहां पहुंचै वने, श्री न होइ पुनि सांभ ।
 तेही^{१६} आनहु^{१७} जे चलै, सो जोजन दिन मांभ ॥३२८॥

सुनि सो बात बाहुक हकवका । मन भा^१ नगल तुरै तन थका ॥
 मन खिन नभ^२ खिन जाइ पतारा । पिन महं^३ भवै^४ ज्यों चाऊ कुम्हारा ॥
 तन खिन^५ तपन^६ ताप उपजावै । खिन हूँ सिखिल मोत बहु^७ आवै ॥
 जव^८ थक^९ रहा सोच. जिउ^{१०} आवा । मै अत्रना कहं बहुत दुपावा^{११} ॥
 इन जाना^{१२} उन मोसों तोरी । प्रीत चीर ज्यो^{१३} चीर पिछोरी^{१४} ॥
 सुरत^{१५} सूत्र^{१६} सो मोसों तोरा । मोसों तोर श्रीर सो जोरा ॥
 पुनि समुझा कछू^{१७} समझ मो नाही । मै असमझ समझी मन माहीं ॥
 तिहिं कवहूं अस^{१८} समझ न होई । मो मिलाप कारन इह^{१९} कोई ॥
 यो^{२०} चाहै मो ढिग^{२१} मकु आवै । तिहिं कारन कारन उपजावै ॥

दोहा—वह मोरी सुधि में सदा, जिउ वाको मो माहिं ।
 मैहि भूल अतर गिना, ताकै^{२२} अंतर नाहिं ॥३२९॥

दोहा—३२८-१—जव (कां०) । २—कहत (स०) । ३—होइ (कां०) । ४—ते (स०) । ५—इहि आवा (कां०) । ६—कालिह (कां०) । ७—पुनि (कां०) । ८—जिहि (कां०) । ९—ठां तूही (कां०) । १०—जन (स०) । ११—काल (स०) । १२—कालिहि (स०) । १३—तिय (स०) । १४—तेह ये (कां०) । १५—जे छिनही (कां०) ।

दोहा—३२९-१—जो (कां०) । २—भुंइ (कां०) । ३—भा (कां०) । ४—भुइं (स०), वाजनु (कां०) । ५—कै (स०) । ६—तीन (कां०) । ७—मै (कां०) । ८—जग (स०), जकत (कां०) । ९—कंकरै (कां०) । १०—मै (कां०) । ११—दिखावा (स०), संतावा (कां०) । १२—बूझा (स०) । १३—तन (कां०) । १४—विछोरी (स०), वछोरी (कां०) । १५—सुर (कां०) । १६—सो (स०) । १७—न (कां०) । १८—यह (स०) । १९—है (स०) । २०—मोहि (कां०) । २१—तन (कां०) । २२—वहं कै (स०) ।

ततखिन भ्रम निवारि पुनि बोला । रसना^१ बंध^२ बंधा^३ सो खोला ॥
 महाराज ते हय^४ चुनि आनीं । जे सी जोजन चलत जानी ॥†
 जिहि तुरंग जेतक बल होई । मो सों भेद छिपा नहिं कोई ॥
 ततखिन दिस्टि परत पहिचानीं । गुन श्रीगुन निरखत ही जानीं ।*
 उठि पुनि सकल^५ तुरंग जा^६ हेरै । कर सवकै मुख ऊपर फेरै ॥⊙
 द्वै तुरंग ता महं चुनि^७ आए । खोरि^८ आनि राजहिं दिखराए ॥
 राजा तुरै देखि तन हीनै । कहा कहाँ ये हय तै वीनै ॥
 वैस वड़ी काया अति छोटै । श्री बलहीन नाहिं पुनि मोटै ॥
 ये कव चलै चार सी कोसा । इन पर^९ भूल न करहु भरोसा ॥

दोहा—आयसु भा^{१०} दोइ चपल हय, ताजे तरुन सतेज ।
 और आन रथ सों^{११} जरै^{१२}, चलै^{१३} करत महंमेज ॥३३०॥

चलत नेक^१ मग पग डगमगी । अकड़^२ अकड़^३ भुइं लागन लगी ॥
 चंचल निपट अचल होइ गिरे । नेक^४ सास पर जानहुं मरे ॥
 मुंह के बल पुनि भुइं पर आए । गिरे सो बहुरि उठे न उठाए ॥†
 तव बाहुक राजा सों कहा । महाराज मे तव ही लहा ॥
 ये तुरंग सुकुमार^५ खिलीना । चंचल राजकुमार रिभीना ॥
 फांद कूद कौतुक दिखरावहिं । लांबी दीर कहा पहुंचावहिं ॥
 तिनहिं^६ तुरै^७ महं^८ औरें कला । जे सी सी जोजन कै चला ॥
 बहु^९ गुन चंचलता पर नाही । और रोम परख तिन^{१०} माही ॥
 आयसु भा ते तुरे मंगाए । बाहुक परख संग जे लाए ॥

दोहा—पुनि राजा तासों कहा, कहु^{११} सो मरम मो पाहिं ।
 जिहि गुन सी जोजन चलै, कौन^{१२} कला इन माहिं ॥३३१॥

दोहा—३३०—१—भूप (कां०) । २—चितबंध (कां०) । ३—बंध (स०) ।
 ४—ही (स०) । † 'कां०' में उत्तर पद यों है :—'हय गति रुंम रुंम पहिचानू ।'
 *'कां' में उत्तर पद इस प्रकार है :—'जे जोजन सी चलै सु जानू' । ५—जे (कां०) ।
 ६—सव (कां०) । ⊙'कां०' में उत्तर पद ऐसा है :—'दुरंग सो सुरंग सवन परि फेरे ।'
 ७—जो (कां०) । ८—खोर (कां०) । ९—को (कां०) । १०—होइ (कां०) ।
 ११—जोड़ि (कां०) । १२—कै (कां०) । १३—चलवे (कां०) ।

दोहा—३३१—१—वीसक (कां०) । २—अकठ (स०), उपट (कां०) । ३—
 अकठ (स०), उपट (कां०) । ४—निकस (कां०) । † 'कां०' प्रति में यह दूसरी चीपाई
 है । ५—सुखिलार (कां०) । ६—तिन (कां०, स०) । ७—तुरइन (कां०) । ८—मे
 (कां०) । ९—इहि (कां०) । १०—ता (कां०) । ११—कछु (स०) । १२—मुकौण
 (कां०) ।

तिहिं उत्तर वाहुक पुनि बोला । उर' तैं तुरै ग्रंथ निज खोला ॥
 महाराज पूछा तो बताऊं । अब' सो परीछा वरनि सुनाऊं ॥
 जा तन पंदरह भारी जानहु । सां जोजन चलता तिहिं मानहु ॥
 आठ चहुं पाइन कै खूटा' । चार द्विये दोइ दोइ दुहुं घूटा ॥
 दुइ दुहुं लवन एक लिलारा । इनहिं कला मै लखे तुझारा ॥
 राजा अंग' अंग उर धारै । श्री उठि दोनों तुरै निहारै ॥
 ठौर ठौर भारी ते पाई । जे जे वाहुक वरनि सुनाई ॥
 जोर जो आनि कै तेइ तुझारा । वाहुक वाहुक कै बैठारा ॥
 छेरि हांकि हय कीन्ह जो हला । रथ जनु घन गरजत अस चला ॥

दोहा—जो ते' हय हांकि अरुन, रवि कै रथ सों लाइ ।

आठ पहर को रैन दिन, आठ घरी होइ जाइ ॥३३२॥

नल सेवा जो सारथी अहा । निमु' पहुचाइ आइ उत रहा ॥
 वारसुतो तिहि नाउं बताऊं । और एक वह जीवन नाऊं ॥
 तेऊ संग हुते पुनि आए । देख रूप दोऊ वनराए ॥
 वारसुतो जीवन सों कहा । कीन पुखइ इह जाइ न लहा ॥
 कै सो सालोत्तर जिन कहा । कै मातलि इंद्र' पह' अहा ॥
 कै उजैन राजा नल होई । कै सो इंद्र पंचवा' नहिं कोई ॥
 ह्वै सो' सब नल कै उनहारा । पै वह गौर वरन इह कारा ॥
 बोली वतकहाव सब सोई । हँसन चलन महं भेद न कोई ॥
 ज्यों नल मधुर वचन अस' बोला । त्यों इह बोलै बोल' अमोला ॥

दोहा—तिहिं विधिना कै अगम' गति, मकु इह कारन कोइ ।

तिहिं कारन पलटा वरन, जो नल होइ तो होइ ॥३३३॥

दोहा—२३२—१—अर्थ (कां०) । २—सुनि (स०) । ३—छीन (स०) । ४—
 खींता (स०) । ५—रंग (स०) । ६—तिन (कां०) । ७—लै (कां०) ।

दोहा—३३३—१—सत (स०) । २—जो इंद्र (स०, कां) । ३—इहि (कां०) ।
 ४—है (कां०) । ५—निज (कां०) । ६—वानहि (कां०) । ७—तो (स०) । ८—
 रस (स०) । ९—वात (स०) । १०—वौहत (कां०) ।

वाहुक हय हांके गति लिए । श्री तन महं^१ तिन्ह कै मन दिए ॥
जब अरसाहिं थाम चुमकारै । दै मुख जल छीटा^२ पुनि^३ झारै ॥
सावधान कै बहुरि^४ चलावै । उपज^५ आरकस बढ़न न पावै ॥
रीझ सबै^६ अस्तुति महं आए । वाहुक कै गुन बहुत रिझाए ॥
रथ हांकन अरु हय पहिचानन । यह दीनी करतार तोहि गुन ॥*
रथ पुनि जात हुता^७ जस^८ वाना । कस कमान करे^९ कर ताना ॥
भूप जो रीझ भयो रस मसा । ततखिन कांध दुपट्टा खिसा ॥
तिही^{१०} काल राजा पुनि कहा । वाहुक विरंव^{१०} दुपट्टा रहा ॥
वाहुक कहा रहा जनु^{११} नहा^{१२} । अब तो सात^{१३} कोस पर रहा ॥

दोहा—महाराज छिन कै कहत, रहै^{१४} देखी^{१५} मग^{१६} जाइ ।

तुम बोले दुपट्टा रहा, वाहुक रथ विरमाइ ॥३३४॥

चलि आगे जब हय^१ अरसाने । वाहुक वाग लिये सुसताने ॥
तहां हुतां इक विरछ^२ वहेरा । कलिजुग कर निसि^३ वास वसेरा ॥
देख^४ विरछ^५ राजा रितु^६ बोला । वाहुक भाग कवल मुख खोला ॥*
वाहुक गुन^७ आनी तोहि माहीं । पै हीं हुं निरगुन पुनि नाहीं ॥
मै हूं यह^८ अद्भुत गुन जानीं । मुन तोसों वह^९ मरम बखानी ॥
विरछ^{१०} वहेरा कर इक लेखा । मोहि नीकै आवै कर पेखा^{११} ॥
तिहि लेखै जे फर जे पाता । सब जानहुं तरु^{१२} कै निज आता ॥
जे फर अरधफरे^{१३} जे खरे । और ते जानीं जे भुइं परे ॥
वाहुक मन लागी इह वाता । राजा कहु तरु^{१३} कै फर पाता ॥ †

दोहा—राजा लेखा समुझि मन^{१४}, कै निज अलच्छ^{१५} विचार ।

कहै पात जे विरछ पर, फर जे भुइं जे डार ॥३३५॥

दोहा—३३४—१—मन (स०), मै (कां०) । २—छाटा (कां०), छांटा (स०),
३—तन (कां०) । ४—फेरि (कां०) । ५—असह (स०) । ६—बहुत (स०) । *
'कां०' में उत्तर पद इस प्रकार है:—'छिन छिन लगे रहे तिहि कारन' । ७—तहां
(कां०) । ८—जनु (कां०) । ९—तिनहिं (स०) । १०—पीत (कां०) । ११—जिन
(कां०) । १२—अहा (कां०) । १३—सात (स०) । १४—रथ (स०) । १५—दिनकै
(स०) । १६—मकु (स०) ।

दोहा ३३५—१—ही (स०) । २—बसि (कां०) । ३—ताहि (कां०) ।
४—निरख (कां०) । ५—तव (कां०) । * 'कां०' में उत्तर पद इस प्रकार है—'जो गुन
हुता ग्रंथ सो खोला' । ६—जद्यपि गुन (कां०) । ७—येक (कां०) । ८—तिन (स०) ।
९—देखा (स०) । १०—तरवर (कां०) । ११—और फरे (कां०) । १२—इन्ह (स०) । †
'कां०' में उत्तर पद इस प्रकार है—'कहिस कहौ अब तर फर राता' । १३—पुनि (कां०) ।
१४—अलच (कां०, स०) ।

देखि सो रथ जानसि पिउ आवा । पुनि भरमै पिउ^१ अछत हिरावा ॥ †
 पिउ रथ मै तिहि दिस्टि न आवै । जो पिउ ताहि और ठहिरावै ॥
 पिउ सो वहै रथ चालनहारा । पै तिहि^२ की दुविधा भ्रम डारा ॥
 देखै^३ पै^४ परतीत न आनै । रथ हांका औरे कै^५ जानै ॥
 इह प्रीतम को वरन निहारै । वह बिनु वरन इहै भ्रम मारै ॥
 सोच भयो भ्रम बढ़यो विसेखा । देखै^६ ही^७ भ्रम करै अदेखा^८ ॥
 खिन पुनि^९ कहै^{१०} कंत रथ माहीं । रथ हांकै सो और कोउ नाही ॥
 रथ मै पवन गवन सो पीऊ । वहै पीउ इहि रथ मंह जीऊ ॥ ०
 यहै भाँति जक ठक होइ रही । जब^{११} लगि^{१२} भरम^{१३} पिउ होइ न सही ॥

दोहा—जौ लीं निज समझै नही, तौलौ धोख न जाइ ।

पिउ रथ मै दीसै प्रगट, विन चीन्हें बिललाइ ॥३४०॥

सो रथ राजद्वार जब^१ आवा । ततखिन^२ सोध देसपति पावा ॥
 सुनि रितुपरन आव^३ उठि चला । भीमसैन^४ आगै^५ जा^६ मिला ॥
 भवनसार^७ महँ दीन्ह उतारा । जगमगाइ मंदिर उजियारा ॥
 बैठ तहाँ रितुपरन उदासी । बाढ़ा सोच भयो^८ सुख नासी ॥
 सो लीला कछु दिस्टि न आई । बर वरनी कै भनक^९ न पाई ॥
 सुनी न कछु सहनाइ^{१०} निसाना । और जो होइ सो होत न जाना ॥
 सकुचा निपट लाज महँ आवा । मन कर सोच जाइ मुख पावा ॥
 ततखन भीम मरम इह पावा । सुना कि आज अवधि सों आवा ॥
 भरम बढ़ा^{११} चिन्ता मन दीन्हां । कौने काज कस्ट अस^{१२} कीन्हां ॥

दोहा—बूझा कहो नरेस निज^{१३}, इह कारन धौ कौन ।

जिहि कारन अस कस्ट कै, कीन्ह पवन मन गीन ॥३४१॥

दो० ३४०—†'कां०' में पूर्वपद इस प्रकार है:—'मगन भई देखा रथ आवा' ।
 १—गम (स०) । २—याकै (का०) । ३—दीखत (स०) । ४—औ (स०) । ५—कों
 (स०) । ६—, ७—देखा (कां) । ८—अनदेखा (स० कां०) । ९, १०—तोखै (स०) ।
 ११—पुनि (कां) । ० 'कां' मे उत्तर पद यों है:—'होइ न वही पीये रथ जीऊ' ।
 १२, १३, १४—जब तक मै (कां०) । १५—दोख (स०) ।

दो० ३४१—१—अव (कां०) । २—ततखिन न (का) । ३—प्रेम (कां०) ।
 ४, ५, ६—आगै ह्वै आदर कै (कां०) । ७—पहन (कां) । ८—ले (कां०) । ९—न भयो
 (का) । १०—सुध (कां), भनम (स०) । ११—पौनार (स०) । १२—रह्या (कां०) ।
 १३—इन्ह (स०) । १४—नुम (कां०) ।

बोला सकुचि लाज सी कीएं । मन कै^१ वृत्ति बदन पर लिएं ॥
 तुम मिलाप कारन मन चला । चाव^२ सो^३ लै आवा कै^४ हला ॥
 दरनन आस प्रेर^५ लै आई । मुख पानिप सो^६ प्यास बुझाई ॥
 तन कै^७ तपत मिलत घटि^८ गई । मन गुन गुनन लगन बढ़^९ गई ॥
 सो^{१०} धन जो तुम मिलि मिल जाई । ता सुख उपम^{११} न जाइ गिनाई ॥
 कस्ट कीन्ह तव इह सुख पावा । कस्ट बिना कछु^{१२} हाथ न आवा ॥
 श्री पुनि कस्ट तवही लग लागै । जव लग मोई प्रीति न जागै ॥
 प्रेम^{१३} पंथ महं कस्ट न कोई । जो निज प्रेम उमंग जिय होई ॥
 जिउ इहि पंथ बहुत सुख पावै । मन पिउ पहं^{१४} दुख काहि^{१५} दुखावै^{१६} ॥

दोहा—प्रेम पंथ महं पग बरत^{१७}, दुख सुख अंतर जाइ ।

दुख सुख माननहार जिउ^{१८}, सो पिउ माहि समाइ ॥३४२॥

भीमसेन बोला हित किएं । श्री^१ पुनि बहुत दीनता लिएं ॥
 कृपा कीन्ह हीं भयो सनाथा । परसे पाइ ऊंच भा माया ॥
 धन मो ठीर धन भाग हमारे । रीरै^२ आइ^३ जहाँ पग धारे ॥
 मो लगि बहुत कस्ट तुम पावा । सी जोजन आवा^४ डक^५ वावा ॥
 कहि न जाइ रावरि प्रभुताई । दुख पै मोहि भई सुखदाई ॥
 पै इह आदि^६ बड़न कै रीती । जासों करहि मया हिन प्रीती ॥
 मन बच करम अपन ठहरावहि । ता सुख लागि आप दुख पावहि ॥
 कहि ये बचन प्रीति उपजाई । मन मिलाइ तिन^७ सकुच मिटाई ॥
 ततखिन उठि अपने घर आवा । मिहमानी कर साज बनावा ॥

दोहा—राज साज जस चाहिए^८, बहु^९ आदर^{१०} सनमान ।

पठै दीन्ह अति प्रीति सो^{११}, सँग नीकै^{१२} परधान ॥ २४३ ॥

दो०—३४२—१—वृत्ति (का०), बरत (स०) । २,३—सो तन (का०) ।
 ४—कर (स०) । ५—प्रवल (का०) । ६—पिन (कां) । ७—विवि (का०) । ८—सो
 छिन (स०) । ९—भुई (स०) । १०—सुख (स०) । ११—प्रीति (का०) । १२—पंथ
 (का०) । १३—गाढ़ (स०) । १४—सुनावै (का०) । १५—धरै (का०) । १६—
 मन (का०) ।

दोहा—२४३—१—अति (का०) । २—रावर (का०) । ३—आनि (का०) ।
 ४,५—मगहित चित (का०) । ६—आव (का०) । ७—तिहि (का०) । ८—कुछ जिहि
 (का०) । ९,१०—सवन श्रीर (का०) । ११—देइ (का०) ।

रानी सो भोजन घर थारा । प्रथम लीन तिहि वास वफारा^१ ॥
 वहै वास परिमल निज पेखी । जैसी पिउ भोजन महं देखी ॥
 पुनि हित कै भोजन सो खावा । रस मिठास सोई निज^२ पावा ॥
 निहचै भा प्रनीत जिय आई । ग्यान नेत्र पिउ दीन दिखाई ॥
 अब वाहुक निज प्रीतम जाना । सो सारथी^३ रथी कै माना ॥
 पुनि जो पुत्र पुत्री है दोऊ । पठै दीन्ह वाहुक पहं सोऊ ॥
 तिनहि देखि वाहुक उठि धावा^४ । रोइ^५ दुहन^६ कहं कंठ लगावा ॥
 औघपती^७ यह^८ कौतुक ताके । बूझा^९ कहु^{१०} वाहुक सुत^{१०} काके ॥
 तै पुनि नैन आंसु क्यों आने । कौन हितू कै सुत पहिचाने ॥

दोहा—वाहुक बोला छत्रपति, इनहि ऊठ^{११} उनहार ।
 द्वै^{१२} बालक मोरे हुते, रोऊं तिनहि संभार ॥३५२॥

रानी जब परचा सब देखा । भई प्रतीत^१ विसेख विसेखा ॥
 जाइ विनी^२ माता^३ सो कीन्हां । माता पिउ आवा मै चान्हां ॥
 ताकर पता सब मै पावा । लै परचा संदेह मिटावा ॥
 अब जो तू^४ बोलसि हौं^५ माता । ती पूछी^६ दुख मुख के वाता ॥
 माता ततखिन जन दौरावा । जो वाहुक कहं बोल लै आवा ॥
 धन है चंद्र उई^७ इहि^८ वारा^९ । चीर कुचीर राहु रग कारा ॥
 अंतर भेटि सौंह भइ खरी । रोवा पुरुख दिस्टि जब परी ॥
 पुनि नल महं इह हुता सुभाऊ । आखिन आंसु जो हौंहि अवाऊ^{१०} ॥
 आखिन^{११} महं दीसै रकतारे । पुनि^{१२} सो सेत जव^{१३} हौंहि^{१४} ढरारे^{१५} ॥

दोहा—यहौ^{१६} पता पिउ कर मिला, सांसा^{१७} रहा न कोइ ।
 कंत रुदन^{१८} गति^{१९} देखि कै, धन पुनि^{२०} दीन्ही रोइ ॥३५३॥

दोहा—३५२—निहरां (कां०), फफारा (स०) । २—जिन (कां०) । ३—स्वारथी (कां०), स०) । ४—आवा (कां०) । ५, ६, ७—रोइ रोइ गहि (कां०) । ८—ते (कां०) । ९—सुत (स०) । १०—सिस (कां०) । ११—औठ (कां०), ओठं (स०) । १२—दो (कां०), दोई (स०) ।

दोहा ३५३—१—परीत (स०) । २—सो विनी (स०) । ३—माइ (स०) । ४—त (कां०), अति (स०) । ५—हो (कां०), हौ (स०) । ६—बूझीं (स०) । ७—उवै (स०) । ८—इन (कां०), पुनि (स०) । ९—वारी (कां), तारा (स०) । १०—औ आऊ (कां०), उवाऊ (स०) । ११—नैनो (कां०) । १२—तव (कां०) । १३, १४—हौंहि (कां०) । १५—धरारे (स०) । १६—यहूं (कां०) । १७—संसार (कां०) । १८—रोन (स०) । १९—दुप (कां०) । २०—दीन्यों (स०), दीन्हों (कां) ।

कहसि कंत यौं करै न कोई । ज्यों तैं हीं वन माहि विछोई ॥
 संग मिलै अंतर कै डारा । मिलै मांझ होइ गयसि निरारा ॥
 होतसि दूर न होत परेखा । गरै मिलै विछुरत का लेखा ॥
 इहै मिलन नै सत हीं यारी । जुरी मिली तै कीन्ह नियारी ॥
 कपटी मुना मिलै महं न्यारा । सो प्रीतम तू नैन निहारा ॥
 किहि हित सों भुइं सैन बनाई । गरै लाड सुख नीद सुवाई ॥
 सुख सुवाइ पुनि कीन्ह विछोऊ । ऐसी करै मिलै महं कोऊ ॥
 जो जाना तू कपट सोवावसि । मोहि सुवाइ आपा विछुरावसि ॥
 ती हीं किहि कारन तव सोऊं । तो सों रतन सोइ नहिं खोऊं ॥

दोहा—कंठ लगाइ सुवाइ संग, गांठ बरी मन माहि ।

सो बीती अजहूं मिली, गांठ छोरिही नाहि ॥३५४॥

सुन वन परालवध संजोगू । कवहुं न मिटै वनै सो भोगू ॥
 कीन्ह सो परालवध मव कीन्हां । कारन की कनिजुग विच दीन्हां ॥
 तिन कनिजुग इह कीन्ह विछोऊ । अत्र दिन फिरे हितू भा सोऊ ॥
 श्री तन हित विछोह तै माना । नातर हीं तो माहि ममाना ॥
 छिन तोमां हीं भयो न न्यारा । मै आपा तोरै बट डारा ॥
 मोहि तोहि नेकु न अंतर भयऊ । भूल भरम तोरै मन गयऊ ॥
 गांठ जो कहसि सो मो महं नाही । तहि गांठ डारी मन माही ॥
 डारि गाठ मन मोसों तोरी । मोसों तोर देह सों जोरी ॥
 तिहि सुख लागि तै मो विसरावा । वर बुलाइ वरनीत हिरावा ॥ *

दोहा—तन तेरो पति है सुखी, हीं तेरो जिउ पीउ ।

ता पिउ मों तन हेतु लागि, तन ज्यों तोर न जीउ ॥३५५॥

दोहा ३५४—१—पुनि (कां०) । २—किनस (कां०) । ३—हुते मु (कां०) ।
 ४—इंही (कां०), ग्राहि (स०) । ५—मर्ला (कां०), मिला (स०), ६—सुठ (कां०) ।
 ७—जरी (कां०), जुरै (स०) । ८—न्यारी (कां०), नियारे (स०) । ९—गहि
 (कां०), कीन्हि (स०) । १०—आपा (स०), अपा (कां०) । ११—सैन न (कां०),
 सै (स०) ।

दोहा ३५५—१,२,३—कैं हीं न मिटै (स०), मिटै न गये (कां०) । ४,५—
 संजोगू (स०) । ६—कीन्ह (कां०) । ७—निज (कां०) । ८—भया (कां०), भयो
 (स०) । ९—अंतर (कां०) । १०—मांझ (स०) । ११—तिहि (कां०), तिन्हिहि (स०) ।
 १२—तिन (स०) । १३—मोहि (स०), योह (कां०) । *स० में उत्तर पद यों है—
 'आतम जिउकर मरम न पावा ।' १४—पट (कां०) । १५—सपी (कां००) । १६—विन
 (कां०) । १७—हित (कां०) । १८—तो (कां०) ।

प्रीतम मैं तोसों नहि तोरी । सब सों तोर मोर भइ तोरी ॥
 हौं^१ तन^२ सुख मन तनिक^३ न आनीं । तन मन जीउ तोहि^४ कै^५ जानौं ॥
 तन की सुख ताकै मन आवै । जो आपन^६ तन जीउ कहावै ॥
 तन मन धन परान सब तोरा । ही कहु को जो कहीं कछु^७ मोरा^८ ॥ ॐ
 तन अपना^९ तै^{१०} जीउ मिलावा । तो^{११} मिलाप कारन टहिरावा ॥
 जो वह होइ पवन ज्यौ धावै । हय रथ हांकि अबध^{१२} सो^{१३} आवै ॥
 दिन महं सौ जोजन कर चला । सो आवै^{१४} जानै इहि^{१५} कला ॥
 जो पुनि तै ऐसी जिउ राखी । मूर चाँद तुम^{१६} बोलहु^{१७} साखी ॥
 तन संगी^{१८} तेऊ भ्रम खोलो^{१९} । प्रथमी^{२०} पौन अग्नि जल बोलो^{२१} ॥

दोहा—ततखिन पौन अग्नि वरुन, प्रगट भए सै देह ॥

धन सत^{२२} पर साखी दई, मिटा^{२३} कंत संदेह ॥३५६॥

तिन देवन्ह साखी जव^{२४} दई । नल पर बहुत तुष्टि^{२५} तव भई ॥
 पुनि हँसि पुरुख नारि सों बोला । कर सिंगार सज चंदन चोला ॥
 कै मंजन ससि कीन्ह नहानू^{२६} । उतरा मैल राहु गा^{२७} मानू ॥
 पहिरे^{२८} चीर सूर छिपि^{२९} गयऊ । पुन्यो^{३०} चंद^{३१} प्रकासित^{३२} भयऊ ॥
 चिहुर^{३३} सवारि^{३४} मांग मधि रची । कंचन लीक कसीटी कसी ॥
 भर सेदुर मुक्ता बँसारे । ससि पहं चलै पांति गहि तारे ॥
 लाग जो तिलक कनक नग जरा । रूप आन मायै मनु^{३५} घरा ॥
 भौह धनुक विच^{३६} अंजन रेखा । वरुनी बान सौह को देखा ॥
 पहिरा नासिक फूल अमोलू । मनु^{३७} मुहाग धुअ^{३८} अचल अडोलू ॥

दोहा—मुख तंबोल कुंडल लवन, गिय^{३९} मुक्ताहल माल ।

मिलै^{४०} चीर^{४१} कुच^{४२} कंचुकी, वाहै^{४३} कँगन विसाल ॥३५७॥

दोहा ३५६—हुत (कां०) । २—न (कां०) । ३—नेक (कां०) । ४—पीउ (स०) । ५—कहं (स०) । ६—आपै (कां०) । ७—‘कां०’ में पूर्व पद इस प्रकार हैः—तू तन जीव तन सो यह तेरा । ७—तन (कां०) । ८—मेरा (कां०) । ९—अपनाइ (स०) । १०—तू (कां०) । ११—तै (स०) । १२—अरन्न (कां०) । १३—है (कां०) । १४—इन (स०) । १५—है (कां०) । १६, १७—बोलै निज (कां०) । १८—संकी (स०) । १९—खोलैहि (कां०) । २०—पृथी (कां०) । २१—बोलै (कां०) । २२—सब (कां०) । २३—मिटै (स०) ।

दोहा ३५७—१—तव (कां०) । २—पुष्ट (स०) । ३—अन्हानू (कां०) । ४—कर (कां०) । ५—पहिरो (स०) । ६—पछि (कां०) । ७—विउ विन (स०) । ८—वदन (कां०) । ९—प्रकाशिक (कां०) । १०—चोहर (कां०), छर (स०) । ११—सुघार (स०) । १२—जनु (कां०) । १३—पनच (कां०) । १४—जिन (कां०) । १५—दहु (स०) । १६—गी (कां०), किए (स०) । १७—मिली (कां०) । १८, १९—चित्र (स०) । २०—वाहौ (कां०), वाहूं (स०) ।

नल वह सरप सुरत पुनि कीन्हा । जिहि' विख सान कीन्हा अनचीन्हा ॥
 ततखिन सरप प्रगट होइ आवा । आइ डाँक पर डाँक लगावा ॥
 विख आपन सब चूस निकासा । निकस राहुसों सूर प्रकासा ॥
 हुता रूप वह^२ विना बनावा । विखै सनै^३ आरे दिखरावा ॥
 जैसे सूरज घन महं आवै । है^४ राता^५ पै पीत^६ दिखावै ॥
 विख सों निकस अलग जब भयऊ । निज देखा अंतर मिट गयऊ ॥
 पुनि इह कहा कंचुली कहा । जे तोहि मै सीपी द्वै^७ तहां ॥
 नल वह कंचुलि काढ़ि दिखाई । लै इह ताकै अंग उढाई^८ ॥
 ओढ़त^९ अंग आदि जस^{१०} बना । तैसे बना कोटि छवि सना ॥

दोहा—अंग भंग^{११} जो होइ^{१२} रहा^{१३}, भयो सो अपने रंग ।
 जो देखै^{१४} सो^{१५} नल कहै, अनित^{१६} भरम भा भंग ॥३५८॥

वन बनाइ बैठे मिल दोऊ । भयो सेज^१ सुख गयो विछोऊ ॥
 चकई चकवा निसि^२ जो^३ गए^४ । दिनकर किरन प्रकासक भए^५ ॥
 विरह अगिन दोउ ओर सिरानी । परा सेज संगम स्रम पानी ॥
 मिटी दुहुन कर^६ विरह खुमारी । आलिंगन विध^७ मार उतारी ॥
 धन चातक कहं भा पिउ स्वाती । पिउ चकोर कहं धन ससि राती ॥
 धन सो मीन^८ पावा पिउ पानी । पिउ अलि धन अंबुज अरधानी ॥
 धन कुमुदिनि^९ प्रीतम ससि पावा । पिउ पतंग धन दीप लुभावा ॥
 धन महि^{१०} की^{११} पिउ मेह^{१२} सुभागू । पिउ सारंग^{१३} कहं धन भइ रागू ॥
 धन सीपी पावा^{१४} पिउ^{१५} स्वाती । पीउ भूख भोजन धन^{१६} राती ॥

दोहा—धन सीता पिउ राम मनु^{१७}, विछुर भयी संजोग ।
 दोऊ आनंदित मगन^{१८}, रावन हना^{१९} वियोग ॥३५९॥

दोहा—३५८—१—जिन (कां०), जन (स०) । २—अहु (कां०) । ३—यैसे
 [(कां०) । ४—सुर (कां०) । ५—उरन्न (कां०) । ६—स्याम (कां०) । ७—दोई
 (कां०), दोउ (स०) । ८—उढाई (कां०, स०) । ९—ऊधत (कां०) । १०—जिस
 (कां०), जव (स०) । ११—अंग (स०) । १२—आदिन (कां०) । १३—अहा (कां०) ।
 १४—दे (कां०) । १५—जो (स०) । १६—अनल (कां०), अनिल (स०) ।

दोहा—३५९—१—सकल (स०) । २—कीनस (कां०) । ३, ४—आई (कां०) ।
 ५—भाई (कां०) । ६—की (कां०) । ७—मद (स०) । ८—तैस (कां०) । ९—कुंदन
 (कां०), कोमदन (स०) । १०—मह (स०), मोहक (कां०) । ११—है (कां०), कौन
 (स०) । १२—यही (कां०) । १३—को रंग (कां०) । १४—भा (कां०) । १५—
 प्रीतम (कां०) । १६—दिन (कां०) । १७—जन (कां०) । १८—भये (कां०) ।
 १९—हान (कां०) ।

पुनि रिनुपरन मरम इह पावा । तिनहि^१ काल नल पहं उठि आवा ॥
 बोला बहुत चूक भइ मोसो^२ । ओछो^३ दहल गही^४ मै तोसो^५ ॥
 मै तोरा तब भेद न जाना । अब लखि मरम बहुत पछिनाना ॥
 ओसर गवा सो हाथ न आवा । अब काहे लागै पछितावा ॥
 तू राजा मोरे घर माही । मै अजान तोहि जाना नाही ॥
 मै तोहि सेवग कै^६ ठहिरावा । तो^७ सेवा महं मन^८ नहि लावा ॥
 ओ^९ पुनि मै अनचीन्ह का जानू । तो^{१०} बिन तोहि कैसे पहिचानू ॥
 जब लगि तू आपा^{११} न लखावसि । निज सरूप आपन न बतावसि ॥
 तब^{१२} लगि तोहि कोऊ का जानै । अवरन कहं कैसे पहिचानै ॥

दोहा—वरन भेख तोहि कछु नही, अवरन अलग्ग अरूप ।
 कैसे जानी क्या लखी, तो^{१३} बिन तो^{१४} कहं भूप ॥३६०॥

नल पुनि विनी कीन्ह कर जोरै । अस्तुति जोग जीभ कहं मोरै ॥
 बहुतै गुन मोसों तुम कीन्हा । मंझधार डूबत गहि लीन्हा ॥
 वहै जात गह^१ तीर लगावा । तुम्हरे नाव पार मै पावा ॥
 जिन्ह दिन इस्ट न मित्र न भाई । तिन्ह दिन प्रभु तुम्ह भए सहाई ॥
 कै मानुस निरमा^२ मोहि पाती । पोखन भरन कीन्ह बहु भांती ॥^{*}
 जो मै गुन तुम्हरो विसराऊं । किरतघनी कलजुगी^३ कहाऊं ॥
 किरतघनी मोसो^४ नहि^५ दूजा । या कलमख^६ सम औरन पूजा^७ ॥
 किरतघनी पापिन्ह^८ कर राजा । किरतघनी अपराधहि^९ छाजा ॥
 किरतघनी कहं ठौर न कोई । आपद अमान^{१०} दुहु जग होई ।

दोहा—किरतघनी अपराध सों, जग जेतै^{११} अपराध ।
 तुला घाल कै^{१२} तोलियै, होहि न आधों आध ॥३६१॥

दोहा—३६०—तिहि (का०) । २—मोरी (का०) । ३—बोली (का०) । ४—
 करी (का०) । ५—तोरी (का०) । ६—लै (स०) । ७—तोहि (का०) । ८—मनव
 (का०) । ९—हूं (का०) । १०—तोहि (स०) । ११—आप (का०) । १२—तौ
 (का०) । १३—तोह (का०) । १४—तोहि (का०) ।

दोहा—३६१—१—लै (का०) । २—मरवा (स०), निरवा (का०) । *‘का०’ मे
 प्रथम पद पीछे आता है । ३—कल्प कहे (का०) । ४—अस अपै (का०) । ५—न
 (का०) । ६—कलभेष (का०), कलविष (स०) । ७—दूजा (स०) । ८—या पैहि
 (का०) । ९—अपराधह न (स०) । १०—अपान (का०), अमां (स०) । ११—जीते
 (स०) । १२—ज्यों (स०) ।

नल संतपत' बहुत जव जाना । तव' रितुपरन' वचन मुख आना ॥
 बोला बहुत दीनता' लिए । सेवक रीति विनी अस किए ॥
 कृपा देखि ही देहु दिहाई । तुरै मरम मोहि देउ बताई ॥
 नल ततखिन सो मरम लखावा । अति हित सों सब भेद बतावा ॥
 जैसे इंद्र ताहि सिखरावा । तैसे तिन' निज ताहि' बतावा ॥
 पुनि जो' कहसि मो आपन जानहु । हितकारी सेवक पहिचानहु' ॥
 जीली प्राण रहै घट माही । गुन तुम्हार छिन विसरी नाहीं ॥
 नल कै हित रितुपरन रिभावा । मगन भयी आनंद महं आवा ॥
 तिन्ह हूं नलसों हेत बढ़ावा । तिहि हित केतिक दिन ठहरावा ॥

दोहा—मगन हेत खेलत रहा, जीली' रहा' नरेस ।
 पुनि रस राखि विदा भयो, गयो' आपने' देस ॥३६२॥

नल पुनि आपन देस संभारा' । जीतनहार भयो जो हारा ॥
 उमहा' देस चलै कहं चहा । भीमसेन राजा सै कहा ॥*
 राजा यह जो भई कछु मोसों । सो' कारन वितर्की ही तोसों ॥
 जद्यपि मोरै अदिन कराई । पै कलिजुग मो' भा' दुखदाई ॥
 कै विरोध मोरी' मति हरी । पलटि दिसा श्रीरै गति करी ॥
 कै वावर पुनि जुआ खिलावा । घर छुड़ाइ वनवास दिआवा' ॥
 होनहार' जो' हुत' मो भयळ । अब मो' अदिन काल टर गयळ ॥
 तिहि' वैरी' अब कीन मित्ताई । जुआ जीत विद्या पुनि पाई ॥
 याते' गहर करव भल नाही । घरी घरी जुग जुग पर जाहीं ॥

दोहा—जो आयसु मोहि होइ' अब, देस' पंथ पग देउ' ।
 जाइ खेल पुन' आत सों, जीत राज वन लेउ' ॥३६३॥

दोहा—३६२-१—स्तुति (कां०) । २—तप (कां०) । ३—परन (कां०) ।
 ४—धीनता (स०) । ५—इन (कां०) । ६—याह (स०) । ७—सो (कां०) ।
 ८—कर मानो (कां०) । ९—जो लागि (कां०) । १०—रह्यो (कां०) । ११—चली
 (स०) । १२—मो अपनो (कां०) ।

दोहा—३६३-१—सिधारा (कां०) । २—उठा (कां०) । *कां०' में उत्तर पद
 यों है:—'जामु विनु मुसर मैं कह्या' । ३—गुन (कां०) । ४—मोहि (स०) ।
 ५—भया (कां०, स०) । ६—वैरी (स०), मेरी (कां०) । ७—भरमावा (कां०) ।
 ८—ही (कां०) । ९—जु (कां०) । १०—हुता (कां०, स०) । ११—मोहि (स०),
 श्रीह (कां०) । १२—तन (कां०) । १३—कारन (कां०) । १४—ताते (कां०) ।
 १५—दही (कां०) । १६—तो देस (कां०) । १७—कै (स०) ।

राजा वचन मान पुनि लीन्हा । सिद्ध गीन कहं आयसु कीन्हा ॥
 कहा अवसि विलंब जिनि लावहुं । वेगि देस आपहिं पहुंचावहुं ॥
 जद्यपि तुम बहुतै^३ दिन आए । अजहूं नैन न देखि अघाए ॥
 पै अब भल नाही विरमाउव । कुसर होइ पुनि दरसन पाउव ॥
 कह सो बात परधान बुलावा । आयमु भा^४ बहु दरव दिआवा ॥
 औ पचास ह्य चंचल लोने । सब के साज सजे नग^५ सोने ॥
 सोरह^६ गज झूमत^७ मतवारे । अति उत्तंग मानी^८ गिरि कारे ॥
 केतक रथ औ राज समाजू । जस कछु चहै^९ दीन्ह सब साजू ॥
 औ पुनि कटक बहुत संग दीन्हा । आदर सहित विदा नल^{१०} कीन्हा ॥

दोहा—सुदिन महरत साजि कै, सवरि^{११} आपनो^{१२} देस^{१३} ।
 लै धन संग गवन कियो, नल^{१४} नरपती^{१५} नरेस^{१६} ॥३६४॥

नल उज्जैन आइ^१ पग धारा । पुहकर सुना उठी उर झारा ॥
 पावक चिनगि रुई जनु परी । जरतै तेल परे पुनि^२ घरी ॥
 तन मन जर अंगार^३ होइ गयऊ । प्राण पिड महं^४ अनरस भयऊ ॥
 रह न सका नल पहं उठि आवा । कैसे रहै राज भै^५ जावा ॥
 आवत वेगि क्रोध कर बोला । मति डुल^६ जाइ^७ भाग जब डोला ॥
 कहसि कि जुआ खेल तू मोसों । सीस दावं मोसों औ^८ तोसों ॥
 जो हारै आपन सिर हारै । जीतनहार हरैय्य^९ मारै ॥
 जो पुनि तो यह खेल न भावै । और कही जो मन महं आवै ॥
 धन समेत जो धन^{१०} है तोरे । दाव^{११} लाव^{१२} लाऊं जो मोरै ॥

दोहा—इन^{१३} दो^{१४} मै^{१५} जो मै कहा, जो लावसि तू दाव ।
 सोई लाइ सुनाइ कह, खेल विलंब न लाव^{१६} ॥३६५॥

- दोहा—३६४—१—अपन (कां०) । २—तिहि (कां०) । ३—फिर (सं०) ।
 ४—भइ (सं०) । ५—सब (कां०) । ६—सौरै सै (कां०) । ७—घुंमत (कां०) ।
 ८—जानी (कां०) । ९—होइ (कां०) । १०—पुनि (सं०) । ११—नल (कां०) ।
 १२—हस (कां०) । १३—आयो (कां०) । १४—अपदेस (कां०) । १५—पूज (कां०) ।
 १६—मनाइ (कां०) । १७—गणेश (कां०) ।
 दोहा—३६५—१—जाय (कां०) । २—जनु (सं०) । ३—कोईला (कां०) ।
 ४—निज (कां०) । ५—पुनि (कां०) । ६, ७—पुनि डोली (कां०) । ८—घोर (कां०) ।
 ९—हारै फिर (कां०) । १०—कुछ धन (कां०) । ११, १२—औ मैहं (कां०) ।
 १३, १४, १५—ए दूजी (सं०) । १६—दाव (सं०) ।

मुन नल छमा जिये' तव कहा । भलै कछू यह चपर न रहा ॥
 जिहि विधि कहसि तिहीं विधि खेर्ली । मान लेउं तो' वचन न पैली ॥
 प्रथम राजधन जो कछु तोरै । श्री धन विन' जो' कछु' धन मोर ॥
 यहै' दाव' वदि खेल मचावहु । सो' हिराइ पुनि सीस लगावहु ॥
 इह ठहिराइ खेल' पर आए । मार राख पासा ढरकाए ॥
 पासा के ढारन नल जानै । जोइ' दाव चाहे सो आनै ॥
 जद्यपि पुहुकर अरै अरावै । नल पासा पर' मार गिरावै ॥
 पुहुकर सो' धन भा' जो उदासा । पंजा छका देइ नहि पासा ॥*
 चाहै सात ती आवै पांचै । दुआ होइ' सारै' नी वाचै ॥

दोहा—नल ततखन वाजी लई, आर उठायी खेल ।

पुहुकर तिल सो' खल भयो, निकस गयी गंठ' तेल ॥३६६॥

नल तव हंसा कहसि मुन मीता । जिनि जानसि तव कै तै' जीता ॥
 जीतनहार और वह कोई । कलिजुग जिन' मोरी' मति खोई ॥
 वैरी निपट वैर पर आवा । कीन्ह चहे आपन मन भावा ॥
 श्री पुनि परालवध संजोगू । मोहि' करतव' जो' हुता' दुख भोगू ॥
 मेरो अदिन प्रगट भयो आई । जो होनी' सो मेटि न जाई ॥
 पै तू थोरै महं इतराना । सील धरम सत' सर्व भुलाना ॥
 अब जो भाग भाँह' भा मोरा । मोरै हाथ मरन' भा तोरा ॥
 का तोरै श्रीगुन चित आनी । का तोहि मारि खेह' महं सानी ॥⊙
 जो हाँहं अब' करी' वुराई । भलै वुरै अंतर उठि जाई ॥

दोहा—भलै वुरै अंतर यहै, भला' भलाई' रीति ।

तजै' न जद्यपि वुरै सो', देखै कोटि अनीति ॥३६७॥

दोहा—३६६-१—लोन्ह (म०) । २—तोहि (कां०) । ३, ४, ५—जो कछू (कां०) । ६—येही (कां०) । ७—तिन्ह (स०) । ८—पुनि खेल (कां०) । ९—जीन (कां०) । १०—वर (स०) । ११—भयो (स०) ।* 'कां०' में उत्तर पद यों है :—
 'छका मार्गै दै अन पासा ।' १२—अन ह्वैइ (कां०) । १३—सार (कां०, स०) ।
 १४—कठ (स०) ।

दोहा—३६७-१—मै (कां०) । २, ३,—हित जन मो (स०) । ४, ५, ६, ७—
 मोह करत वस हा (कां०) । ८—होतिव (कां०) । ९—तोहि (कां०) । १०—सोनहि (स०) । ११—काल (कां०) । १२—केह (म०) ।⊙ 'कां०' प्रति में उत्तर पद इस प्रकार है :—
 'काट मार धूर संसानु ।' १३, १४—तो सी करू, (कां०) ।* 'कां०' में उत्तर पद यों है :—
 'तो तुमरीं अंतर मिट जाई ।' १५—जो भला (कां०, स०) । १६—
 तिह कि (कां०) । १७—वचै (कां०) ।

कह ये वचन दीन्ह दोइ गाऊं । भोजन वसतर' चल जिहि ठाऊं ॥
 पृहुकर बहुत बहुत सुख माना । अस्तुति करत करत न अधाना ॥
 महाराज तुम मोहि जिउ दीन्हां । जिउ दै पुनि प्रतिपानन कीन्हां ॥
 तुमसे तुमहीं दीन दयाला । अथम उदार अविन प्रतिपाला ॥०
 तुम जैसे' मैं तुमहि न जाना । माया कै मद गात भुलाना ॥
 सो माया पुनि भई न मोरी । जिहि' कारण तुम सो मैं तोरी ॥
 मैं माया अविचल कै जानी । सोई' राज' यो हाथ त्रिलानी' ॥
 काम निदान पड़ा तुम ताई'° । सो तुम राख लीन्ह' हों गाई' ॥
 मो सर कोऊ अथम न पूजा'° । तुम मां अथम उदार न दूजा ॥

दोहा—कै अस्तुति' तजि राज ग्रह, विदा भयो गहि पाइ ।

मनिषां'² होत जो जहां को, तहां'³ पिरयो'⁴ जाइ ॥३६८॥⁴

दोहा—३६८-१—वसत्र (कां०), विस्तर (स०) । २—ऐसे (कां०) । ० 'कां०'
 में यह पाँचवी चौपाई है । †'कां०' में यह चौथी चौपाई है । ३—जा (कां०) । ४, ५—
 सो उर अज (स०) । ६—गिलानी (स०) । ७—ताते (स०) । ८—जेउ (स०) ।
 ९—सांचै (स०) । १०—दूजा (स०) । ११—स्तुत (कां०) । १२—मैना (स०) ।
 १३—सो तहां (कां०) । १४—पर देखो (स०) ।

*यहाँ तक दोनों प्रतियों का पाठ मिलता है, कथा भी पूरी हो, जाती है इसलिये
 संपादन यहीं तक हुआ है । आगे 'कां०' प्रति में पाँच चौपाइयाँ और एक दोहा (जिसमें
 छह चरण है) है । 'स०' प्रति में दस दोहे हैं । दोनों प्रतियों के संपादन दिए जाते हैं ।
 'कां०' में पुष्पिका है, 'स०' में नहीं है :—

'कां०' का संपादन

ऐसी कथा सुनै सुनावै । सोई ठौर वैकुण्ठ पावै ॥१॥
 आतम ज्ञान कथा यह कही । सुन पिंडित हिरदै मैं लही ॥२॥
 कहृत्यों सुनत्यों बहुत विनान । हरि कथा मुना तैं बहुत किल्यान ॥३॥
 इस्क मारफत योग मैं कहा । ब्रह्म ज्ञान को परचा लह्या ॥४॥
 मन जीतै सोई यह पावै । अंतर लपै सोई अलप लपावै ॥५॥

दोहा—सिर साटे स्याहिव मिलै, तौ बीजा न इस्यान ।

ब्रह्म ज्ञान को पाइ कै, पावै पद निरवान ।

देह खेइ दोइ जाइगी, आपर मौत निदान ॥३६७॥

संवत् १८१५ तत्र वर्षे माहा मांगल्य मासे चैत्र मासे शुक्ल पक्षे तिथौ १२ गुरु
 दिन लि० मिश्र चैतरामः लिषाव त्यों पूज्यः आत्मा ऋषि जी सुभ मस्तुः मंगलं
 दादतूः पुः स्तक लिषि विद्यानां जोग पसेते ॥

‘स०’ प्रति का शेषांश

नल भयो राजपाट अधिकारी । कियो जो लच्छ, सवाइ जो हारी ॥
 सूखें नदी भरा पुनि पानी । भरी जो वेनि पलट पलिहानी ॥
 भया जो ढूढ तरुवर वन वाता । पलट वसंत कीन्हू विधि राता ॥
 वीता अदिन पाख अविघारा । उवा भाग ससि भया उजियारा ॥
 गई दुख निसि मुख भयो विहानू । छिपा जो भाग उवा होइ भानू ॥
 पलट दमा श्रीरे होइ गई । पति मति गति ज्यों कइ त्यों भई ॥
 छिनक माभ श्रीरे भयो साजू । ग्राइ जुरा सब राज समाजू ॥
 डोलत फिरा जो वारह वारा । ताके वार जुरा दरवारा ॥
 एक जुहार चलहं एक आवहि । इक ठाढे लय वारन पावहि ॥

दोहा—अविगत गति करतार की, कछू लखी न जाय ।
 छिन में छूंछे भर धरे, भरे वेइ ढरकाय ॥१॥

पुनि हिय वहै राज मुख भोगू । ज्यों को त्यों सब बना संयोगू ॥
 सरवर वहै नीर पुनि सोई । भंवर कंवल रस भेद न कोई ॥
 वहै फूल पुहुप फुलवारी । वेइ हार वेइ गूधन हारी ॥
 वेइ राग रंग वेई समाजू । वेइ अखार निरत कर साजू ॥
 वेइ मुख दिवस वेई मुख राती । वेई मुख सांज वेइ परभाती ॥
 वेई रीझ वेइ रीझनहारी । वेई पेम मद वेई मतवारी ॥
 वेई मदपीन पियाना ग्रांवे । वेई अधर रम चाखन चाखें ॥
 वेई चितवन वेई टके लगावन । वेई लगन वेई रस उपजावन ॥
 वेई मिलाप वेई सुख सैना । वेई पेम रस पागे बैना ॥

दोहा—वेई हुलास विलास वेइ, वेइ कुरेंद वेइ केलि ।
 वेई हंस वेई सरवरे, मधुकर वेई वेलि ॥२॥

जद्यपि भोग जनम भर माना । पै थिर कछू न रहा निदाना ॥
 चलत चलत जीवन चल भयऊ । रहा न रूप रंग उड़ गयऊ ॥
 सूखा सरवर रहा न पानी । दोऊ कंवल वेलि मूरभानी ॥
 तिहि सब अंग अंग पलटाए । भंवर केस वक रूप दिखाए ॥
 लहर समुद्र नैन कइ नारा । वार वार जल लेइ उफारा ॥
 रस ज्यों वैन मुरन ज्यों बोली । सो उसलै खोंटी भई डोली ॥
 श्रवन जो मुनें नार सुर खोरा । मुनहं निसान वनव कहं थोरा ॥
 वने जो दमन चीक इकगारे । ते अव भये सारंग थट सारे ॥
 बल चल गयउ निवल भइ काया । डोला सीस कांपै कर पाया ॥

दोहा—तन फुलवारी निपट गयो, जुरा आन हेमंत ।
 ताहि पलट भुई वसंत पुनि, इहि फिर पति न वसंत ॥३॥

सत्र सो विरख हुते नल आऊ । जव पहंचान भये पछाऊ ॥
 वाकी पांच रहे दुखदाई । तव धन अवधि आई नियराई ॥
 तेल जरा वाती पुनि घटी । दीपक ज्योति भई लटपटी ॥
 तेल बिना पुनि दिआ न वरै । कास्ट हीन पावक किमि जरै ॥
 दिआ ठौर अब भया अंधेरा । काल पारधीं कीन्ह अहेरा ॥
 चढ़ चेतन वह नेह सो टूटा । गुन औ तत फंद सो फूटा ॥
 धरे रहे पुनि साज सजोने । रानी राज पाट तजि गौने ॥
 छिन महं चढत आस उठ गयेऊ । आपन तनों निरापन भयेऊ ॥
 अछत प्रान कछु दान जो दीन्हां । वहै संग अपनें गह लीन्हां ॥
 भरम सत्य जो करै भलाई । अंतकाल काम वह आई ॥

दोहा—लोगन गज दस वस्त्र लै, मन दोइ काठ जराय ।

छार कीन्ह तन छिनक महं, छारहु दीन्ह उड़ाय ॥४॥

नल तिहिं सोक सीस महं मारा । भुका हार लाई तन छारा ॥
 धन धन कूक ढाह देइ रोवै । सहिर धार नैनन न विछोहै ॥
 नैनन अगिन लपट मुख काढे । आप जरा औरहिं उर डाहै ॥
 जम को वर मोकहं जम भयेऊ । अब वर सो सराप होइ गयेऊ ॥
 कत वैरन्ह तिहिं दिन वर दीन्हां । देइ सराप कस छार न कीन्हां ॥
 पर पुनि का वैरी प्रतिपाला । सो तौ लहसि प्रान ज्यों वाला ॥
 औ सो मरे जाकर जिउ लेई । मम जिउ लय पय मरन न देई ॥
 मरन चही पै मरन न पावों । सुमिरन करों हार तौ नाओं ॥
 पांच वरख अब प्रान विहूना । तन किहिं लागि जिया तौं सूना ॥

दोहा—ये विलाप कर कर भिक्रै, रोवै औ विललाय ।

मुवा चहै कैसे मरै, जो जमन प्रान ले जाय ॥५॥

राज काज सों भयेऊ उदासी । ग्रह तजि भया चहै बनवासी ॥
 पुत्र जो इन्द्रसेन लौ लावा । निज आपन तिहिं वरन सुनावा ॥
 कहसि पुत्र लै आपन राजू । औ जो कछु सब राज समाजू ॥
 गनकहिं वृष्णि सुदिन ठहरावा । पाट बैठि सर छत्र धरावा ॥
 मोहि अब राज वंदि ग्रह भयेऊ । राज पाट कौ सिख उठ गयेऊ ॥
 राज मंदिर अब भय अंध कूयें । सांप सूर किंदुआ कुल सौहै ॥
 दावानल होइ गई फुलवारी । हौद पहाड़ अगिन चिनगारी ॥
 नैनहिं फूल गढ़े होइ कांटे । विस्तर अंग काठ ज्यों चांटे ॥
 मोहि अब भसम चहै उर छाला । पै वह नावं जपन कइ माला ॥

दोहा—पर सोई मोहि ना चहै, भसम जो तन कियो गेह ।

मन माला वाला वचों, छाला खाल सो देह ॥६॥

कह ये वंचन, चल वैठि अगोसे । ग्रह तजि मीत सवारा सदोसे ॥
 लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मीत मन लागा ॥
 मन तिहि देइ तन मुरत गर्वाई । प्राण तिनिहि में रहा समाई ॥
 उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । चल वियोग संजोग समाना ॥
 सुमिरन भजन विसर सब गयेऊ । जाको भजै सोऊ अब भयेऊ ॥
 सुमिरन भजन देह मिल होई । सो तन जिय सो अछत विद्योई ॥
 मंदिर ज्यों तन कहं जड़ जाना । चेतन पुरुष अलग पहिचाना ॥
 जद्यपि तिहि काया यह त्यागी । पै वह रहै अवधि लीं लागी ॥
 आवि अवधि पूरन जब भई । देही वन्स विचल तव गई ॥

दोहा—जद्यपि जिउ तन कों तजत, तोऊ न तजै परीत ।

जब दरसै पिउ को दरम, तव पार्व परतीत ॥७॥

कहां सो नल राजा कहं रानी । पेम उरभ रह गई कहानी ॥
 पेम अमर यह मरै न मारा । बुझे न पेम अग्नि चिनगारा ॥
 वेई वेद पुरानंह गाई । जिन मन पेम उरभ उरभाई ॥
 नाहित ऐसे गये हिरानी । पेम विना काछू न बखानी ॥
 रहत घरी जगकर व्यवहारा । भरन धुरन फिर मरन अपारा ॥
 अगम लेख निगमहं गम नाही । धी दिन कइ आवहं कै जाहीं ॥
 पै निदान इतने गम होई । जो आवा सो रहा न कोई ॥
 यह मन जान कस्ट मै कीन्हा । पेम कथा किरपा चहुं लीन्हा ॥
 मकु हींह जो जाहं हिराई । कथा उरभ नावं रहजाई ॥

दो०—श्री पुनि भूल यहो कहों, मोहि का रहा जो नावं ।

जीलीं सांची प्रीति सों, सहित न नांव समांव ॥८॥

या रोवा यह कछु मै अखिया । अशक फिराक पूरवी भखिया ॥
 मत जानहु यह पूरव वतहा । पूरव देस पंजावी मतहा ॥
 हीं अपने भाखा भय जानों । नुकता नुकता सब पहिचानों ॥
 आवसि भाखा वच शेर घनेरी । अशक हकीकत आवैं मेरी ॥
 अस अपनी भाखा व जवानी । वनी भली पय कोध सकरानी ॥
 खोवै मरमहं कल जो पूछै । जम कस तासों जाय न वचै ॥
 वाज पंजावी हूर न जानी । रतन पारखी रतन सजानी ॥
 उत भाखा महरम सब कोई । पर्द जो मतलव समझै सोई ॥
 तिस कारन यह प्रेम कहानी । पूरव दी भाखा विच आनी ॥

दोहा—वाग वगीचा रो भला, जो सबही साक्षा होइ ।

वानी तस भाखे भली, जिन्ह समझै सब कोई ॥९॥

शब्दानुक्रमणिका

[खड़ी पाई की बाईं ओर दोहे की संख्या है और दाहिनी ओर अर्द्धाली की]

अंकम = अंग या शरीर में	३१३।७	अगोट, अगोटें = आश्रय, आड़	२६७।६;
अंकवन = आलिंगन	७२।४; २३५।५		२८१।३; ३२०।१
अंगनाई = आंगन	५७।८	अगोर = रोकना, छेकना	१०४।
अंघाई = तृप्ति	२६६।३	अगोसै (?) = परदा, ओट	१६५।३; १७०।३;
अंघावा = छक गया, तृप्त हो गया	२२६।८	अघाइ = तृप्त होकर	२५।७
अंचर = आंचल, पल्ला, छोर	८७।६	अचेत = चेतना रहित, वेसुध, मूर्च्छित	२४५।६
अंजरी = अंजुली	११५।	अचैन = अशांत, व्याकुल अस्थिर	११६।
अंजोरा = उजाला	३५।१	अच्छर (अछर) = छल न करने वाला	२०५।१
अंतरजामी = अंतर्जामी, मन की बात जानने वाला	७०।५	अछत = रहते	८७।६, १२१।३, १२६।४
अंतरपट = परदा, ओट	२१६।४; २१७।३	अछवाई = अच्छापन, स्वच्छता सुंदरता	८२।६, ८४।३
अंतह = अंतकाल, समाप्ति काल	३०७।५	आछै = अच्छा, सुंदर	५४।७
अंतह = हृदय स्थित, अंतस्तलका	२१५।२	अजगुत = असंगत वात, आश्चर्य की बात	३०२।४
अंतहि = दूसरी जगह, अन्य स्थान	३१।६	अजान = अज्ञान, विवेक रहित	२२२।१
अंब = आम	३७।२	अजानतो = अजानपन	२४६।६
अंबरत, या अंभत = अमृत	६।	अजाम = जमने से रहित, जन्म हीन, अजन्मा	४३।६
अंबुज = कमल	२३१।७	अजोराँ (अंजोर) = उजाला, प्रकाश	२१४।३
अंन्नित = अमृत	३४।४	अटक = रोक	४१।६, ८१।३
अंशु = आँसू	३६।६	अटारी = कोठा	४५।६
अंस = आँसू	११२।५	अठसठ तीरथ = तीर्थों की संख्या अड़सठ मानी गई है	४०।७
अखंड = जो खंडित न हो, अविच्छिन्न, अबाध	२१८।६	अतन = निर्गुण परमात्मा	१३८।
अखारें = अखाड़े में, यहाँ रति अखाड़े से तात्पर्य है	२३७।४	अतिवानी = अधिक मात्रा में, अधिक घना होकर	४१।७, १००।४
अगम = बुद्धि के परे, दुर्गम	६६।२	अथक = थकान रहित	१७८।१
अगर = अगर पेड़ की लकड़ी जो सुगंधित होती है	५६।३	अथवत = प्रस्त होते हुए, डूबते हुए	२५।५।
अगवहं = जो पहले हो चुके उनके	१२६।४		
अगिन = अगणित	४।६		
अगोचर = जो दिखाई न दे	१६६।६		

अथाई (अथाई) = वैठक	४६।७	अनप = बुरा	११४।४
अदग = दाग रहित, दोष रहित	११४।२	अनाही = हाँ, स्वीकार	६२।१
अदिन = बुरे दिन, कुदिन, विपत्ति के दिन	२४५।१, २५०।५, २६३।२	अनित = जो नित्य नहीं, अस्थिर	३५८।
अदिस्ट = न देखा हुआ	३५।४	अनियारे = तुकीले, पने, तीक्ष्ण	६१।३, १६०।८
अदीठ = अदृष्ट, गुप्त, छिपा हुआ	३११।८	अनी = सिरा, नोक	६२।४
अधगती = अवोगति कर	२७१।७	अनु = अनुरूप, सदृश	१४१।३
अधर = अंतरिक्ष, आकाश	१६।, ५४।४, १८२।, १६६।४, २०४।६, २०५।३	अनुरागी = अनुरक्त	४४।२
अधिकार = अधिकार	५६।२	अन्हाइ = स्नान न करके	१६२।२
अध्यातमी = ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्म का विचार करने वाले	१३०।	अपछर } = अप्सरा	८४।३, ५८।५
अतंगा = कामदेव	१७५।६	अपछरा }	
अनकढ = विना निकला हुआ	४१।८	अपत = निरादर, अपमान, अप्रतिष्ठा	६०।, १३३।२
अनख = दृष्ट कारक, रिस जनक, बुरा मानने योग्य	१६४।७	अपनावा = ग्रहण किया, अपना बनाया	२०५।६
अनखन = क्रोध, गुस्सा	१०५।४	अपरंपारा = अपार, पार रहित	३२।५
अनखातेइ = रोष, क्रोध, गुस्सा	१४३।४	अपूर = अपूर्व	४३।१
अनगिन = अगणित	२३०।६	अपूर (आपूर्ण) = भरा हुआ	५।४
अनचीन्ह = जो पहचाना न जा सके	३४७।६	अपूऊ = अप्राप्त	४३।६
अनवन } = अनेक प्रकार, विविध प्रकार		अवछरा = अप्सरा	२३२।४।, २७२।६
या		अवधि = मियाद, निर्धारित समय	२६५।६
अनवनव }	४।, २६।५, २०८।७, २६४।७	अवरन = वर्ण रहित	३२२।
अनवरै = अविवाहित	२६।	अवली = अब तक	३६१।६, १५२।८, १११४
अनवले = कुअवसर, कुसमय	४४।५	अवारां = अवेर, देर	२२७।२
अनभली = अच्छी नहीं	१४४।५	अभरण = आभरण, आभूषण, गहने,	२२१।२२५।, ५।, २३८।५
अनमनी (अन्यमनस्क) = सुस्त, उदास, खिल	१४२।	अभुआई (सं० आह्वान) = किसी देवता या भूतप्रेत की वाधा के कारण हाथ पैरों में प्रतिक्रिया होना	१४८।५
अनय = अनीति, अन्याय	१६६।६	अमल = निर्मल, मल रहित	२३५।१
अनयासा = अनायास, अचानक, अकस्मात्	११०।२	अमली = इमली वृक्ष, मिला हुआ नहीं	३७।६
अनरस = रस हीन, शुष्कता, कोप, दुःख	२५७।, ३६५।३	अमान = अमान, अपमान	३६१।६
अनरुत = विना ऋतु के	१४२।८	अमाहि = समाता है	२०५।६
अनल = अग्नि	२६।, १६५।६, २७२।१	अमिल = भेद युक्त, विना मेल या मिला	२४७।२
अनवट = पैर के अँगूठे में पहने का छल्ला	१०७।६		

अमी = अमृत	३४।३, ४३।१	अवाळ = आने को	५३।८३
अर = अड़ना	९२।७	अविगता (अविगत) = अजात, अनिर्वचनीय, नित्य	१९।६, ४९।१
अरगज = एक सुगंधित पदार्थ जो वेसर, कपूर और चंदन को मिलाने से बनता है	२२४।७	अष्टांग = आठ अंगों वाला	४०।५
अरधानी = सुगंध	१७१।३	अस = ऐसा	६०।९
अरथ = द्रव्य, सिक्के	२२५।८	असरन सरन = परमात्मा की शरण	२०७।६
अरथाई = अर्थ लगाने की प्रक्रिया	९६।३	असवैया = मून प्रेत की वाधा रहने वाला	५०।७
अरन = अरुण, लाल, रक्त	२९०।५	असीज = आश्विन मास, कुवार	३४।६
अरपि = अर्पण, अर्पित	२१५।६	अस्ति अस्ति = वाह वाह करना, साधुवाद देना	२१२।३
अरवरई = उतावले होते हैं	३२७।४	अस्तुत = स्तुति, प्रार्थना	११।८
अरवरा = हड़बड़ी आकुलता	३२७।९	अस्थानू = स्थान	३५।६
अरवराइ = उतावला होकर	३५।२	अस्थिर = स्थिर, एक स्थान पर	५४।५, ६१।८
अरसारी = अलमाई हुई, मुरकाई हुई	२२४।२	अस्थिरता = स्थिरता	४१।४
अरमावें = अलसा जाते थे, व्याकुल हो जाते थे।	२५४।८	अहा = या	२८।२, ७४।९
अरावै = आराधना करना हुआ	९३।८	अहारू = भोजन, आहार	५८।६
अरी = अड़ना, गढ़ना	५८।७, ८१।३	अहि = सर्प, माँप, अजगर	२७३
रुन = अरुण, सूर्य का सारथी	३३०।१	अहुट = दूर	२९९।२
अरूप = रूप हीन	३२०।१	अहरे = अधिकार, आम्नेट	९०।५
अरें = गढ़ने या चुभने से	२५४।८	आंकुम = अंकुश, हाथी का हॉकने का दो मुँहा भाना, गजवाग, प्रतिबंध, आमन, दवाव	५३।९, ८२।९
अलख = जो दिखाई न दे	९।९३।८	आंटा = अँटना, भरजाना, ठक जाना, अटक जाना	१४५।२, २३०।५
अलच्छ = अलक्ष्य	३३५।१	आंस = आँसू	१०९।१
अलद = बिना लदा	२८३।६	आइस (आदेश) = आज्ञा, हुक्म	१७२।२
अल्प = अल्प	८४।७	आड = आयु	५२।७, २०७।५
अलि = भौरा	२६।५, ८३।२	आक = अर्क का पेड़	७२।९, १३४।७
अली = प्रियतमा, स्त्री, सखी	२३३।७	आच्छे = अच्छे, मुंदर	१७५।९, २१२।३
अवघट = दुर्गम, कठिन, विकट	२६७।२	आड़ = आड़ा	२२०।८
अवघट घाट = दुर्गम या कठिन घाट	१०३।१	आदेश = प्रणाम, नमस्कार	११।७७।१
अवछरा = अप्सरा	१००।६	आनंद कंद = प्रगल्भता देने वाला	६०।७
अवतरी = उत्पन्न हुई	३४।४	आन = पथ्यादा	५३।९
अवधूत = योगी	१११।५	आनसि = लाया	२७४।२
अवस्था = दशा	३०।५	आपद = संकट दुःख	३६१।९
अवाई = आगमन, आगमन की आवाज, पुकार-पुकार कर आगमन की सूचना देना।	१९८।१, २००।१		

आपा = अपने आप को, अपनत्व	८०११,	उड़ने खटोलै = आकाश में उड़ने वाला	
१२३१५, १३११५, १५११७, २१५१६, ३२८१८		खटोला ।	५४१६
आपु = अपने आप स्वयं	५५१५	उतारा = टिके, विश्राम किया	२३०१७
आव = पानी, चमक, कांति, शोभा	४७१	उतावल = उतावला होकर, व्यग्र होकर	
आभरण = आभूषण	४६१५	उतावली, शीघ्रता, जल्दी	१८१११, २२६११
आयसु = आदेश, आज्ञा	५६१८	उद्भास = प्रकाश, प्रतीति, हृदय में किसी	
	११७१५, २६६१४	वात का उदय होना ।	२०८
आरकस = आलस्य	३३४१३	उदर = पेट	२७४१३
आरस = आलस्य	२२११३, १४११८	उधांइ = ?	१२८१
आरोग = आरोग्य, निरोग, रोग रहित	१४८१३	उनमाना = अनुमान	२१५, ३३१५
	२१५१२	उनमानू = अनुमान, समान	१८११३
आली = सखी	२१५१२	उनस = भुके हुए	२७२१३
आवा (आवाँ) = गड्ढा जिसमें कुम्हार		उनहार = समानता, एक रूपता, तादृश्य	३५२१
मिट्टी के बरतन पकाते हैं ।	४२१		
इंगुर (हिगुल, इगुल) = चटकीले लाल रंग		उनाई = भुके हों, भुकी हुई	५३१४, ५५११
का एक खनिज पदार्थ	६४१८	उपज = सूझ, उत्पत्ति	१८०१२
ईठी (सं० इष्टि > प्रा० इट्ठि) = मित्रता,		उपटै = ऊपर उठना	१२११६
दोस्ती, प्रीति	१५६१८	उपदेशी = उपदेश देने वाले	३७११
इन्हन = ईधन, जलाने की लकड़ी	२५१४	उपना = उत्पन्न हुआ	२८१७
ईस = महादेव	३०८११	उपराई = बढ़कर	१११८
उंघाहि = ऊँघने लगना	२६१	उपराज = उत्पन्न करते हैं	५१६
उग्रा = उगा	१०८१४	उपराजा = उत्पन्न किया	५११, ६६१६
उकस = भेद लेने के लिये उभाड़ने की		उपराजै = उत्पन्न होते हैं	४१५
क्रिया	३२०११	उपराही = ऊपर, श्रेष्ठ, उत्तम, बढ़कर	१६७१३
उकसै = ऊपर उठना या निकलना	१५८१६		
उकासा = ऊपर उठाना या निकालना	१५८१६	उपाधि = और वस्तु को और बतलाने का	
		छल	६७१५
उघटत = उघड़ते हैं, दबी बात को प्रकट		उपारहि = उखाड़ते हैं	५३१५
करते हैं, किसी नई बात का प्रचार		उफकारा (उफ + कारा) = ओह करना,	
शीघ्रता से करते हैं ।	२८५१	क्षोभ का भाव, खलबली	१४६१५
उघरी = खुली	२७०१८	उफनत = उबल कर उठना, उबलना	१०६१
उछरहि = उछलते हैं	२३११६	उवटावा = उबटन किया	२२४१७
उछारै = उछालै, ऊपर आकाश में फेंकना		उभारा = उठान, ऊपर की ओर उठने की	
	५३१६	क्रिया	२७२१२
उजार = निर्जन स्थान, वन, उजड़ा हुआ		उमड़ि = ऊपर उठकर फैलना	५११७
स्थान	२८८१	उमड़ै = भरकर वहना	२३४१७
उज्ज्वल = सफेद, साफ, शुद्ध	४५१३		

उमहा = उमंगित हुआ, उमड़ा	३६३।२	ओनए = भुके हुए, विरे हुए	२३४।७
उर = वक्षस्थल, छाती,	हृदय,	ओप = चमक, कांति, आभा	६४।२
	५८।६, ८३।२	ओर = सीमा, ओरछोर, सीमा तक	
उलिचहि (उलीचना) = हाथ या वस्तु से		अंत तक	६२।२, १२७।१, १४६।
पानी उछालकर फेंकना	१५८।३	ओरी (ओलती) = ठनुवाँ छप्पर का वह	
उवत = उगता, उदय होता	२५५।	किनारा जहाँ से वर्षा का पानी	
उवा = उगा	७५।८, २०१।, २०५।, २३१।६	नीचे गिरता है	३०८।७
उवै = उगे	१६७।३, १२।६	ओहारा (सं० अवधारा) = ओहार, परदा	२३७।८
उसाम = श्वास	२६।२	ओंग = गाड़ी के पहिए की धुरी में तेल	
ऊटना = हीसला करना, उमंग में आना,		लगाने की क्रिया	२५७।८
उत्साहित होना	२५३।७	ओंठि = दूध आदि को आँच पर चढ़ा कर	
ऊठ = उठान	२८०।३, २६३।४, ३५२।	खीलाना, ओंटा कर	२६१।
ऊने (उनवना, उनए) = भुके हुए	३६।१०	ओ = ओर	३५।७, २३५।२, २६८।५
ऊवट = ऊबड़ खावड़, ऊँचा नीचा	१६७।६	ओखल (अओखल) = (हमारे) देखते	१८६।५
ऊर्म = ऊपर को, ऊँची, गहरी	३०१।१	ओगुन = अवगुण, वुरेगुण	६६।६
ऊवा = उगा	३४।६	ओघट > अवघट = विकट कठिन	२।१, ६६।
ऊहट (उहट) = हटाकर	६४।५		६, १८६।६
एकठारे = एक ठौर या एक स्थान पर		ओट = ओटने या खीलने की क्रिया	१६६।२
	२४४।६	ओव = अवध, अयोध्या	३०३।
ऐंठ = ऐंठन, मरोड़, ठसक	२२०।६	ओघ } अवधि, अंतिम समय या काल	
एक ठाँहीं = इकट्ठे, साथ	५६।४	या	
एक ठारी = एकत्र	२७।५	ओधि } ५२।, २७५।३	
ओकै = आश्रय, ठिकाना, घर, नक्षत्र या			
ग्रह समूह	२०१।६	ओल = मन में दबी हुई चिंताएँ, गुब्बार,	
ओखी = नीच, क्षुद्र	३६०।२	किसी विषय में मनमें दबी हुई अनेक	
ओक्का = भूत प्रेत झाड़ने वाला, सयाना		धारणाएँ	१६५।८
	१४८।५	ओसर = अवसर, समय	११५।३
ओट = आड़, व्यवधान, रोक जिसमें सामने			
को वस्तु दिखाई न दे	२१६।४		१६४।७, ३६०।४